CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

डा. बाबूराम त्रिपाठी

हितोपदेश

(मित्रलाभः)

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

श्री नारायण पण्डित संगृहीत

हितोपदेश

[मित्र लाभः]

सम्पादक

डॉ० बाबूराम त्रिपाठी

शास्त्री, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) पी-एच० डी०

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

सेण्ट जॉन्स कॉलिज, आगरा

महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-२

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

प्रकाशक :
महालक्ष्मी प्रकाशन
पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता
शहीद भगतसिंह मार्ग, आगरा–२८२ ००२
दूरभाष : ६५४१५

शाखाएँ
आगरा : कंचन मार्केट (फर्स्ट फ्लोर)
हॉस्पीटल रोड आगरा (उ० प्र०)
जयपुर : डिग्गी हाउस, जयपुर (राज०)

© प्रकाशक

मूल्य : दस रुपये मात्र

मुद्रक :
महालक्ष्मी आर्ट प्रेस, आगरा–२

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भूमिका

हितोपदेश नामक ग्रन्थ, का आदर्श और आधारभूत मूलग्रन्थ, वस्तुतः विश्व प्रसिद्ध "पञ्चतन्त्र" नामक आख्यान साहित्य का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। पञ्च-तन्त्र वस्तुतः भारतीय संस्कृति भारतीय व्यवहार कुशलता, आदर्श, रीति, व्यवहारनीति और भारतीय आदर्श परम्परा का प्रकाशक एक अमूल्य ग्रन्थ रत्न है, अपनी इस विशेषता के कारण ही यह ग्रन्थ विदेशों में भी लोकप्रिय रहा है और इसकी कहानियाँ अनेक विदेशी भाषाओं में भी अनूदित होती रही हैं। सच तो यह है कि इसी ग्रन्थ रत्न से विदेशों में कथा साहित्य और प्रमुखतः नीति कथा साहित्य का प्रचार हुआ है। अनेक विदेशी विद्वानों ने कुछ हेर-फेर का इन कहानियों का आश्रय लिया है। भारतवर्ष में भी इन ग्रन्थ के आधार को लेकर एक उत्कृष्ट नीति ग्रन्थ का 'हितोपदेश' के नाम से प्रचार हुआ है। इस हितोपदेश का भी मूलाधार पञ्चतन्त्र ही है।

नारायण पण्डित ने पञ्चतन्त्र की ही अनेक कहानियों को कुछ परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप में हितोपदेश में संगृहीत किया है। किन्तु उक्त विद्वान् ने अन्य नीति ग्रन्थों से भी अनेक उपदेश परक कहानियों एवं नीतिपरक श्लोकों को संगृहीत किया है, जैसे कामन्दकीय नीतिसार चाणक्य नीति विदुरनीति स्मृति आदि। इस प्रकार कई आधारों को लेकर इस ग्रन्थ का कलेवर निर्मित हुआ है पञ्चतन्त्र की अपेक्षा इसमें उपदेशपरकता कहीं अधिक है, भाषा भी सरल एवं शैली स्वाभाविक एवं सरल है।

हितोपदेश' का ही एक भाग 'मित्रलाभ है' जो कि कई विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित है। इस "मित्रलाभ" से परीक्षाओं में गद्य पद्यात्मक व्याख्याओं के अतिरिक्त, कथाओं के सारांश एवं कथा साहित्य का इतिहास भी पूछा जाता है। परीक्षार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रख कर प्रस्तुत पुस्तक में वे सभी विषय दिये गये हैं जो कि परीक्षाओं में पृष्टव्य है—यथा—इस पुस्तक के भूमिका भाग में—कथा साहित्य का विस्तृत इतिहास, गद्यात्मक एवं पद्यात्मक नीति कथाओं का उद्‌गम एवं विकास, नीति-

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कथाओं का वैशिष्टय, नीति कथाओं का अन्य कथाओं, लोक कथा एव जातक कथा आदि से अन्तर, सम्पूर्ण मित्रलाभ की कथाओं का स।रांश आदि ।

व्याख्या भाग में प्रत्येक श्लोक को, अन्वय, शब्दार्थ, अनुवाद, भावार्थ एवं विशेष टिप्पणी आदि के द्वारा सरलाति सरल भाषा में स्पष्ट किया गया है, इसी प्रकार गद्य भाग को भी शब्दार्थ अनुवाद आदि के द्वारा सरल ढंग से लिखा गया हैं, अपनी दृष्टि से यह पूरा प्रयास किया गया है कि परीक्षार्थी अथवा अन्य जिज्ञासु जन के लिये इसमें कोई कमी न रह जाय, पुस्तक को हर दृष्टि से सरल सुबोध बनाने का प्रयत्न किया गया है। आशा है, परीक्षार्थी एवं जिज्ञासु जन इससे लाभान्वित हो सकेंगे ।

—बाबूराम त्रिपाठी

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

संस्कृत कथा साहित्य

उत्पत्ति और विकास

संस्कृत साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति ही संस्कृत आख्यान साहित्य की भी उत्पत्ति वैदिक साहित्य से ही हुई है और इसका विकास वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पाली, प्राकृत एवं अपभ्रंश आदि कई उत्तरोत्तर विकसित भारतीय भाषाओं एवं युगों में से विकसित होता हुआ अद्यावधि चला आ रहा है। पर इतना निश्चित है कि इन सभी युगों में कथा साहित्य का अपना दृष्टि-कोण सदा एक सा नहीं रहा है, न भाषा की दृष्टि, न विषय की दृष्टि से और न शिल्प सौन्दर्य तथा मान्यताओं की दृष्टि से ही। मन्त्र संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं आरण्यकों का लक्ष्य यद्यपि कथा साहित्य के शिल्प सौन्दर्य को विकसित करना नहीं है और न मन्त्रद्रष्टा ऋषि ही कवि, कथाकार अथवा नीति के उपदेष्टा ही है, तथापि इस साहित्य में कथा, आख्यान, आख्यायिका का संजीवन तत्व उभरता हुआ अवश्य दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग उपनिषदों में कथा साहित्य की विपुल सामग्री उपलब्ध होती है। यद्यपि इन ग्रन्थों का भी मूल उद्देश्य अध्यात्मचिन्तन ही है, कथा साहित्य का विकास नहीं तथापि इन ग्रन्थों में जो तत्कालीन जन-जीवन पर तथा ऋषि, मुनि, तपस्वी, ब्रह्मचारी, पुरोहित, राजा आदि पर प्रसंगतः विचार किये गये हैं, वे कथा साहित्य की पृष्ठभूमि का आधार अवश्य प्रस्तुत करते हैं, और साथ ही इन ग्रन्थों के यज्ञ, तप, दान, मृत्यु, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि पर व्यक्त विचार कथा साहित्य के लिये अच्छी मनोरञ्जनात्मक सामग्री प्रदान करते हैं, अतः संक्षेपतः कहा जा सकता है कि यद्यपि वैदिक साहित्य में संस्कृत कथा साहित्य के संवर्धन के लिये उपयोगी विशेषतायें उपलब्ध नहीं होतीं तथापि यह साहित्य, संस्कृत कथा साहित्य का आधार अवश्य है।

इसके उपरान्त, भारतीय साहित्य के विश्वकोष रामायण और महाभारत की अवतारणा के साथ दो प्रकार का साहित्य और विकसित हुआ, जिसे हम पौराणिक साहित्य और काव्य साहित्य कह सकते हैं। रामायण ने जहाँ

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

काव्य साहित्य का पथ प्रदर्शन किया वहाँ महाभारत ने संस्कृत कथा साहित्य को आगे बढ़ाया। वस्तुतः यही दोनों ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के उपजीव्य ग्रन्थ हैं महर्षि बाल्मीकि जहाँ संस्कृत काव्य साहित्य के आदि कवि हैं, वहाँ भगवान् व्यासदेव संस्कृत की लोक कथा तथा नीति कथा साहित्य के प्रथम आचार्य हैं। रामायण राम कथा तथा महाभारत की कुरुकथा से सम्बद्ध अनेक आख्यान एवं उपाख्यान, यद्यपि तत्कालीन समाज में मौखिक रूप से अति प्राचीन काल से चल रहे थे तथापि इन महर्षियों ने उक्त आख्यानों को संकलित एवं संशोधित कर काव्य रूप में निबद्ध कर सभी के लिये सुलभ बनाया, फलतः इन्हीं दो आधार स्तम्भों पर उत्तर कालीन कवियों उपदेशकों तथा कथाकारों ने विविधात्मक संस्कृत साहित्य का उज्ज्वल प्रासाद खड़ा किया जो कि भारतीय संस्कृति सभ्यता और और आदर्श का संरक्षक एव पथ प्रदर्शक है।

पौराणिक साहित्य में, जो कि रामायण और महाभारत की क्षत्रछाया में ही विकसित हुआ है तथा जिसने कथा साहित्य को सर्वाधिक लोक व्यापी बनाया है, कथा साहित्य विशाल भण्डार सुरक्षित है। बौद्ध जातक कथायें भी पुराण साहित्य के रचना शिल्प एवं शैली से प्रभावित हैं।

कथा साहित्य का प्रभाव

इस प्रकार इन त्रिविध आधारों पर विकसित भारतीय संस्कृत कथा साहित्य विश्व साहित्य में अग्रगण्य स्थान रखता है, प्राचीनता, लोक प्रियता, कथा शिल्प, एवं मनोवैज्ञानिक निपुणता तथा मनोरञ्जनकता की दृष्टि से यह साहित्य आज भारतीयों की सर्वोपरि देन माना जाता है। भारतीय कथा-कारों की इस अनुपम उपलब्धि की विदेशी साहित्यों में भी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। भारत की कथाकृतियाँ साक्षात् अथवा अनूदित होकर प्रायः सभी देशों में पहुँची हैं और उन देशों में इस कथा विधा को प्रोत्साहित किया है, इन भारतीय नीति कथाओं के कथाशिल्प के आधार पर वहाँ अनेक कथा ग्रन्थ अपनी-अपनी भाषाओं में लिखे गये हैं और भारतीय कथा ग्रन्थों का, विशेषतः नीतिपरक कथा ग्रन्थों का अनुवाद किया गया है।

इन कथाग्रन्थों के विविध विषय हैं, कुछ में तत्कालीन समाज का, कुछ में तत्कालीन वीर पुरुषों के पराक्रमों का, कुछ में समुद्री यात्राओं के आश्चर्य जनक वृत्तान्तों का और कुछ में आकाश पाताल की सुरासुर सम्बन्धी विविध

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

घटनाओं का एवं कुछ में धर्म, नीति, साहस, शिक्षा, आदि सम्बन्धी बातों का उल्लेख है तथा अन्य कुछ में ये सभी विषय एक साथ देखे जाते हैं।

कथा साहित्य पर और अधिक विचार करने से पहले यह जान लेना भी आवश्यक है कि कथा साहित्य यद्यपि नाट्य साहित्य या चम्पू साहित्य नहीं जिसमें पद्य और गद्य दोनों का सम्मिश्रण रहता है, यह उनसे सर्वथा एक भिन्न काव्य विधा है, तथापि संस्कृत कथा साहित्य में पद्य और गद्य दोनों साथ-साथ चलते हैं, अतः इस पद्य और गद्य के भी विकास पर संक्षेपतः विचार कर लेना आवश्यक है जिसने इस कथा साहित्य के कलेवर को सम्वर्धित किया है।

गद्य की उत्पत्ति और उसके विकास के विविध रूप

प्रायः किसी भी साहित्य का आरम्भ पद्य से होता है, पद्य में मानसिक अभिव्यक्ति की अधिक क्षमता होती है अतः आरम्भकालीन साहित्य प्रायः पद्यात्मक होता है, इसके उपरान्त जब साहित्य में विचारों की गहनता की अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती तब गद्य का आरम्भ होता है, इस प्रकार सर्वत्र पद्य के बाद ही गद्य का आरम्भ होता है। संस्कृत साहित्य का भी आरम्भ पद्यात्मक मन्त्रों के रूप में ही हुआ, और फिर इसके ही साथ ऋषि वाणी ने गद्यात्मक रूप ले लिया इस प्रकार गद्य और पद्य का जन्म एक ही मूलाधार से हुआ। ऋग्वेद संहिता संस्कृत गद्य और पद्य दोनों का ही आधार है। गद्य का यह अंश यद्यपि आज उपलब्ध नहीं हैं तथापि इसके उत्तरकालीन मन्त्र संहिताओं में गद्य के देखने से यह अनुमान किया गया है कि इसमें भी गद्य रहा होगा। अथर्व वेद का षष्ठ भाग तो प्रायः गद्यात्मक ही है। ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों में भी गद्य का प्रयोग है। वैदिक आख्यानों के गद्य पद्यात्मक भाग को 'गाथा' कहा गया है। ऋग्वेद में भी नाराशंसी गाथाओं का उल्लेख है।

इस प्रकार समस्त वैदिक वाङ्मय में पद्य के साथ गद्य का भी प्रयोग मिलता है, यह वैदिक गद्य अत्यन्त सरल समास रहित सुबोध शैली में है और कहीं-कहीं उपमा रूपक आदि अलंकारों का भी प्रयोग है। इसके बाद वेद्ञा-ग्रन्थो एवं वेदाङ्गों में भी गद्य का प्रयोग है किन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य में पद्य की उपेक्षा गद्य का प्रयोग न्यून है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

वैदिक साहित्य से उद्भूत इस गद्य का प्रयोग यद्यपि उत्तरोत्तर होता रहा है तथापि इसके रूप में परिवर्तन होता रहा है। वैदिक गद्य जहाँ अत्यन्त सरल बोलचाल का गद्य था, वहाँ दार्शनिक ग्रन्थों एवं सूत्र ग्रन्थों का गद्य परिवर्तित रूप में देखा जाता है। यहाँ गम्भीर विचारों की युक्ति संगत एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिये नवीन पारिभाषिक शब्दावली एव शैली की उद्भावना की गई है एवं गद्य को प्रौढ़ सशक्त एवं सुसंगठित बनाया गया है। संक्षिप्तता के दृष्टि से सूत्र साहित्य का गद्य तो और भी जटिल दुरूह एवं अस्पष्ट हो गया है। इसी समय गद्य का एक चौथा रूप पौराणिक गद्य भी देखा जाता है, जो कि उक्त त्रिविध रूपों से भिन्न है, इसमें प्रौढ़ता गाढबन्धता के साथ-साथ अलंकारता भी है जो कि उत्तरवर्ती गद्य काव्य के कुछ समीप रखा जा सकता है। इस प्रकार यहाँ तक गद्य के चार रूप देखे जाते हैं जो कि भाषा और शैली की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं।

परन्तु लौकिक साहित्य का गद्य इन सबसे भिन्न है जो कि इन सब में से ही किसी रूप को न्यूनाधिक रूप में लेकर चला है, फिर भी इन सब से भिन्न है, इसमें न वैदिक गद्य जैसी सरलता है और न स्पष्टता ही, न दर्शन ग्रन्थों जैसी गम्भीरता और न पारिभाषिक शब्दावली की गुम्फिता ही, और न सूत्र साहित्य जैसी संक्षिप्तता ही। पौराणिक गद्य में भी स्वभावसिद्ध अलंकारों का ही प्रयोग है और भाषा में प्रवाह भी है, पर लौकिक गद्य सर्वथा कृत्रिम प्रयत्नसाध्य अलंकारों से अलंकृत सन्धि समासों के आधिक्य से जटिल है।

इस लौकिक गद्य का प्रयोग हमें सर्व प्रथम १५० ई० पू० के पातञ्जल महाभाष्य में मिलता है, यह उक्त चार प्रकार के गद्यों से भिन्न है, शबर स्वामी, जयन्त भट्ट आदि के भाष्यों का भी गद्य इसी प्रकार तर्क पूर्ण सारगर्भित एवं प्रौढ़ है पर शंकराचार्य के भाष्यों में साहित्यिकता भी है।

इसी समय के आस पास के भाष्यों के इस गद्य के अतिरिक्त, उत्तरवर्ती काल में लिखे गये शिला लेखों में भी संस्कृत गद्य देखा जाता है। १५० ई० का गिरनार का शिला लेख साहित्यिक गद्य शैली में निबद्ध है और प्रारम्भिक प्रौढ़ गद्यकाव्य का रूप प्रस्तुत करता है, ३४५ ई० का प्रयाग विजय स्तम्भ प्रशस्ति का गद्य, इससे भी अधिक प्रौढ़, सन्धि समासों से जटिल एवं अलंकृत है। इस गद्य को उत्तर कालीन सुबन्धु, दण्डी, एवं बाण के गद्य काव्यों के

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

समक्ष रखा जा सकता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सुवन्धु दण्डी और वाण ने गद्य के जिस सर्वोत्कृष्ट, चरम विकास को प्राप्त, प्रौढ़ रूप को लेकर अपने गद्य काव्यों की रचना की है उस गद्य का उद्भव एवं निरन्तर विकास, इन गद्य काव्य कारों की कृतियों से शताब्दियों पूर्व हो चुका था। पातञ्जल महाभाष्य में वासवदत्ता सुमनोत्तरा भैमरथी आदि आख्यायिकाओं का उल्लेख तथा अन्यत्र चारुमती, तरंगवती, शातकर्णीहरण, मनोवती एवं तरंगवती, आदि कथा ग्रन्थों का उल्लेख भी इस बात को सिद्ध करता है कि गद्यका विकास अपने उत्कृष्ट रूप में ईशवीय सन् से भी पूर्व से चल रहा था।

जहाँ एक ओर इस प्रकार का प्रौढ़ साहित्यिक गद्य उत्तरोत्तर विकसित होता चला आ रहा था वहाँ इसी के साथ वैदिक कालीन सरल सुवोध स्वाभाविक गद्य की धारा भी प्रवाहित हो रही थी जिसका प्रयोग जन साधारण के शिक्षणार्थ एवं मनोरञ्जनार्थ किया जा रहा था। इस प्रकार के गद्य का रूप नीति परक कथा साहित्य में देखा जा सकता है जिसके प्रतिनिधि ग्रन्थ पञ्चतन्त्र हितोपदेश आदि हैं। उपदेशात्मक नीति कथा ग्रन्थों की यह गद्य, भाषा, शैली विषय, और उद्देश्य सभी दृष्टियों से उक्त गद्य काव्यों में प्रयुक्त गद्य से सर्वथा भिन्न है।

इस प्रकार अब यहाँ तक नीति कथा ग्रन्थों के गद्य भाग पर विचार कर, इसके गद्यात्मक कलेवर का रूप स्थिर करने के बाद अब यह भी विचार करना है कि नीति कथा ग्रन्थों के पद्यात्मक कलेवर का स्रोत क्या है और नीति ग्रन्थों के विकास की क्या परम्परा है।

इस सम्वन्ध में यह पहले ही वताया जा चुका है कि भारतीय लौकिक संस्कृत साहित्य के दो ही उपजीव्य ग्रन्थ रत्न हैं—रामायण और महाभारत। नीति कथा साहित्य का सम्पूर्ण पद्यात्मक भाग, भाषा, शैली, विषय एव उद्देश्य की दृष्टि से इन्हीं ग्रन्थ रत्नों का ऋणी है। इन ग्रन्थों में नीतिपरक अनेक श्लोक उपलब्ध होते हैं, महाभारत तो ऐसे श्लोकों का एक विशाल भण्डार ही है, नीतिकथा ग्रन्थों का सम्पूर्ण पद्यात्मक कलेवर इन श्लोकों से ही वना है, कहीं ये साक्षात् अविकल रूप में और कहीं कुछ परिवर्तित रूप में प्रयुक्त हुये हैं, कहीं उन्हीं भावों के आधार पर नये रूप में भी प्रयुक्त हुये हैं, तात्पर्य यह कि नीतिकथा ग्रन्थों का सम्पूर्ण पद्यात्मक कलेवर इन्हीं ग्रन्थों से सामग्री एकत्रित कर रखा गया है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

नीति काव्य के उद्भव में धर्म और दर्शन का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। इन्हीं दोनों ने मिलकर नीतिशास्त्र को विकसित किया है। वैदिक और लौकिक दोनों ही प्रकार के संस्कृत साहित्य में नीति वचन उपलब्ध होते हैं, इन्हीं वचनों की व्याख्या रूप में नीति ग्रन्थों की रचना हुई है। इन गन्थों के ये नीति वचन किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्वद्ध न थे अपितु लोक शिक्षा परक होने से सबके लिये उपयोगी थे अतएव तत्कालीन वेदवाह्य बौद्ध जैन आदि सम्प्रदायों के भी ग्रन्थों में ऐसे वचनों का सुभाषितोक्ति के रूप में प्रयोग हुआ है। महाभारत के अनुसार तो स्वय ब्रह्मा ने देवताओं की प्रार्थना पर एक लाख अध्यायों में नीति शास्त्र की रचना की थी। स्वायम्भुव मनु भी नीति शास्त्र के प्रणेता एवं प्रचारक थे, इनकी मनुस्मृति, आज धर्म और लोक व्यवहार नीति का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। इसी प्रकार वृहस्पति नीति एवं शुक्रनीति भी नीति के उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। इन प्राचीन नीतिकारों के अतिरिक्त आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में अन्य अनेक पाराशर आदि नीतिकारों का नामतः उल्लेख किया है और स्वयं भी चाणक्य सूत्र, चाणक्य नीति, आदि नीति परक ग्रन्थों की रचना की है। आचार्य चाणक्य का समय ईशा पूर्व चतुर्थ शतक माना गया है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि नीतिपरक ग्रन्थों की एक वड़ी परम्परा है रामायण और महाभारत में अनेक नीति विषयक श्लोक उपलब्ध होते हैं जिनका उद्देश्य कथानक को विस्तार देना न होकर लोक शिक्षण ही है इसी रामायण और महाभारत के आधार पर लिखे गये अनेक काव्यों नाटकों गद्य काव्यों नीति काव्यों एवं आख्यान साहित्य में अनेक स्थलों पर नीति परक श्लोक उपलब्ध होते हैं और कुछ साक्षात् नीतिविषयक ही ग्रन्थ प्राप्य हैं जैसे भर्तृहरि के शतकत्रय, विदुर नीति, नीति द्विषष्टिका, वोधिचर्यावतार, मोहमुद्‌गर, कुट्टिनीमतम् सुभाषितरत्न सन्दोह, मुग्धोपदेश, सुभाषितनीवी, शार्ङ्गधर पद्धति, नीतिमञ्जरी आदि।

अतः कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में नीति विषयक बहुत बड़ा साहित्य है जिसके आधार पर संस्कृत कथा साहित्य प्रचलित हुआ है। इस कथा साहित्य के रचियता कवियों ने उक्त नीति ग्रन्थों से ही कथा साहित्य के पद्यात्मक कलेवर का संवर्धन किया है और प्रायः कथा साहित्य के गद्यांश

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

को इन्हीं नीतियों की व्याख्या स्वरूप प्रस्तुत किया है। इस प्रकार इन नीति कथा ग्रन्थों का गद्य पद्यात्मक कलेवर बना है। इस कथा साहित्य के दो प्रमुख भेद होते हैं —लोक कथा और नीति कथा।

लोक कथाओं का आधारभूत ग्रन्थ गुणाढय की 'वृहत्कथा' है, जो कि मूलतः पैशाची भाषा में थी, कालान्तर में उसके कई संस्कृत रूपान्तर भी हुये हैं। लोक कथाओं का आश्रय लेकर प्रायः गद्य काव्य लिखे गये हैं जो कि भाषा और विषय की दृष्टि से नीति कथा साहित्य से भिन्न हैं। आलोच्य पुस्तक 'हितोपदेश' नीतिकथा ग्रन्थ है।

नीति कथाओं का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य

नीति कथायें आकार प्रकार, भाषा, शैली प्रतिपाद्य विषय एवं उद्देश्य की दृष्टि से लोक कथाओं से भिन्न होती हैं। नीति कथाओं की भाषा— अति सरल, सुन्दर, रोचक, बोधगम्य प्रवाहमयी, प्रचलित एवं महाविरेदार होती है, न अधिक समासान्त और न अलंकृत पदावली का ही प्रयोग होता है और न भाषा को सजाने का ही प्रयास रहता है, वाक्य छोटे छोटे, स्पष्ट और प्रायः संवादात्मक होते हैं। शब्दावली को व्यज्जनात्मक एवं व्यङ्ग्यात्मक अथवा संकेतात्मक बनाने का भी प्रयास नहीं रहता और न लम्बे लम्बे प्राकृतिक चित्रों एवं सुविस्तृत वर्णनों को ही इसमें स्थान मिलता है, अपितु इसमें सर्व साधारण के समझने योग्य बोल चाल की भाषा का ही प्रयोग होता है अतएव इसमें अधिक रोचकता रहती है।

शैली—अति सरल एवं स्वाभाविक होती है, जो कि पाठकों के लिये उत्तरोत्तर रोचकता लाने में समर्थ होती है, न कहीं जटिलता एवं सूक्ष्म संकेतात्मकता ही रहती है। इसमें सर्वत्र स्वाभाविकता एवं प्रासादिकता रहती है।

आकार प्रकार में भी नीति ये कथायें छोटी होती है जिनमें पशु पक्षियों के कार्यकलापों एवं सम्वादों द्वारा लोक व्यवहार की शिक्षा दी जाती है। यद्यपि सम्पूर्ण कहानी गद्य में ही कही जाती है तथापि इन कहानियों से प्राप्त होने वाली शिक्षायें प्रायः पद्यों में संकलित कर दी जाती हैं जिससे कि वे याद रखीं जा सकें। अर्थात् कहानी के आरम्भ, मध्य, या अन्त में जहाँ

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कहीं भी कोई नीति सम्बन्धी विचार उपस्थित होता है वहाँ उसे पद्यवद्ध कर दिया जाता है, शेष कथा गद्य में चलती रहती है। कहानियों के शीर्षक भी प्रायः पद्यात्मक होते हैं, इसी प्रकार कथा के बीच में भी अनेक नैतिक तत्वों का निर्देश पद्यवद्ध कर दिया जाता है तथा मुख्य कथाओं के साथ-साथ अनेक प्रासांगिक कथायें भी रहती हैं।

इन नीति कथाओं का मुख्य प्रतिपाद्य सदाचार, राजनीति, एवं लोक सामान्य व्यवहार ज्ञान होता है। इन कथाओं के पात्र प्रायः पशु पक्षि वृक्ष बनचर आदि, एवं स्थावर पदार्थ होते हैं और मानव भी। इन मनुष्येतर प्राणियों एवं स्थावर पदार्थों पर मानवीय व्यवहारों, एवं व्यापारों का बड़े सुन्दर ढंग से आरोप कर कथायें कहीं जातीं हैं, अतएव इन कथाओं के पात्र पशु पक्षी आदि भी, मानवीय भावों, आकांक्षाओं, एवं व्यवहारों से युक्त प्रतीत होते हैं और वे राजनीति कुशल विद्वानों की भाँति गूढ़तम नीति की व्याख्या करते हुये दृग्गोचर होते हैं, अर्थात् साधारण पशु पक्षियों के जीवन एवं व्यवहार से सम्बद्ध इन कथाओं द्वारा सदाचार एवं नीति के गूढ़ तत्व बड़ी सरलता एवं स्फुटता से व्यक्त किये जाते हैं। इन कथाओं को और अधिक सुगम एवं रोचक बनाने के लिये कथाकारों ने एक कथा के भीतर दूसरी कथा को गुम्फित कर अन्त में उनकी परिणति किसी सुन्दर एक श्लोक के शीर्षक के रूप में लिखकर उसके सोदाहरण स्पष्टीकरण के लिये गद्य भाग से कथा को आरम्भ किया गया है और फिर उस कथा की समाप्ति पर उसका सम्बन्ध किसी अन्य कथा से जोड़ कर, दूसरी कथा को आरम्भ कर दिया गया है, इस प्रकार इन कथाओं की शृंखला एक दूसरे से जुड़ती हुई दूर तक चली जाती है, इस सहज एवं रोचक शैली के ही कारण पाठक इन्हें पढ़ने से कभी ऊबता नहीं अपितु उत्तरोत्तर रुचि लेता चला जाता है।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि इन नीति कथाओं का उद्देश्य, कोमलमति एवं सरल हृदय बालकों के मन में अपूर्व कौतूहल उत्पन्न कर उन्हें सरलता से और आरम्भ से ही लोक व्यवहार का ज्ञान कराना है। कोमलमति बालक जब इन पशु पक्षियों को मनुष्य वत् व्यवहार करते देखते हैं तो स्वभावतः उनमें उन्हीं की भाँति व्यवहार करने की उत्सुकता जागृत होने लगती हैं और वे वैसा ही व्यवहार करने के अभ्यासी बन कर, कालान्तर में राजनीति

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

के गम्भीर दांव पेच समझ कर अपने जीवन में तदनुकूल व्यवहार करने लगते हैं अतएव इन कथाओं का उद्देश्य बतलाते हुये कहा गया है—कथाच्छलेन बालानां नीतिरत्नोपदिश्यते।

इस प्रकार की नीति कथाओं के प्रतिनिधि ग्रन्थ पञ्च तन्त्र और हितोपदेश उपलब्ध होते हैं। इनमें पञ्चतन्त्र ही नीति कथाओं का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है, यद्यपि यह अपने मूल रूप में आज उपलब्ध नहीं है, तथापि उसके अनुवादों एवं हस्तलिपियों के आधार पर उसे तृतीय शतक की रचना माना गया है।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि पञ्चतन्त्र की मूल प्रेरणा स्रोत बौद्ध जातक कथायें हैं, किन्तु जातक कथाओं का प्रतिपाद्य, पञ्चतन्त्र के प्रतिपाद्य से भिन्न है, शैली में कुछ समानता भले ही हो, जिसके आधार पर या प्राचीनता के आधार पर बौद्ध जातकों को पञ्चतन्त्र का प्रेरणा स्रोत माना गया हो। किन्तु जहाँ जातक कथायें, लोक कथा एवं नीति कथा का मिश्रित रूप प्रस्तुत करती हैं वहाँ पञ्चतन्त्र नीति कथा का एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यद्यपि जातक कथाओं में भी गद्य और गाथाओं का मिश्रित रूप वैसा ही है जैसा कि पञ्चतन्त्र में गद्य के बीच-बीच में पद्य देखे जाते हैं, तथापि जातक कथायें केवल भगवान बुद्ध देव के पूर्व जन्मों से ही सम्बन्ध रखती हैं और वे पृथक्-पृथक् रूप से कही गई हैं, पञ्चतन्त्र में एक कथा के भीतर ही अनेक अवान्तर कथायें गुम्फित की गई हैं जिनका मुख्य उद्देश्य लोकव्यवहार शिक्षण, एवं राजनीति तथा सदाचार शिक्षण है। जातक कथाओं का उद्देश्य केवल धर्म शिक्षण ही है। इन जातक कथाओं म न तो पंचतन्त्र जैसी मनोरंजकता ही है और न इनमें वैसी राजनीति पटुता ही इनका उद्देश्य तो केवल भगवान् बुद्धदेव के पूर्व जन्म की कथाओं से परिचय कराना मात्र है, अतः जातक कथाओं को पंचतन्त्र का प्रेरणास्रोत नहीं माना जा सकता क्योंकि दोनों की शैली प्रतिपाद्य एवं उद्देश्य में अन्तर है।

पञ्चतन्त्र का रचयिता और रचना काल

पशु पक्षियों की कथाओं द्वारा बाल शिक्षण की अति प्राचीन भारतीय परम्परा रही है जिसका आदि स्रोत ऋग्वेद है। उपनिषदों में भी यह परम्परा देखी जाती है। पंचतन्त्र इस परम्परा का प्राचीनतम ग्रन्थ है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

महामहोपाध्याय पं० सदाशिव शास्त्री के अनुसार पंचतन्त्र के रचयिता विष्णुशर्मा थे और विष्णु शर्मा चाणक्य का ही दूसरा नाम था। अतः पंचतन्त्र की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के समय हो चकी थी अतः इसका रचना काल ३०० ई० पू० माना जा सकता है। पर पाश्चात्य तथा कुछ भारतीय विद्वान् ऐसा नहीं मानते उनका कहना है कि चाणक्य का दूसरा नाम विष्णु गुप्त था न कि विष्णु शर्मा, तथा उपलब्ध पंचतन्त्र की भाषा से तो यह गुप्त कालीन रचना ही प्रतीत होती है। कुछ विद्वान् इसे अष्टम शतक की रचना मानते हैं। हर्टेल और डा० कीथ जैसे विद्वान् इसकी रचना २०० ई० पू० से बाद मानने के पक्ष में हैं। पंचतन्त्र की भाषा और इसके वर्णन गुप्त कालीन अवश्य प्रतीत होते हैं पर इसकी रचना काल के विषय में कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन ही है।

पंचतन्त्र इस समय चार संस्करणों में उपलब्ध होता है—प्रथम संस्करण पहलवी अनुवाद के आधार पर सीरियन तथा अरबी अनुवाद के रूप में, द्वितीय—वृहत्कथा मञ्जरी तथा कथा सरित्सागर में सुरक्षित है। तृतीय—तन्त्राख्यायिका एवं उससे सम्बद्ध जैन कथाओं के रूप में मिलता है, चतुर्थ—उत्तरी और दक्षिणी संस्करण कहा जाता है।

उपलब्ध पंच तन्त्र में पाँचतन्त्र अथवा प्रकरण हैं जिनमें सरल एवं रोचक शैली में लोक व्यवहार की शिक्षा दी गई है, इनमें महाभारत आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों से अनेक नीतिपरक श्लोक उद्धृत किये गये हैं। पंचतन्त्र विश्व साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और कई विदेशी भाषाओं में अनूदित है। यद्यपि आज पंचतन्त्र अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है तथापि इसका अनेक भाषाओं में अनूदित होना, इसकी लोक प्रियता का प्रमाण है। और यह नीति कथा के क्षेत्र में विश्व की अपूर्व देन है, इसी से विदेशों पशु पक्षियों से सम्बद्ध नीति कथाओं का प्रचार हुआ है।

हितोपदेश—पंचतन्त्र की परम्परा में विकसित यह नीति कथा ग्रन्थ, नीति कथा साहित्य में अपना द्वितीय स्थान रखता है। इसके लेखक नारायण पण्डित माने जाते हैं जो कि सम्भवतः बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आश्रित कवि थे। विद्वानों ने इसकी रचना का समय १४ वीं शताब्दी बतलाया है। डा० कीथ ने इसकी रचना ९०० से १३७३ के बीच मानी है। हो सकता है

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कि इसका कुछ अंश अधिक प्राचीन हो और फिर इसे १४ वें शतक में पूरा किया गया हो। पर इतना तो निश्चित है कि इसकी रचना पंचतन्त्र के वर्तमान रूप प्राप्त कर लेने के बाद ही हुई है. क्योंकि इसका आधार वर्तमान पंचतन्त्र ही है जैसा कि लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है "पंचतन्त्रात्तथान्य स्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते"। यहाँ अन्यस्मात् पद से सम्भवत: लेखक का तात्पर्य कामन्दकीय नीतिसार ग्रन्थ से है, जहाँ से उसने अनेक नीति पद्यों और तथ्यों को संकलित किया है। यद्यपि लेखक ने अपने ग्रन्थ में पंचतन्त्र की रोचकता को अक्षुण्ण बनाये रखा है और कई कथाओं को वहीं से लेकर कुछ हेर फेर कर रखा है तथापि उसने अपने इस ग्रन्थ में अनेक नवीन बातें, अनेक नवीन नीति परक श्लोक एवं अनेक उपदेशात्मक कहानियाँ नये रूप में जोड़ी है और कामन्दकीय नीतिसार के प्रति विशेष आदर दिखलाया है, फिर भी उसकी अनेक नवीन उद्भावनाओं का आधार केवल उक्त ग्रन्थ ही नहीं हो सकता है। उस समय कोई अन्य नीति ग्रन्थ भी रहा होगा जिसके आधार ये नूतन कहानियाँ लिखी गई होंगी अथवा कवि कल्पना प्रसूत भी हो सकती है जो कुछ भी हो, यह निश्चय है, कि लेखक की यह एक स्वतन्त्र कृति है पंचतन्त्र का प्रक्षिप्त या विकसित रूप नहीं।

पंच तन्त्र से इसके प्रकरणों में एवं भाषा तथा शैली में भी अन्तर है। पंच तन्त्र में पाँच तन्त्र अथवा प्रकरण हैं पर हितोपदेश में मित्र लाभ, सुहृद भेद, विग्रह और सन्धि नामक चार ही परिच्छेद हैं। मित्र लाभ, पंचतन्त्र के मित्र सम्प्राप्ति का, सुहृद् भेद, पंचतन्त्र के मित्र भेद का, विग्रह. पंचतन्त्र के काकोलूकीय एवं लब्ध प्रणाश का प्रतिनिधि है। हितोपदेश का सन्धि नामक परिच्छेद स्वतन्त्र है। इसके अतिरिक्त हितोपदेश में पंचतन्त्र की अपेक्षा अधिक उपदेशात्मकता है। कवि का ध्यान रोचक कहानियों की अपेक्षा उपदेश पर ही अधिक रहा है अतएव कवि ने इसे ऐसा ही नाम भी दिया है। यद्यपि हितोपदेश की कहानियों में भी कम रोचकता नहीं है तथापि वे यहाँ साधन रूप में ही अपनाई गई है, कवि का साध्य उपदेश है कथा लिखना नहीं। भाषा भी पंचतन्त्र की अपेक्षा सरल और रोचक है, इसका प्रचलन भी बगाल में अधिक है, अन्यत्र भी नैतिक उपदेश की दृष्टि से लोग पंचतन्त्र की अपेक्षा हितोपदेश को ही अधिक अपनाते हैं। इसमें स्थान-स्थान पर सुन्दर लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया गया है। कवि ने स्वयं इस ग्रन्थ का उद्देश्य

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

आचरण की शिक्षा देना तथा संस्कृत भाषा का ज्ञान कराना बतलाया है, और वह इसमें सफल भी हुआ है। इसकी भाषा इतनी सरल है कि साधारण संस्कृत का ज्ञान रखने वाला भी इसे सरलता से समझ सकता है।

हितोपदेश की विशेषता

यद्यपि इसकी कथाओं में कलात्मकता की कमी है तथापि यह एक परिष्कृत कृति है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी उपदेशात्मकता में है। पशु पक्षियों की साधारण कहानियों द्वारा इसमें व्यावहारिक जीवन के आदर्श एवं सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं, जिनका उद्देश्य मानव समाज को व्यवहार कुशल एवं राजनीति पटु तथा सदाचारी बनाना है। इसका सम्बन्ध किसी वर्ग विशेष से न होकर मानव मात्र से है। इसमें स्थान-स्थान पर अनेक सदाचार परक श्लोक उपलब्ध होते हैं जो कि प्राचीन स्मृतियों से और नीति-ग्रन्थों से लिये गए हैं। फिर भी यह ग्रन्थ धर्मशास्त्र की भाँति मानव के लिये विधि निषेध विधान नहीं करता अपितु साधारण कहानियों द्वारा लोक सामान्य को सदाचार का मार्ग प्रशस्त करता है, इसमें मानव मात्र के कर्तव्यों को तथा उसके दैनिक जीवन एवं पारस्परिक सम्पर्क की सामान्य बातों की विवेचना की गई है जिससे कि मनुष्य इन नीतियों एवं व्यवहारों के अनुसार चलकर अपने जीवन को सफल बना सके। वस्तुतः नैतिक जीवन वह जीवन होता है जिसमें मनुष्य की समस्त शक्तियों और सम्भावनाओं का विकास हो अर्थात् एक ऐसे जीवन की प्राप्ति हो सके जिसमें आत्मरक्षा धन समृद्धि, सत्कर्म, मित्रता एवं विद्या की प्राप्ति हो सके और इन सबका इस प्रकार समन्वय किया गया हो जिससे आनन्दोपलब्धि पूर्वक मनुष्य निश्चिन्त होकर सफलता पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। इसी नैतिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गई है और लेखक को इसमें पूर्ण सफलता मिली है।

वस्तुतः हितोपदेश एक उपदेश परक रचना है इनमें लेखक ने अपनी व्यवहार कुशलता का परिचय दिया है। उसका वर्णन कौशल एवं विषय प्रतिपादन प्रशंसनीय है। विषय को रोचक एवं सारल्येन हृदयङ्गम कराने की दृष्टि से इसमें कई स्थानों पर हास्य विनोद एवं व्यङ्ग्य के पुट भी देखे जाते हैं। कथा शीर्षकों के अतिरिक्त जहाँ जिस प्रकार की नीति व्याख्या करना आवश्यक समझा गया है वहाँ भी पद्यों का प्रयोग किया है। गद्य और पद्य दोनों

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ही की भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है। कथायें छोटी-छोटी पर सारगर्भित एवं रोचक है, अतएव यह सर्व सामान्य के लिये बोधगम्य है।

इसके मानवेतर पात्र प्राय: दो प्रकार के हैं सजीव प्राणी तथा अचेतन पदार्थ। पशुओं में सिंह व्याघ्र शृगाल शशक मृग वृषभ आदि, पक्षियों में काक उलूक कपोत मयूर शुक चटक तथा इतर प्राणियों में सर्प नकुल चूहा कछुआ मेंढक मछली आदि इसके अतिरिक्त नदी समुद्र वृक्ष पर्वत गुहा आदि भी पात्र के रूप में प्रयुक्त हुये हैं। यद्यपि इनमें कुछ मानव पात्र भी हैं तथापि उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हैं, हिरण्यक आदि मानवेतर जीवों द्वारा इनको दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है, अत: मानवेतर प्राणियों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण ये भी नीति कथा के ही आधीन हैं और संख्या में भी ये पात्र पशु पक्षियों की अपेक्षा कम ही हैं।

हितोपदेश मित्रलाभ

कथासार

ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण के उपरान्त लेखक ने अपने इस ग्रन्थ की उपादेयता बतलाई है कि इसके पढ़ने से संस्कृत भाषा के प्रयोग में चतुरता तथा लोक व्यवहार की अभिज्ञता प्राप्त होती है। इसके बाद कवि ने सातवें श्लोक तक विद्या की प्रशंसा कर ८ वें श्लोक में अपने ग्रन्थ का उद्देश्य बतलाते हुये कहा है—

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।

इसके बाद पृष्ठ ९ से कथा का आरम्भ किया है। इस कथामुख में लेखक ने बतलाया है कि गंगा जी के तट पर पाटिल पुत्र (पटना) नामक नगर है, वहाँ एक गुणवान् सुदर्शन नाम के राजा रहते थे। एक बार उन्होंने किसी से दो श्लोक सुने जिनका आशय था कि अनेक संशयों को मिटाने वाला और परोक्ष पदार्थ को भी दिखलाने वाला शास्त्र ही सबका नेत्र होता है, यह नेत्र जिसके पास नहीं होता, वह नेत्रवान् होकर भी अन्धा ही रहता है। युवावस्था, धन, प्रभुता और अविचार, इन चारों में से एक-एक भी अनर्थकारी है, जहाँ ये चारों ही होते हैं वहाँ तो कहना ही क्या? यह सुनकर

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपने पुत्रों के मूर्ख और कुमार्गी होने के कारण वह सोचने लगा, कि जिसका पुत्र गुणवान् विद्वान् धर्मात्मा और वशवर्ती नहीं है उसका होना व्यर्थ ही है, अतः किस प्रकार मैं अपने पुत्रों को विद्वान् और गुणी बनाऊँ, यह सोच कर उसने पण्डितों की सभा की और उनसे अपने पुत्रों को गुणवान् एवं नीतिज्ञ बनाने को कहा, उन पण्डितों में से विष्णु शर्मा नामक पण्डित ने कहा कि मैं इनको छः मास में विद्वान् एवं नीतिज्ञ बना दूँगा, यह सुनकर राजा ने अपने पुत्रों को विष्णु शर्मा को समर्पित कर दिया। (पृष्ठ ९ से ३५ तक)

इसके बाद राज प्रासाद की छत पर आराम से बैठे हुए राजपुत्रों के आने अवसरानुकूल ढंग से विष्णु शर्मा ने कहा हे राजपुत्रो ! सुनो।

बुद्धिमानों का समय तो काव्यशास्त्र के आनन्द से बीतता है पर मूर्ख लोग इस समय को दुर्व्यसनों में और कलह में बिताते हैं, अतः हमको अपना समय काव्य शास्त्र के विनोद में ही बिताना चाहिए, इसलिए आज मैं आप लोगों के मनो विनोद के लिए काक कूर्म आदि की विचित्र कथा को कहता हूँ और इस प्रकार तब उन्होंने कहना आरम्भ किया कि साधनों से रहित, धन से भी रहित होकर बुद्धिमान् मनुष्य, यदि उनके अच्छे मित्र होते हैं तो वे उसी प्रकार अपने काम में सफलता पाते हैं जैसे कौवा कच्छप मृग और चूहे ने सफलता पाई थी। राजपुत्रों ने पूंछा, यह कैसे ? तब विष्णु शर्मा ने कहा—

कि गोदावरी नदी के किनारे एक विशाल सेमल का पेड़ था, वहाँ रात को अनेक पक्षी बसेरा लेते थे। किसी समय प्रातः जाग कर उस वृक्ष पर रहने वाले कौवे ने यमराज के समान आते हुए एक व्याघ्र को देखा, और सोचा कि न जाने आज का दिन किस प्रकार बीतेगा। ऐसा सोचकर वह उसके पीछे चल दिया। बहेलिये ने चावलों को फैला कर जाल लगा दिया और छिपकर बैठ गया। इसी बीच चित्रग्रीव नामक कबूतरों के राजा ने सपरिवार आकाश में उड़ते हुए दूर से उन चावलों को देखा और चावल चुनने के लिए लालायित कबूतरों से कहा कि इस निर्जन वन में चावल कहाँ से आ सकते हैं, अतः तुम लोग इनसे दूर रहना, अन्यथा चावलों के लोभ से हमारी भी वही दशा होगी जो कि स्वर्णकंकण के लोभ से उस लालची ब्राह्मण की हुई थी, कबूतरों ने पूछा, यह कैसे ! चित्रग्रीव ने कहा—

(पृष्ठ ४० तक)

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कथा १

मैं जब कि एक बार दक्षिण के जंगल में घूम रहा था, तब मैंने देखा कि एक बूढ़ा व्याघ्र स्नान करके कुश हाथ में लेकर सरोवर के किनारे कहता है कि हे पथिको ! इस सोने के कंकण को लो, तब लोभ के वशीभूत होकर किसी पथिक ने सोचा भाग्य से ही ऐसा होता है, परन्तु सहसा ऐसा कार्य में न पड़ना चाहिए, फिर भी उससे पूछा कि यह कंकण कहाँ है व्याघ्र ने हाथ फैलाकर दिखा दिया, पथिक ने पूछा कि तुझ हत्यारे जीव का कैसे विश्वास किया जाय, तो उसने कहा कि पहले मैं अवश्य जीव हत्या करता था, जिससे कि मैं वंश हीन हो गया, तब किसी धार्मिक के उपदेश से मैंने हत्या करना बन्द कर दिया अब मैं नित्यस्नायी और दानी बन गया हूँ, तुम दीन हो इसलिए मैं तुम्हें दान देना चाहता हूँ इसलिए सरोवर में स्नान कर इस स्वर्णकंकण को ले लो, उसकी ऐसी बनावटी बातों से विश्वास में आकर ज्यों ही वह सरोवर में घुसा त्योंही कीचड़ में फंस गया, बाघ ने लपक कर उसे पकड़ लिया और खा डाला। चित्रग्रीव ने कहा इसलिए मैं कहता हूँ कि लोभ नहीं करना चाहिए, किन्तु उनमें से एक कबूतर ने कहा—

कि यदि सर्वत्र सन्देह ही किया जायेगा और सर्वत्र राजा की बात ही मानी जायेगी तब तो खाना मिलना भी दुर्लभ हो जायेगा अतः मैं यह नहीं मानता, उसकी बात सुन कर सभी कबूतर नीचे उतरे और जाल मे बंध गये, और तब वे परस्पर एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे, तब चित्रग्रीव ने उन्हें समझाया कि यह सब कुछ भाग्य का दोष है, अतः अब विवाद न करके इसका प्रतीकार करना चाहिये और सब लोगों को एक मन होकर जाल को लेकर उड़ चलना चाहिये। ऐसा ही निश्चय कर सभी जाल को लेकर उड़ गये, बहेलिया निराश होकर लौट गया। तब चित्रग्रीव ने कहा कि चित्र वन में मेरा मित्र हिरण्यक नामक चूहा रहता है वहाँ चलो वह हमारे बन्धन काट देगा, यह निश्चय करके सब वहाँ गये।

हिरण्यक वहाँ सौ द्वार वाला बिल बनाकर रहता था। चित्रग्रीव को पहचान कर वह बाहर आया और पूंछा, मित्र। यह कैसे हुआ. उसने कहा, यह सब भाग्य का ही खेल है। यह सुन कर हिरण्यक से चित्रग्रीव ने कहा कि आप पहले इन हमारे आश्रितों के बन्धन काटें यदि फिर आप में शक्ति रहे

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तो मेरे भी काट देना, उसकी इस बात से और अधिक प्रसन्न होकर हिरण्यक ने सबके बन्धन काट दिये, और वे उससे विदा लेकर अपने स्थान को चले गये। (पृष्ठ ७५ तक)

लघु पतनक नामक कौवा जो इस सब वृत्तान्त को देख रहा था, बड़ा आश्चर्य चकित हुआ, और हिरण्यक से बोला, तुम धन्य हो, मैं तुमसे मित्रता चाहता हूँ। हिरण्यक ने विल में से ही कहा कि तुम मेरे भक्षक हो और मैं तुम्हारा भक्ष्य, अतः हम दोनों में मित्रता सम्भव नहीं क्योंकि भक्ष्य भक्षक की प्रीति विपत्ति का ही कारण होती है, देखो, गीदड़ के कारण पाश में बँधा हुआ मृग कौवे से रक्षित हुआ था। कौवे ने पूछा, यह कैसे —हिरण्यक ने कहा—

(पृष्ठ ७७ तक)

२. मृगशृगाल कथा

मगध देश में चम्पकवती नामक बहुत बड़ा जंगल है, वहाँ चिरकाल से बड़े प्रेम से मृग और कौवा रहते थे एक दिन एक गीदड़ ने मृग को देखा और सोचा कि किस प्रकार इसका सुन्दर मांस खाने को मिले, कुछ सोच कर वह उसके पास जाकर बोला मित्र ! मैं क्षुद्रबुद्धि नाम का गीदड़ हूँ, मैं वंश-हीन होकर मृतक वत् रहा हूँ, इस समय तुम्हें मित्र पाकर पुनः जीवित हो रहा हूँ। मैं तुम्हारा सेवक बन कर रहूँगा। मृग ने कहा ऐसा ही हो, तब दोनों मृग के निवास स्थान को गये, वहाँ सुबुद्धि नामक मृग का चिर मित्र कौवा रहता था, उसने पूछा यह कौन है, उसने बताया यह गीदड़ है, मुझ से मित्रता की इच्छा से आया है, कौवे ने कहा अकस्मात् आये हुये व्यक्ति के साथ मित्रता करना उचित नहीं।

क्योंकि जिसके कुल शील का पता न हो उसे निवास स्थान न देना चाहिये देखो, बिल्ली के दोष से बूढ़ा गीध मारा गया था, उन दोनों ने पूछा यह कैसे ? कौवे ने कहा—(पृष्ठ ८० तक)

३. जरद्गव विडाल कथा

गंगा के किनारे गृध्रकूट नामक पर्वत पर एक विशाल पाकड़ का वृक्ष था, उसके खोखले में नख नेत्र विहीन एक बूढ़ा गीध रहता था, उसका नाम जरद्गव था। उस वृक्ष पर रहने वाले अन्य पक्षी उसे थोड़ा सा खाना दे देते थे इससे वह जीता रहता और उनके बच्चों की रक्षा करता था।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

एक दिन दीर्घ कर्ण नामक विलाव पक्षियों के बच्चों को खाने के लिये वहाँ आया उसे आता देख कर पक्षी चिल्लाने लगे, यह सुनकर गीध्र ने कहा—कौन है, विलाव ने सोचा अब तो मैं मर गया, क्या करूँ, भागा भी नहीं सकता, फिर वह कुछ सोच कर उसके पास गया और प्रणाम किया, उसने पूछा तुम यहाँ कैसे आये, यहां तो पक्षियों के बच्चे रहते हैं तुम उन्हें खा जाओगे, चले जाओ, नहीं तो मार डालूंगा। विलाव ने कहा कि आप पहले मेरी बात तो सुन लें, फिर जो चाहें वह करें। उसने कहा कि मैंने मांस खाना छोड़ दिया है मैं नित्य स्नान करने वाला, ब्रह्मचारी चान्द्रायणव्रती होकर रहता हूँ आप विद्यावयो वृद्ध है आपसे मैं धर्मोपदेश सुनने आया हूं। इस प्रकार वह उसे विश्वास दिला कर वहाँ रहने लगा। और पक्षियों के बच्चों को मारकर खाने लगा, जब पक्षियों ने खोंज की तब विलाव तो निकल कर भाग गया, पर पक्षियों ने, गीध्र के कोटर के पास हड्डियाँ पाकर और यह निश्चय कर कि इसी गीध्र ने उनके बच्चे खा डाले हैं, उसे मार डाला कौवे ने कहा कि इसीलिये मैं कहता हूँ कि अपरिचित को स्थान न देना चाहिये।

गीदड़ ने कहा कि पहले दिन तो आप भी ऐसे ही रहे होंगे। मृग ने कहा कोई बात नहीं, इसे भी रहने दो, इस प्रकार तीनों एक साथ रहने लगे।

एक दिन गीदड़ ने मृग से कहा मित्र ! इस वन के एक भाग में हरित धान्यों का एक खेत है, मैं तुम्हें वहाँ ले चलता हूँ मृग भी उसके साथ वहाँ जाकर धान्य खाने लगा खेत के स्वामी ने वहाँ जाल लगा रखा था, वह मृग उसमें फंस गया। उसने कहा मित्र गीदड़ तुम मेरे बन्धन काट दो, गीदड़ ने कहा कि आज तो रविवार है, मैं अपने दाँतों से इन पाशों का स्पर्श नहीं कर सकता क्योंकि ये मांस के बने हुये हैं, पर कल प्रातः मैं आकर इन्हें काट दूंगा, तुम बुरा मत मानना, ऐसा कह कर वह छिपकर वहीं बैठ गया, इतने में कौवा उसे खोजता हुआ वहाँ आया, और मृग को इस दशा में देखकर पूँछा, यह क्या हुआ, मृग ने कहा, मित्र की बात न मानने का यह फल भोग रहा हूँ, उसने पूँछा वह चालाक गीदड़ कहाँ है, उसने कहा—मेरे माँस का इच्छुक वह यहीं कहीं बैठा होगा। जब कौवे ने देखा खेत का स्वामी डण्डा लिये आ रहा है, तब उसने मृग से कहा कि अब अपने आपको मरे जैसा

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

दिखलाओ, पेट फुलाकर पैरों को स्तब्ध कर लो, जब मैं शब्द करूँ तब तुम उठकर भाग जाना। मृग ने ऐसा ही किया, खेत के स्वामी ने उसे मरा हुआ जानकर धीरे धीरे जाल समेटना आरम्भ किया, इसी बीच में कौवे का शब्द सुनकर मृग उठ कर भाग गया, यह देखकर खेत के स्वामी नें अपना डंडा फेंका जिससे वहीं बैठा हुआ वह गीदड़ मर गया और मृग भाग गया हिरण्यक नें कहा कि इसी लिये मैं कहता हूँ कि भक्ष्य भक्षक की प्रीति विपत्ति का कारण होती है। मेरी तुम्हारी मित्रता नहीं हो सकती।

हिरण्यक का ऐसा निश्चय जानकर कौवे ने कहा कि यदि तुम मेरे साथ मित्रता न करोगे तो मैं अनशन करके मर जाऊँगा, तब हिरण्यक बाहर आया और उससे मित्रता कर उसका सत्कार किया। इस प्रकार दोनों मित्र बनकर रहने लगे।

एक दिन, लघुपतनक ने, हिरण्यक से कहा मित्र ! इस स्थान पर खाना बड़ी कठिनाई से मिलता हैं, अतः मैं दूसरे स्थान पर जाना चाहता हूँ, हिरण्यक ने पूछा कहाँ जाओगे, उसने कहा कि दण्डकारण्य में कर्पूर गौर नामक एक सरोवर है वहाँ मेरा चिर मित्र मन्थर नामक कच्छप रहता है, वह हमारा सत्कार करेगा वहाँ जाना चाहता हूँ। हिरण्यक ने कहा कि तब मैं यहाँ अकेला रह कर क्या करूँगा, मुझे भी वहाँ ले चलो।

तब वे दोनों उस सरोवर के पास पहूँचे, लघुपतनक को आता देखकर मन्थर ने उसका और हिरण्यक का भी सत्कार किया। लघुपतनक ने कहा मित्र ! यह हिरण्यक नामक मूषक राज मेरा परम मित्र है, यह बड़ा बुद्धिमान नीतिज्ञ एवं परम सहायक है, तब मन्थर ने उससे पूछा कि आप इस निर्जन वन में कैसे आये हैं—

हिरण्यक ने कहा कि चम्पक नामक नगरी में संन्यासियों का निवास स्थान है। वहाँ चूड़ा कर्ण नाम का एक सन्यासी रहता था। वह भिक्षा से बचे अन्न को खूंटी पर लटका कर रख देता था, जब वह सो जाता था तब मैं उसे उछल कर खा लिया करता था इसी बीच एक दिन उसका प्रियमित्र वीणाकर्ण नाम का एक सन्यासी उसके पास आया रात में जब वह कथा कह रहा था तब चूणाकर्ण, एक फटे बांस से मुझे डराने के लिये उस खूंठी पर खट खटाता था, और उसकी कथा पर ध्यान न देता था। उसके पूछने

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

पर उसने कहा, क्या करूँ, यह चूहा उछल कर सब अन्न खा जाता है, उसी को डराने के लिये ऐसा करता हूँ। उसके मित्र ने कहा कि जो यह चूहा इतना ऊँचा उछल जाता है तो इसमें कोई न कोई कारण अवश्य होगा।

यदि एक युवती वृद्ध पति का गाढालिंगन न कर, बाल पकड़ कर चुम्बन करती है, तो इसमें कोई न कोई कारण अवश्य होगा—

चूड़ा कर्ण ने पूछा, यह कैसे. वीणा कर्ण ने कहा—(पृष्ठ १२५ तक)

कथा ३

कौशाम्बी नाम नगरी में चन्दनदास नाम का एक सेठ रहता था, उसने वृद्धावस्था में लीलावती नाम की युवती से विवाह किया, किन्तु वृद्ध पति उसके सन्तोष के लिए पर्याप्त न था अतः वह एक युवक से प्रेम करने लगी। एक दिन वह लीलावती उस युवक के साथ पलंग पर आराम से बैठी प्रेमालाप कर रही थी इसी समय अकस्मात् आये हुये पति को देखकर वह सहसा उठकर बड़े प्रेम से उसका आलिंगन चुम्बन करने लगी, इसी बीच वह लम्पट युवक भाग गया। उसके इस प्रकार के आलिंगन को देखकर समीप वर्तिनी कुट्टिनी ने उसका पता लगा कर उसे दण्डित कराया।

वीणा कर्ण ने कहा कि इसीलिये मैं कहता हूँ कि चूहे के इतनी दूर तक उछलने का कोई कारण अवश्य होगा, और धन का आधिक्य ही इसका कारण होगा—

हिरण्यक ने कहा कि तब उन दोनों ने मेरे निधान को खोद कर मेरा सब धन ले लिया तब से मैं शक्तिहीन और उत्साह रहित हो गया मुझे ऐसा देख कर चूणा कर्ण ने कहा था कि धन से ही सब बलवान् होते हैं, अब धन हीन इस चूहे की कैसी दशा हो गई है। इसी दुःख से मैंने उस स्थान पर रहना उचित नहीं समझा धनहीन हो कर बन्धुजनों में रहना उपहास का कारण होता है। मांग कर खाना और भी अनुचित होता है। किन्तु फिर भी मैंने अपने उस धन को प्राप्त करने का प्रयास किया किन्तु वीणा कर्ण के द्वारा पुनः ताड़ित होकर दुःखी होकर निर्जन वन में चला आया। इसके अनन्तर इस कौवे से मेरी मित्रता हो गई और अब आपका भी स्नेह पाकर मैं धन्य हो गया हूँ।

मन्थर ने कहा कि मित्र धन सञ्चय करना अच्छा नहीं होता, कुछ संचय तो अवश्य करना चाहिए पर अधिक संचय उचित नहीं होता, देखो, अति

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अति संचय करने वाला गीदड़ धनुष् की कोटि से मारा गया था। मृग और कौवे ने पूछा यह कैसे—मन्थर ने कहा —(पृष्ठ १६० तक)

संचयशील जम्बुक कथा

कल्याण कटक का रहने वाला भैरव नामक एक बहेलिया था। एक दिन वह धनुष् लेकर मृग को खोजता हुआ जंगल में गया। जब वह मृग को मार कर ले जा रहा था तब उसने एक बड़ा भयानक शूकर देखा, उसने तुरन्त मृग को रख कर शूकर पर बाण मारा, घायल शूकर ने आक्रमण कर उसे भी मार डाला और वह स्वयं भी मर गया. और उन दोनों के इस युद्ध में एक सर्प भी वहीं मर गया। इसी बीच एक दीर्घराव नामक गीदड़ वहाँ आया और इन सब को मरा हुआ देख कर सोचा, भाग्य से बहुत बड़ा भोजन मिल गया, तीन माह सुख से बीत जायेंगे। एक माह तक मनुष्य, दो माह तक मृग और शूकर तथा एक दिन तक यह सर्प भोजन होगा इसलिये आज मैं इस धनुष् की कोटि के मांस को खाऊँगा। यह कह कर ज्योंही उसने उसे मुंह में रखा त्योंहि उसके टूटने पर वह हृदय में घायल होकर नहीं मर गया। इसलिये कभी अधिक संचय न करना चाहिये। पृ० १३६ तक

मन्थर ने कहा अब तुम सुखी और सोत्साह रहो, चिन्ता न करो। हम लोगों के साथ तुम्हें कोई कष्ट न होगा। इस प्रकार वे तीनों सुख पूर्वक रहने लगे।

किसी सयय चित्राङ्ग नामक एक मृग भी उनसे आकर मिल गया। मृग ने कहा इस वन में मुझे मारने के लिये बहेलिये घूम रहे हैं उनसे भयभीत होकर मैं यहाँ आया हूं। उसने यह भी कहा कि एक रुक्माङ्गद नाम का राजा अपनी सेना के साथ नदी के किनारे पड़ा हुआ है, वह कल इस सरोवर के पास आयेगा, अतः कहीं अन्यत्र चलना चाहिये।

मन्थर ने कहा मैं दूसरे जलाशय में चला जाऊँगा, कौवे और मृग ने भी ऐसा ही मान लिया, किन्तु चूहे ने कहा. कि जब यह स्थल पर चल रहा होगा तब इसकी रक्षा कैसे होगी? अपितु यह उसी प्रकार दुःखी होगा, जैसे एक वणिक पुत्र अपनी पत्नी के स्तनों को अन्य द्वारा मर्दित देखकर दुःखी हुआ था, उन्होंने पूछा, यह कैसे? हिरण्यक ने कहा—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

वणिक् वधू कथा

कान्य कुब्ज देश में एक वीरसेन नाम का राजा था, तुंगवल नाम का एक राजपुत्र उसका नगर रक्षक था। एक दिन जब वह धनिक युवक नगर में घूम रहा था, उसने एक लावण्य वती नामक वणिक् पुत्र वधू को देखा, अपने महल में पहुँच कर काम पीडित होकर उसने उसके पास एक दूती को भेजा। वह लावण्यवती भी उसे देखकर उसकी ओर यद्यपि आकृष्ट हो चुकी थी, फिर भी पतिव्रता होने के कारण, विना पति की आज्ञा के वह आत्म समर्पण नहीं कर सकती थी। दूती को भी उसने यही उत्तर दिया और कहा कि यदि मेरा पति मुझे समर्पित कर दे तव तो मैं आत्म समर्पण कर सकती हूँ अन्यथा नहीं। दूती ने तुंगवल को यह सब बता दिया। अतिकाम पीड़ित होकर उसने दूती से कहा कोई उपाय बताओ, अन्यथा मैं मर जाऊँगा। दूती ने कहा कि उपाय से सब काम बन जाते है। जो काम उपाय से बन जाता है वह पराक्रम से नहीं वन पाता, देखो, कीचड़ के मार्ग से जाते हुये हाथी को उपाय से ही गीदड़ ने मार डाला था। उसने पूंछा यह कैसे दूती ने कहा — (पृष्ठ १८८ तक)

हस्ति धूर्त शृगाल कथा

ब्रह्मारण्य में कर्पूरतिलक नाम का एक हाथी था। उसे देखकर सब गीदड़ों ने सोचा कि यदि किसी उपाय से यह मर सके तो इसके शरीर से चार महीने का भोजन वन सकेगा। तव एक वृद्ध शृगाल ने प्रतिज्ञा की कि मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से उसे मार सकूंगा। इसके बाद वह उसके पास जाकर प्रणाम कर वोला—महाराज ! कृपा कीजिये, हाथी ने पूछा, तुम कौन हो कहाँ से आये हो, उसने कहा मैं गीदड़ हू। सब वन वाले पशुओं ने मुझे आप के पास भेजा है, कि विना राजा के रहना उचित नहीं, अतः आपको राजा वनाने के लिये सव ने आप को आमन्त्रित किया है। इस लिये आप शीघ्र चलें जिससे कि लग्न वेला न निकल जाय, आप मेरे पीछे-पीछे चले आयें, जव हाथी राज्य के लोभ से आकृष्ट होकर उसके पीछे दौड़ रहा था, तव वह एक बड़े दल-दल में फंस गया, तव हाथी ने कहा कि अब क्या करें कैसे निकलें, गीदड़ ने कहा, मेरी पूँछ पकड़ कर उठ बैठो। जो

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कि तुमने मुझ जैसे व्यक्ति का विश्राम किया है, फलतः अब अशरण दुःख का अनुभव करो इसके बाद कीचड़ में फसे हुये हाथी को गीदड़ों ने खा लिया

दूती ने कहा कि इसी प्रकार उपाय करने से बड़े बड़े कार्य बन जाते हैं।

तब दूती के कहने से उस राजपुत्र ने चारुदत्त नामक उस वणिक पुत्र को अपना सेवक नियुक्त किया। और उसे सभी विश्वस्त कार्यों में लगाया।

एक बार दूती के कथनानुसार उस राजपुत्र ने स्नान कर चन्दन रत्नालंकार धारण कर उस चारुदत्त से कहा कि आज से मैं एक माह तक गौरी व्रत करूँगा, इस लिये आज से तुम प्रतिरात्रि एक कुलीन युवती को लाकर मुझे समर्पित करो, उसकी मैं यथोचित विधि से पूजा करूँगा।

तब वह चारुदत्त उस प्रकार की युवती को लाकर प्रतिरात्रि उसे समर्पित करने लगा और पास ही में छिप कर यह देखने लगा कि वह क्या करता है। उसने देखा कि वह राजपुत्र, उस युवती को बिना स्पर्श किये ही, वस्त्र अलंकार तथा सुगन्धित पदार्थों से पूज कर रक्षक के साथ लौटा देता है। इससे उस वणिक पुत्र को विश्वास हो गया और उसने अपनी पत्नी को लाकर उसे समर्पित कर दिया। उस लावण्यवती को देखकर राजपुत्र ने उठकर आलिङ्गन कर उसके साथ विलास किया यह देखकर चारुदत्त आश्चर्य चकित होकर बड़े दुःख को प्राप्त हुआ। (पृ० १९५ तक)

हिरण्यक ने कहा कि तुम जलाशय में जाओगे तो तुम्हें भी ऐसे ही पछताना पड़ेगा अतः ऐसा न करना चाहिये।

किन्तु मन्थर ने उसकी बात पर ध्यान न दिया और दूसरे जलाशय को चल दिया, तब अनिष्ट की आशका कर दूसरे उसके साथी भी उसके पीछे चलने लगे। तब जंगल में स्थल पर रेंगते हुये उस कछुये को देखकर एक बहेलिया उसे उठाकर अपने धनुष के छोर पर बांध कर, भूख और प्यास से घबड़ाकर घर की ओर चल दिया। उसके तीनों साथी भी उसके पीछे पीछे चलने लगे, जब सब बहुत दुःखी होने लगे तब हिरण्यक ने मृग और कौवे से कहा कि जब तक अभी यह बहेलिया वन में है तभी तक मित्र मन्थर को छुड़ा लेना चाहिये, उसने कहा कि चित्राङ्ग जल के समीप जाकर अपने को मृतक जैसा दिखलाये और कौवा उस पर बैठकर अपनी चोंच से

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

उसे कुरेदने लगे। यह वहेलिया तब मृग को मरा हुआ जान कर कच्छप को फेंक कर मृग के लिये दौड़ेगा, इसी बीच मैं कच्छप के बन्धन काट दूंगा, लुब्धक के पास आने पर तुम दोनों भाग जाना। ऐसा ही कहने पर जब वहेलिये ने देखा कि मृग मरा पड़ा है तब वह कच्छप को पटक कर छुरी लेकर मृग के लिये भागा। इसी बीच चूहे ने कच्छप के बन्धन काट दिये और वह शीघ्र ही जल में प्रविष्ट हो गया। वहेलिये को पास आता देख कर कौवा और मृग भी भाग गये, जब वहेलिये ने लौटकर देखा तो वहाँ कच्छप को भी न पाकर वहुत दुःखी हुआ और निराश होकर अपने घर लौट गया। इसके बाद चारों मित्र मिल कर सुख से रहने लगे।

राजपुत्र इस कथा को सुनकर अति प्रसन्न हुये और कहा कि हमारी इच्छा पूर्ण हो गई।

यहीं पर हितोपदेश का मित्र लाभ समाप्त होता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

श्रीः

हितोपदेश—मित्रलाभः

(सरल हिन्दी व्याख्योपेतः)

मङ्गलाचरणम्

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु प्रसादा त्तस्य धूर्जटेः ।
जाह्नवीफेनलेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला ॥ १ ॥

सिद्धिरिति-अन्वयः—यन्मूर्ध्नि शशिनः कला जाह्नवीफेनलेखा इव (विराजते) तस्य धूर्जटेः प्रसादात् सताम् साध्ये सिद्धिः अस्तु ।

शब्दार्थ—यन्मूर्ध्नि = जिन के शिर पर, शशिनः कला = चन्द्रमा की कला, जाह्नवीफेनलेखा इव = गंगाजी के फेन (झाग) की रेखा के समान (विराजते = शोभा पाती है) तस्य धूर्जटेः = उन शंकर जी के, प्रसादात् = अनुग्रह से, सताम् = सज्जनों के, साध्ये = अभिलषित कार्य में, सिद्धिः अस्तु = सिद्धि हो ।

अनुवाद—जिन (भगवान् शंकर जी) के मस्तक अर्थात् ललाट पर चन्द्रमा की कला गंगाजी के फेन की रेखा के समान (शोभा पाती है) उन शंकर जी के अनुग्रह से सज्जनों के अभिलषित कार्य में सिद्धि अर्थात् सफलता प्राप्त हो ।

भावार्थ—भगवती गंगा की फेनलेखा के समान जिनके ललाट पर चन्द्र कला शोभा पाती है, उन भगवान् शिव की कृपा से सज्जनों के मनोवाञ्छित कार्य सिद्ध हों । तात्पर्य यह है कि जो सज्जन सदाचारी तथा सद्-व्यवहार करने वाले होते हैं, ऐसे ही लोगों पर भगवान् शिव की कृपा दृष्टि होती है । जिससे उन्हें अपने कार्यों में सफलता प्राप्त होती है ।

वस्तुतः यह मंगलाचरण का श्लोक है, कवि ने इसके द्वारा भगवान् शिव की स्तुति कर अपने इस ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति की कामना की है तथा सज्जनों की कार्यसिद्धि के लिए भी मंगल कामना की है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ग्रन्थस्योपादेयता

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु ।
वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च ॥ २ ॥

गंगाजी का एक नाम जाह्नवी भी है। जब महाराज भगीरथ ने अपनी तपस्या से भगवान् परमेष्ठी को प्रसन्न कर उनसे गंगाजी को मांग लिया और फलतः जब गंगाजी बड़े-वेग से उनके साथ पृथिवी पर प्रवाहित होने लगीं तब मार्ग में जह्नु नामक ऋषि की यज्ञ शाला पड़ी, गंगाजी ने अपनी प्रबल धारा से उसे बहा दिया जिससे क्रुद्ध हो जह्नु मुनि ने उन्हें पी डाला, किन्तु जब भगीरथ तथान्य मुनियों ने उनसे प्रार्थना की तब जह्नु मुनि ने गंगा को अपने कर्णविवर से निकाल दिया, इस प्रकार जह्नु मुनि द्वारा उन्हें पुनः प्रकट या उत्पन्न करने के कारण गंगाजी का यह दूसरा नाम जाह्नवी-जह्नकन्या पड़ा।

विशेष—यन्मूर्ध्नि-यस्य मूर्धा तस्मिन्, मूर्धा शब्द का यहाँ अर्थ ललाट है। **कला**-कला तु षोडशो भागः। **जाह्नवी**—जह्नोः अपत्यं स्त्री जाह्नवी-जह्नु अपत्यार्थे अण्-ङीप्। **धूर्जटिः**-धूः भारभूता जटिः जटा यस्य सः। **सिद्धिः**-षिध् + क्तिन्, सफलता, **साध्य**-साध् + णिच् + यत्। **प्रसादः**-प्र + सद् + घञ्, **सताम्**-कवि का यहाँ इससे विशेष तात्पर्य अध्ययनशील सदाचारी विद्यार्थियों से है।

ग्रन्थ की उपादेयता

श्रुत इति-अन्वय—श्रुतः अयम् हितोपदेशः संस्कृतोक्तिषु पाटवम् सर्वत्र वाचाम् वैचित्र्यम् नीति-विद्याम् च ददाति।

शब्दार्थ—श्रुतः—अधीत, गुरुमुख से पढ़कर सुना गया, अयम् = यह-बुद्धिस्थ, हितोपदेश = हितकर उपदेश अर्थात् हितोपदेश नामक ग्रन्थ, संस्कृतोक्तिषु = संस्कृत भाषा की उक्तियों—भाषणों में, पाटवम् = चतुरता को, सर्वत्र = सर्वत्र संस्कृत शब्दों के प्रयोगात्मक व्यवहार में, वाचाम् = वचन प्रयोगों की, वैचित्र्यम् = विचित्रता को, नवीनार्थशीलता को, विशिष्टता को, नीतिविद्याम् च = और साम दाम भेद दण्ड रूप चतुर्विध लोक व्यवहार कुशलता को, ददाति = देता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विद्या प्रशंसा

अजरा मरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥३॥

अनुवाद—गुरुमुख से पढ़कर मनोनीत किया गया यह हितोपदेश नामक ग्रन्थ, संस्कृत भाषा के भाषणों में चतुरता को, सर्वत्र संस्कृत शब्दों के प्रयोगात्मक व्यवहार में वचन प्रयोगों की विशिष्टता को एवं सामादिनीति व्यवहार कुशलता को देता है।

भावार्थ—इस हितोपदेश नामक ग्रन्थ के अध्ययन से मनुष्य को, संस्कृत भाषा बोलने में निपुणता सर्वत्र संस्कृत भाषा के प्रयोग में विशिष्टता एवं नीतिविद्या में कुशलता प्राप्त होती है।

विशेष—पाटवम् –पटो र्भावः इत्यर्थे पटु शब्दात् भावे अण्। हितोपदेशः—हितकरः उपदेशः यस्मात् स हितोपदेशनामा ग्रन्थः संस्कृतोक्तिषु—संस्कृताः उक्तयः तासु, वाचाम् वच्=क्विप् वैचित्र्यम्-विचित्रस्य भावः ष्यञ्, नीति-विद्याम्-नी+क्तिन्, विद्+क्यप्। नीयते लभ्यते स्वाभीष्ट पदार्थः यया सा नीतिः अथवा नीयते प्राप्यते स्वाभीष्ट सिद्धिरनया। नीतिः—स्वाभीष्टसाधनानुकूलो लोकव्यवहारः।

अजरेति-अन्वय—प्राज्ञः अजरामरवत् विद्याम् अर्थम् च चिन्तयेत्, मृत्युना केशेषु गृहीतः इव धर्मम् आचरेत्।

शब्दार्थ—प्राज्ञः=बुद्धिमान्, अजरामरवत्=अजर (वृद्ध न होना) और अमर के समान, विद्याम् अर्थम् च्=विद्या और धन को, चिन्तयेत=अर्जित करना चाहिए, मृत्युना=मृत्यु के द्वारा, केशेषु गृहीतः इव=शिर के वाल पकड़े हुए के समान, धर्मम् आचरेत्=धर्माचरण करना चाहिये।

अनुवाद—बुद्धिमान् मनुष्य को (अपने को) अजर और अमर समझ कर विद्या और धन को अर्जित करना चाहिए तथा यह समझ कर कि मृत्यु ले जाने के लिए बाल पकड़े खड़ा है, धर्माचरण करना चाहिए।

भावार्थ—मनुष्य को यह समझ कर कि हम न कभी वृद्ध होंगे और न मरेंगे, विद्या और धन कमाना चाहिये, किन्तु यह समझ कर कि हम मरने ही वाले हैं, धर्म करना चाहिए।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्
अहार्यत्वा दनर्घ्यत्वा दक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥ ४ ॥

विशेष—**प्राज्ञः**—प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञः प्रज्ञ एव प्राज्ञः स्वार्थे अण्, **अजरामरवत्**-न विद्यते जरा वार्धक्यं यस्य सः अजरः अथवा न जीर्य्यते इति अजरः, न म्रियते इति अमरः, अजर श्चा सौ अमरः स इव इति अजरामरवत् तुल्यार्थे वतिः । **गृहीतः**-ग्रह कर्मणि क्तः **केशेषु**-अत्र कर्मणि सप्तमी । **चिन्तयेत्**-उपार्जयेत् इत्यर्थः **विद्याम्**-शास्त्रज्ञान और कलाज्ञान, **अर्थम्**-द्रव्य-धन ।

सर्वेति-अन्वय—सर्वदा अहार्यत्वात् अनर्घ्यत्वात् अक्षयत्वात् च सर्वद्रव्येषु विद्या एव अनुत्तमम् द्रव्यम् (अस्ति इति प्राज्ञाः) आहुः ।

शब्दार्थ—सर्वदा=सब कालों में, अहार्यत्वात्=चोर आदि से हरण करने योग्य न होने के कारण, अनर्घ्यत्वात्=अमूल्य होने के कारण अर्थात् धन आदि के मूल्य से भी न प्राप्त करने योग्य होने के कारण, अक्षयत्वात्=न कभी विनष्ट होने योग्य होने के कारण, सर्वद्रव्येषु=सभी प्रकार के सुवर्ण आदि क्रय विक्रय योग्य पदार्थों में, विद्या एव=शास्त्र एवं कलात्मक ज्ञानरूपा विद्या ही, अनुत्तमम्=सब से अधिक उत्कृष्ट, द्रव्यम्=धन, (है ऐसा बुद्धिमान् जन) आहुः=कंहते हैं ।

अनुवाद—सदा चोर आदि से हरण करने योग्य न होने के कारण, अमूल्य होने के कारण, तथा कभी भी विनाश योग्य न होने के कारण, सभी प्रकार के धनों में विद्या ही सर्वोत्तम (धन होता है ऐसा बुद्धिमान जन) कहते हैं ।

भावार्थ—विद्या सर्वोत्तम धन होता है, क्योंकि इसे न तो कोई चुरा सकता है, न इसे धनादि देकर खरीद सकता है और न विद्या कभी नष्ट ही होती है, अपितु व्यय करने पर और अधिक बढ़ती ही है ।

विशेष—**अहार्यत्वात्**-हर्तुं योग्या हार्या, न हार्या अहार्या तस्याः भावः तस्मात् । **अनर्घत्वात्**-नास्ति अर्घः मूल्यं यस्याः सा अनर्घा तस्याः भावः तस्मात्, नास्ति क्षयः विनाशः यस्याः सा अक्षया तस्याः भावः तस्मात् । **सर्वद्रव्येषु**-सर्वांणि च तानि द्रव्याणि तेषु । न उत्तमं यस्मात् तत् **अनुत्तमम्** ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

संयोजयति विद्यैव नीचगाऽपि नरं सरित् ।
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ॥ ५ ॥
विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम् ॥ ६ ॥

संयोजयतीति-अन्वयः—नीचगा अपि सरित् दुर्धर्षम् समुद्रम् इव (नीचगा अपि) विद्या नरम्, (दुर्धर्षम् अपि) नृपम् संयोजयति । अतः परम् भाग्यम् ।

शब्दार्थ—नीचगा अपि=निम्न प्रदेश में बहने वाली भी, सरित्=नदी, (तृण काष्ठ आदि को) दुर्धर्षम्=दुष्प्राप्य अगम्य, समुद्रम्=सागर को, इव-यथा, (तथैव) नीचगा अपि=कुल स्वाभावादि से नीच पुरुष को प्राप्त भी, विद्या=शास्त्र कलादि ज्ञान, (दुर्धर्षम्=सर्वसाधारण के द्वारा अगम्य भी) नृपम्=राजा को, नरम्=मनुष्य को, संयोजयति=पहुँचा देती है या मिला देती है, अतः परम् भाग्यम्=इसके बाद उसका भाग्य होता है ।

अनुवाद—जिस प्रकार निम्न प्रदेश में बहने वाली भी नदी (तृण काष्ठ आदि तुच्छ पदार्थ को भी) अगम्य सागर में पहुँचा देती है, उसी प्रकार नीच पुरुष को भी प्राप्त विद्या मनुष्य को दुष्प्राप्य राजा तक पहुँचा देती है, उसके बाद उस मनुष्य को अपने भाग्यानुसार फल मिलता है ।

भावार्थ—विद्या के बल से साधारण मनुष्य भी दुष्प्राप्य राजा के पास पहुँच जाता है और फिर भाग्यानुसार फल प्राप्त करता है ठीक उसी प्रकार जैसे एक तुच्छ नदी में पड़ा हुआ तुच्छ तृण भी दुर्धर्ष समुद्र में पहुँच जाता है ।

विशेष—दुर्धर्षम्-दुःखेन घृष्यते आक्रम्यते प्राप्यते वा, तम् । संयोजयति-सम्+युज्+णिच् लट् । नृपम्-नृन् पाति तम् । नीचगा-नीचं निम्नस्थानम् नीचपुरुषम् च गच्छति या सा नीचगा । समुद्रम्-मुद्राभिः रत्नैः सहितः तम् ।

विद्येति-अन्वयः—विद्या विनयम् ददाति, विनयात् (जनः) पात्रताम् याति । पात्रत्वात् धनम् आप्नोति, धनात् धर्मम् (करोति) ततः सुखम् (आप्नोति) ।

शब्दार्थ—विद्या विनयम् ददाति=विद्या (मनुष्य को) विनम्रता देती है । विनयात्=विनयशील होने से (जनः-मनुष्य) पात्रताम् याति=सत्पात्रता को प्राप्त करता है । पात्रत्वात्=सुपात्र (सुयोग्य) होने से, धनम् आप्नोति=

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विद्या शस्त्रञ्च शास्त्रञ्च द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाऽद्रियते सदा ।। ७ ।।

धन प्राप्त करता है । धनात् धर्मम् (करोति) धन से धर्म (करता है) ततः सुखम् =धर्माचरण से सुख प्राप्त करता है ।

अनुवाद---विद्या (मनुष्य को) विनम्रता देती है, विनयशील होने से (मनुष्य) सुयोग्यता प्राप्त करता है, सुपात्र होने से धन प्राप्त करता है, धन से धर्म करता है और धर्माचरण से सुख पाता है ।

भावार्थ—विद्या से ही मनुष्य विनयशील एवं सुपात्र बनता है, सुपात्र को ही धन मिलता है, धन से धर्म और धर्म से सुख मिलता है ।

विशेष—विनयशील और सुयोग्य व्यक्ति ही धन कमा सकता है, धन से यज्ञ दान आदि के द्वारा वह पुण्य प्राप्त कर सांसारिक सुखों का भागी बनता है । अर्थात् विद्या ही ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों का साधन है ।

विद्येति-अन्वय—शस्त्रम् शास्त्रम् च विद्या (भवति) द्वे विद्ये प्रतिपत्तये (भवतः) आद्या वृद्धत्वे हास्याय (भवति) द्वितीया सदा आद्रियते ।

शब्दार्थ—शस्त्रम् शास्त्रम् च विद्या=शस्त्र खड्ग धनुष् आदि, के प्रयोग को तथा शास्त्र-विधिनिषेधात्मक एव कलात्मक ज्ञान को विद्या कहा जाता है । द्वे विद्ये=ये दो विद्यायें अर्थात् शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या, प्रतिपत्तये (भवतः)=अपने इष्ट कार्य की सिद्धि के लिये तथा लोक में प्रतिष्ठा और और यशः प्राप्ति के लिये (होती है) आद्या=अर्थात् इन दो में से प्रथम अर्थात् शस्त्र विद्या, वृद्धत्वे=वृद्धावस्था में, हास्याय=उपहास के लिए (होती है) द्वितीया अर्थात् शास्त्रविद्या, सदा आद्रियते=सर्वदा आदर पाती है ।

अनुवाद—(ससार में) दो प्रकार की विद्यायें हैं, शस्त्र विद्या और शास्त्रविद्या, ये दो विद्यायें स्वकार्य साधन एवं प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए होती हैं, किन्तु इनमें से प्रथम अर्थात् शास्त्रविद्या वृद्धावस्था में उपहास योग्य होती है जब कि दूसरी अर्थात् शास्त्र विद्या सदा आदृत होती है,

भावार्थ—यद्यपि उक्त दोनों ही विद्यायें लोक प्रतिष्ठा की साधिका है तथापि शस्त्रविद्या वृद्धावस्था में उपहास का ही कारण बनती है, वृद्ध

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् ।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते ॥ ८ ॥

मनुष्य शस्त्र द्वारा न तो अपनी रक्षा कर पाता है और न दूसरों की ही, किन्तु शास्त्र विद्या सर्वदा ही आदर पाती है, वृद्धावस्था में यह परिपक्वता को प्राप्त कर अधिक प्रतिष्ठा साधिका बनती है ।

विशेष—शस्त्रम्-शस्यते हिंस्यते अनेनेति शस्त्रम, शास्त्रम् शिष्यते उपदेशेन विनीयते अनेनेति शास्त्रम् । अत्र अन्य पुस्तकेषु शस्त्रस्य शास्त्रस्ये-त्यपि पाठः । प्रतिपत्तये-प्रति+पद्+क्तिन्=प्रतिपत्तिः अत्र तादर्थ्ये चतुर्थी । वृद्धत्वे—वृद्धस्य भावः वृद्धत्वम् तस्मिन् । आद्रियते=आ+दृ+कर्मणि लट् ।

यन्नव इति-अन्वय—यद् नवे भाजने लग्नः संस्कारः अन्यथा न भवेत्, तत् इह कथाच्छलेन बालानाम् नीतिः कथ्यते ।

शब्दार्थ—यद्= यतः-जिस कारण से, जिससे कि, नवे=नूतन, नवीन, अपरिपक्व, भाजने=पात्र में, मिट्टी के घट आदि पात्र में, लग्नः=अङ्कित किया गया, बनाया गया, संस्कारः=रेखा आदि चिह्न, अन्यथा न भवेत्= विपरीत अथवा विलीन न हो जाये, तत्=तस्मात् कारणात्, इस कारण से अर्थात् इसलिए, इह=यहाँ अर्थात् इस ग्रन्थ में, कथाच्छलेन=काककूर्म आदि की कल्पित कथाओं के बहाने से, बालानाम्=अल्पज्ञ, संस्कृत भाषा में प्रवेश के लिए इच्छुक बालकों के लिए, नीतिः कथ्यते=नीति को कहा जा रहा है, अर्थात् विष्णुशर्मा द्वारा नीति का उपदेश दिया जा रहा है ।

अनुवाद—जिससे कि नये कच्चे मिट्टी के पात्र पर खुदा हुआ चिह्न (रेखा आदि) मिट न जाये, अतएव कल्पित कहानियों के बहाने से यहाँ (इस) नीति का बालकों को उपदेश दिया जा रहा है ।

भावार्थ—वस्तुतः बालकों का निश्छल कोमल हृदय मिट्टी के उस कच्चे पात्र-घट आदि-के समान होता है, जिस पर कि यदि पकने के पहले जो कोई भी चिह्न बना दिया जाय तो वह फिर कभी नहीं मिटता, उसी प्रकार बालकों के हृदय पर प्रथम अवस्था में जैसा भी संस्कार पड़ जाता है या संस्कार बना दिया जाता है तो फिर वह कभी नहीं मिटता । अतः बालकों

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मित्रलाभः सुहृद्भेदो विग्रहः सन्धिरेव च।
पञ्चतन्त्रात्तथान्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते ॥ ९ ॥

को सद् व्यवहार एवं लोकनीति की शिक्षा प्रारम्भ से ही देनी चाहिए जिससे कि उनके हृदय पर इस नीति का प्रभाव आजन्म बना रहे और वे लोक-व्यवहार में कुशल हो सकें। बच्चों की बुद्धि अधिक विकसित नहीं होती और वे स्वभावतः कल्पित कहाँनियाँ सुनने में जधिक रुचि लेते हैं, अतः यहाँ पं० विष्णु शर्मा काककूर्म आदि की कल्पित कहानियाँ सुनाकर ही उन्हें लोक व्यवहार की शिक्षा देने का प्रयास कर रहे हैं।

विशेष – **नवे**-नवीन, विना पके हुए, विद्यासंस्कार से रहित, **भाजने**-मिट्टी के बने घट आदि पात्र में तथा विद्यापात्र रूप बालकों के शुद्ध अन्तः करण में, **लग्नः**-संक्रान्त किया गया या वनाया गया, **संस्कारः**-रेखा आदि चिह्न तथा नीति का संस्कार। **कथाच्छलेन**-कथा-काक कूर्मादीनां कल्पितोपाख्यानम् तदेव छलं तेन, कल्पितोपाख्यानव्याजेन, **लग्नः**-लगि धातोः क्त प्रत्ययः, **बालानाम्**-अपरिपक्व बुद्धि, यहाँ चतुर्थ्यर्थ में षष्ठी है।

मित्रलाभ इति-अन्वयः—पञ्चतन्त्रात् तथा अन्यस्मात् ग्रन्थात् आकृष्य मित्रलाभः, सुहृद्भेदः, विग्रहः, सन्धिः एव च लिख्यते ('मया' इति शेषः)

शब्दार्थ—पञ्चतन्त्रात्=पञ्चतन्त्र नामक प्रसिद्ध नीति कथा ग्रन्थ से, तथा अन्यस्माद्=तथा अन्य महाभारत चाणक्य नीति एवं कामन्दकीय नीति-शास्त्र आदि ग्रन्थों से, आकृष्य=संग्रह करके, मित्रलाभः=मित्रलाभ आदि चार प्रकरणों में 'हितोपदेश नाम का ग्रन्थ, 'मया अर्थात् विष्णुशर्मा के द्वारा' लिख्यते=लिखा जा रहा है।

अनुवाद—विष्णुशर्मा कहते हैं, कि मैं पञ्चतन्त्र एवं अन्य महाभारत आदि नीति ग्रन्थों से नीतिकथाओं एवं नीतिपरक उपदेशों को संगृहीत कर, हितोपदेश नामक ग्रन्थ को मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि इन चार प्रकरणों में लिख रहा हूँ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथ कथामुखम्

अस्ति भागीरथीतीरे पाटलिपुत्रनामधेयं नगरम् । तत्र सर्वस्वामिगुणोपेतः सुदर्शनो नाम नरपति रासीत् । स भूपतिरेकदा केनाऽपि पठ्यमानं श्लोकद्वयं शुश्राव ।

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥ १० ॥

अथ कथामुखम्

अस्तीति— भागीरथी गंगा के किनारे पर पाटलिपुत्र (पटना) नामक नगर है। वहाँ राजाओं के सब गुणों से युक्त सुदर्शन नाम का राजा था। उस राजा ने एक बार, किसी के द्वारा पढ़े जाते हुए दो श्लोकों को सुना।

टिप्पणी—भागीरथीतीरे = भगीरथेन आनीता भागीरथी (भागीरथ+अण्+ङीप् तस्याः तीरं तस्मिन् । नाम एव नामधेयं, पाटलिपुत्र, इति नामधेय यस्य तत्=पाटलिपुत्र नामधेयम् स्वामिनः गुणाः स्वामिगुणाः सर्वे च ते स्वामिगुणाः तैः उपेतः=सर्वस्वामिगुणोपेतः, दया दाक्षिण्य शौर्य आदि सभी राजोचित गुणों से युक्त, पातीति पतिः नराणान् पतिः नरपतिः । आसीत्= अस्-लङ् प्र० पु० एकवचन पठ्यमानम्-पठ्-कर्मणि शानच् । श्लोकयोः द्वयम्:-श्लोकद्वयम् ।

अनेकेति-अन्वयः— अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् शास्त्रम् सर्वस्य लोचनम् (भवति) (तद्) यस्य नास्ति सः अन्धः एव अस्ति।

शब्दार्थ—अनेक संशयोच्छेदि=अनेक प्रकार के अर्थात् धार्मिक, राजनीतिक ऐतिहासिक सामाजिक आदि बहुविध सन्देहों को नष्ट करने वाला, परोक्षार्थस्य=अप्रत्यक्ष विषयों का अर्थात् भूतभविष्यत् एवं सूक्ष्म पदार्थों का, दर्शकम्=दिखलाने वाला, अर्थात् प्रत्यक्ष के समान यथार्थ ज्ञान देने वाला, शास्त्रम्=-शास्त्र-नीति-शास्त्र, सर्वस्य लोचनम्=सभी लोगों का नेत्र अर्थात् विशेष प्रकार का दिव्य नेत्र (होता है) (तद्=यह नेत्र) यस्य नास्ति =जिस पुरुष के पास (यह शास्त्र रूपी दिव्य नेत्र) नहीं होता, सः अन्धः एव =वह अन्धा ही (होता है)

अनुवाद—बहुविध संदेहों का नाशक (तथा) भूतभविष्यत् एवं सूक्ष्म

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥११॥

पदार्थों का दर्शक नीतिशास्त्र सब का विशेष प्रकार का नेत्र होता है, यह जिसके पास नहीं होता वह अन्धा ही होता है ।

भावार्थ—नीतिशास्त्र सभी प्रकार के संशयों का नाशक होता है, क्योंकि इसमें धार्मिक सामाजिक आदि सभी विषयों पर विचार किया जाता है और इसके विषय में एक सुव्यवस्थित नीति निर्धारित की जाती है। नीतिशास्त्र भूत भविष्यत् और सूक्ष्म विषयों का भी यथार्थज्ञान देने वाला होता है, अत एव यह सभी के लिए एक दिव्य दृष्टि रूप होता है, यह दिव्य दृष्टि रूप शास्त्र जिसके पास नहीं होता अर्थात् जो नीतिशास्त्र नहीं जानता वह अपने दो नेत्र रखता हुआ भी अन्धे के समान ही होता है, क्योंकि वह, यह नहीं जान पाता कि मुझे लोक में कब कैसे, किसके साथ व्यवहार करना चाहिए ।

विशेषः—अनेकसंशयोच्छेदि = न एके अनेके ते च ते संशयाः तेषाम् उच्छेदि । उच्छेत्तुं शीलं यस्य तत् = उच्छेदि, उत् + छिद् ताच्छील्ये णिनिः । सम् + शी + अच् गुण अयादेश संशयः । बहुविध संशयों को दूर करने वाला । अक्ष्णाम् परम् परोक्षम् अव्ययीभावः, अर्श आदित्वात् अच् निपातनादुत्त्वम् । परोक्षः यः अर्थः तस्य = परोक्षार्थस्य-दर्शकम् = णिजन्त दृश् धातोः ण्वुल् अक । शास्त्रम्-शास् धातोःष्ट्रन् प्रत्यय । शास्त्र, प्रत्यक्ष के समान ही भूत भविष्यत् एवं सूक्ष्म विषयों का यथार्थ ज्ञान करा देने वाला होता है अत एव शास्त्र सभी के लिए दिव्य दृष्टि के समान होता है ।

यौवनमिति-अन्वय—यौवनम्, धन सम्पत्तिः, प्रभुत्वम्, अविवेकिता, एकैकम् अपि अनर्थाय (भवति तर्हि) यत्र चतुष्टयम् तत्र किमु ।

शब्दार्थ—यौवनम् = तारुण्य, यौवनावस्था, धनसम्पत्तिः = धनादि ऐश्वर्य, प्रभुत्वम् = प्रभुता, आधिपत्य, अतिमानुष शक्ति, अविवेकिता = विवेकशून्यता अज्ञानता, उचितानुचित ज्ञानशून्यता, एकैकम् अपि = इन चारों में से एक-एक भी, अनर्थाय = अनर्थ-नीतिविरुद्ध कर्म के लिए, (होता है तो) यत्र चतुष्टयम् = जहाँ ये चारों ही होते हैं, तत्र किमु = वहाँ क्या नहीं हो सकता ।

अनुवाद—युवावस्था, ऐश्वर्यादिसम्पत्ति, प्रभुता और विवेकशून्यता, इन

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इत्याकर्ण्यात्मनः पुत्राणा मनधिगतशास्त्राणां नित्यमुन्मार्गगामिनां शास्त्राननुष्ठानेनोद्विग्नमनाः स राजा चिन्तयामास ।

चारों में से प्रत्येक भी अनर्थ के लिये ही होता है, जहाँ ये चारों ही हों वहाँ तो कहना ही क्या? अर्थात् न जाने क्या-क्या अनर्थ न हो जाँय।

भावार्थ—यौवन, धन, प्रभुता और अज्ञान ये चारों ही अनर्थ कारी होंते हैं, इन चारों में से यदि एक भी मनुष्य के पास होता है तो वह बड़ा अनर्थकारी हो जाता है पर यदि ये चारों ही एक समय किसी के पास हों तो वह कितना अत्याचार न करेगा, यह कोई नहीं कह सकता। इसी भाव का यह श्लोक भी है:—

"मर्कटस्य सुरापानं ततो वृश्चिकदंशनम्
तन्मध्ये भूतसञ्चारो यद्वा तद्वा भविष्यति ॥

विशेष—यौवनम् =यूनः भावः यौवनम् (युवन्+अण्) सम्पत्तिः-सम्+पद्+क्तिन्। प्रभुत्वम्=प्रभवति लोकनियमनाय यः सः प्रभुः तस्य भावः प्रभुत्वम्-प्रभुशब्दात् त्व प्रत्ययः। अविवेकिता-विवेकी=सत्यासत्यज्ञानसम्पन्न, न विवेकी अविवेकी तस्य भावः अविवेकिता। वि+विच्+घञ्=विवेक। एकैकम्=इन चारों में से प्रत्येक, अनर्थाय=न अर्थः पुरुषार्थः अनर्थः तस्मै, आपत्तिजनक एवं लोकाचार विरुद्ध कर्म। चतुष्टयम्-चतुर्णां मवयवः चतुर् शब्दात् तयप्।

इतीति—यह सुनकर अर्थात् उक्त दोनों श्लोकों को सुनकर शास्त्रों का अध्ययन न करने वाले (अतएव नित्य ही उन्मार्गगामी अर्थात् कुमार्ग पर चलने वाले—द्यूतक्रीडा आदि में आसक्त रहने वाले, अपने पुत्रों के शास्त्रों का अभ्यास न करने के कारण, फलतः शास्त्रविरुद्ध आचरण के कारण दुःखितमन होकर उस राजा ने सोचा।

टिप्पणी—इत्याकर्ण्य=इति=पूर्वोक्त दो श्लोकों को, आकर्ण्य=सुनकर अनधिगतशास्त्राणाम्=अनधिगतानि अपठितानि शास्त्राणि यैस्ते तेषाम् अनधीतशास्त्राणाम् शास्त्रज्ञानशून्यानाम्। उद्गतः मार्गः उन्मार्गः कुत्सितो मार्गः, तेन गच्छन्तीति उन्मार्गगामिनः तेषाम् उन्मार्गगामिनाम्, अत्रोपपदसमासः, मृज्+घञ्=मार्गः, गम्+णिन्=गामी। शास्त्राननुष्ठानेन=अनुष्ठीयते

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः।
काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीडैव केवलम् ॥ १२ ॥
अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः।
सकृद् दुःखकरावाद्या वन्तिमस्तु पदे पदे ॥ १३ ॥

क्रियते यत्तत् अनुष्ठानम्, न अनुष्ठानम्, अननुष्ठानम् अनभ्यासः अनध्यमनम् वा। उद्विग्नमनाः=उद्विग्नम् व्याकुलितं विक्षुब्धं वा मनः यस्य स उद्विग्नमनाः व्याकुलितचित्त होकर। चिन्तयामास-चिन्त+लिट्।

क इति अन्वयः—यः न विद्वान्, न धार्मिकः (तेन) जातेन पुत्रेण कः अर्थः। काणेन चक्षुषा किम् वा, केवलम् चक्षुः पीडा एव।

शब्दार्थ—यः न विद्वान्=जो विद्वान् अर्थात् विविध शास्त्र कला आदि का ज्ञान रखने वाला, नहीं होता, न धार्मिकः=जो धर्म अर्थ कामादि पुरुषार्थ का करने वाला नहीं होता, (ऐसे) जातेन=उत्पन्न हुए भी, पुत्रेण=पुत्र से, कः अर्थः=क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है, अर्थात् ऐसा मूर्ख अधार्मिक पुत्र उत्पन्न होकर न तो अपने लिए ही और न माता पिता तथा समाज के लिए ही कुछ कर सकता है अतः उसका जन्म लेना सर्वथा निरर्थक है। (जैसे) काणेन चक्षुषा किं वा=कानी आँख से क्या लाभ? अर्थात् आँख होकर भी यदि वह कानी है उससे यदि देखा नहीं जा सकता है तो उससे कोई लाभ नहीं, केवलं चक्षुः पीडा एव=केवल उससे नेत्र पीडा ही होगी।

अनुवाद—जो विद्वान् नहीं है और न धर्मात्मा ही है ऐसे उत्पन्न हुए भी पुत्र से क्या लाभ अर्थात् कुछ नहीं। कानी आँख से क्या लाभ, उससे तो केवल नेत्र पीडा ही होगी।

अजातेति अन्वय— अजात मृत मूर्खाणाम् वरम् आद्यौ न च अन्तिमः, आद्यौ सकृद दुःखकरौ (भवतः) अन्तिमः तु पदे पदे (दुःख कारकों भवति)।

शब्दार्थ—अजातमृतमूर्खाणाम्—न उत्पन्न हुए, उत्पन्न होकर भी मरे हुए तथा मूर्ख—इन तीन प्रकार के पुत्रों में आद्यौ=पहले दो अर्थात् अजात और मृत, वरम्=अच्छे होते हैं, न च अन्तिमः=अन्तिम अर्थात् मूर्ख (अच्छा नहीं होता। (क्योंकि) आद्यौ=पहले दो (अजात और मृत) तो सकृद दुःखकरौ=केवल एकबार दुःख देने वाले होते हैं अन्तिमः, तु पदे पदे=अन्तिम

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किं च—

वरं गर्भस्रावो वरमपि च नैवाभिगमनं
वरं जातः प्रेतो वरमपि च कन्याऽवजनिता ।
वरं वन्ध्या भार्या वरमपि च गर्भो न वसति
न वाऽविद्वान् रूपद्रविणगणयुक्तोऽपि तनयः ॥१४॥

किं च—

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ॥१५॥

अर्थात् मूर्ख तो पग-पग पर अर्थात् आजीवन क्षण प्रति क्षण दुःख देने वाला होता है ।

किं च = और भी—

वरमिति अन्वय—गर्भस्रावः वरम्, नैव अभिगमनम् अपि च वरम्, जातः प्रेतः वरम्, अवजनिता कन्या अपि च वरम, वन्ध्या भार्या वरम्, गर्भः न वसति इति अपि च वरम् (किन्तु) अविद्वान् रूपप्रविणगणयुक्तः तनयः न वा वरम् ।

शब्दार्थ—गर्भस्रावः = गर्भपात हो जाना, नैव अभिगमनम् = ऋतुमती पत्नी के साथ सम्भोग न करना, जातः प्रेतः = उत्पन्न होकर मर जाना, अवजनिता कन्या = उत्पन्न हुई कन्या, वन्ध्या भार्या = वांझ पत्नी, गर्भो न वसति = गर्भ नहीं रहता । अविद्वान् = मूर्ख, रूपद्रविणगणयुक्तः = रूप और धनसमूह से युक्त ।

अनुवाद—गर्भपात हो जाना अच्छा है, और ऋतुमती के पास न जाना भी अच्छा है, पुत्र का उत्पन्न होकर मर जाना भी अच्छा है, और कन्या का उत्पन्न होना भी श्रेष्ठ है । वन्ध्या भी अच्छी है और गर्भ का न रहना भी ठीक है पर मूर्ख, और रूपधन से युक्त भी पुत्र का होना ठीक नहीं ।

सम्भवतः यह श्लोक प्रक्षिप्त है, कई पुस्तकों में इसका उल्लेख भी नहीं है, पाठान्तर भी देखा जाता है, एक पुस्तक में 'न गर्भेषु वसतिः' भी पाठ है, टीकाकार ने उसका अर्थ गर्भ स्थिति किया है ।

किं च—और भी ।

स इति—अन्वय—परिवर्तिनि संसारे मृतः कः वा न जायते, येन जातेन वंशः समुन्नतिं याति, स जातः (मन्यते) ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य ।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम ।।१६।।

शब्दार्थ—परिवर्तिनि संसारे=परिवर्तन शील संसार में । मृत: क: वा न जायते=कौन नहीं मरता और कौन उत्पन्न नहीं होता अर्थात् सभी मरते और उत्पन्न होते हैं । येन जातेन वंश: समुन्नतिम् याति=जिसके उत्पन्न होने से वंश पूर्ण उन्नति को प्राप्त होता है, स जात: (मन्यते) वही उत्पन्न हुआ माना जाता है ।

अनुवाद—(इस परिवर्तन शीलं संसार में कौन नहीं मरता और कौन जन्म नहीं लेता अर्थात् सभी मरते और जन्म लेते हैं, किन्तु जिसके उत्पन्न होने से वंश उन्नति को प्राप्त करे उसे ही उत्पन्न हुआ समझना चाहिये ।

भावार्थ—उत्पन्न होकर मनुष्य को अपने वंश की उन्नति करनी चाहिये अन्यथा उसका जन्म लेना ही निरर्थक है, वैसे तो संसार में अनेक जन्म लेते और मरते ही हैं ।

गुणीति—अन्वय – गुणिगणागणनारम्भे सुसम्भ्रमात् यस्य कठिनी न पतति, तेन अम्वां यदि सुतिनी (भवति र्तहि) वन्ध्या कीदृशी (भवतीति) वद ।

शब्दार्थ—गुणिगणगणनारम्भे=गुणवान् जनों की गणना के अवसर पर सुसंभ्रमात्=गौरव पूर्वक अथवा सहसा ही । कठिनी=खटिका (खड़ी या चाक अथवा कनिष्ठिका अंगुली) यस्य न पतति=जिस पर या जिसके सम्बन्ध में नहीं गिरती । तेन अम्वा यदि सुतिनी=उस ऐसे पुत्र से यदि माता पुत्रवती (होती है तो) वन्ध्या कीदृशी=वाँझ स्त्री कैसी (होती है यह) वद=बताओ ।

अनुवाद—गुणीजनों की गणना आरम्भ होने पर, सहसा ही जिसके नाम पर अंगुली नहीं पड़ती अथवा सहसा ही जिसका नाम नहीं लिया जाता या जिसका नाम नहीं लिखा जाता, ऐसे पुत्र से भी माता यदि पुत्रवती हो सकती है तो बताओ वन्ध्या कौन स्त्री होगी ।

अर्थात् मूर्ख पुत्र की माता वास्तव मैं माता नहीं होती उसे तो वन्ध्या कहना ही ठीक होता है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपि च—

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं मनः ।
विद्याया मर्थ लाभे च मातु रुच्चार एव सः ॥१७॥

अपरं च—

वर मेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतान्यपि ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च ॥१८॥

अपि च—और भी—

दान इति-अन्वय—दाने शौर्ये तपसि च विद्यायाम् अर्थलाभे च यस्य मनः न प्रथितम्, स मातुः उच्चारः एव (भवति) ।

शब्दार्थ—दाने शौर्ये तपसि च=दान, वीरता और तपस्या में, विद्यायाम् अर्थलाभे च=विद्यार्जन एवं धनार्जन में, यस्य मनः न प्रथितम्=जिसका मन सतत प्रयत्नशील नहीं होता, स मातुः उच्चार एव=वह माता का मल ही होता है ।

अनुवाद—दान, वीरता का कार्य, तथा तपस्या में, विद्या और धनार्जन में जिसका मन सतत प्रयत्नशील नहीं होता वह व्यक्ति माता का मल ही होता है, पुत्र नहीं ।

अर्थात् उक्त कार्यों में प्रयत्नशील पुरुष ही अपनी माता का सच्चा पुत्र होता है, अन्यथा वह मल ही है ।

अपरं च=और भी—

वरमिति अन्वय—एकः गुणी पुत्रः वरम् मूर्खशतानि अपि न, एकः चन्द्रः तमः हन्ति, तारागणः अपि च न ।

अनुवाद—एक ही गुणवान् पुत्र श्रेष्ठ होता है, सैकड़ों मूर्ख (अच्छे) नहीं (होते हैं) (जैसे) एक ही चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर देता है अनेक तारागण नहीं ।

अर्थात् एक ही गुणवान पुत्र, सैकड़ों पुत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है, वही वंश की उन्नति करता है, जैसे एक चन्द्रमा अन्धकार दूर करता है अनेक तारागण नहीं करते ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यतिदुष्करम् ।
तस्य पुत्रो भवेद् वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधीः ॥१९॥
अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकेषु सुखानि राजन् ॥२०॥
को धन्यो वहुभिः पुत्रैः कुशूलापूरणाढकैः ।
वर मेकः कुलालम्बी यत्र विश्रूयते पिता ॥२१॥

पुण्येति-अन्वय—येन क्व अपि पुण्यतीर्थे अतिदुष्करम् तपः कृतम् । तस्य पुत्रः वश्यः समृद्धः धार्मिकः सुधीः भवेत् ।

शब्दार्थ—क्व अपि=कहीं, अतिदुष्करम्=अति कठिन, तपः=तपस्या को, वश्यः=वशवर्ती, समृद्धः=धनवान्, सुधीः=विद्वान्

अनुवाद—जिसने कहीं पुण्य तीर्थ में अति कठिन तप किया है, उसी का पुत्र वशवर्ती धनवान् धार्मिक एवं विद्वान् हो सकता है ।

वस्तुतः गुणवान् विद्वान् धर्मात्मा और धनवान् तथा अपने वश में रहने वाला पुत्र वहुत बड़ी तपस्या से ही प्राप्त होता है ।

अर्थागम इति-अन्वय—हे राजन् ! जीवलोकेषु नित्यम् अर्थागमः, अरोगिता च, प्रिया च प्रियवादिनी च भार्या, वश्यः पुत्रः च, अर्थकरी विद्या च (एतानि) षड् सुखानि (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—जीवलोकेषु=संसार में, अर्थागमः=धन की प्राप्ति, अरोगिता=नीरोगिता, प्रियवादिनी=मीठा बोलने वाली, वश्यः=वशवर्ती आज्ञाकारी, अर्थकरी=धन देने वाली ।

अनुवाद—हे राजन् । संसार में सदा आजीवन धन की प्राप्ति, नीरोगिता, प्रिया और मधुरभाषिणी पत्नी, वशवर्ती पुत्र तथा धन देने वाली विद्या ये छः सुख होते हैं ।

अर्थात् निम्नलिखित छः पदार्थ जिसके पास सदा होते हैं वह आजीवन सुखी रहता है—१. नित्य धन की प्राप्ति, १. नित्य नीरोगस्वस्थ रहना, ३. अतिशय प्रेम करने वाली, ४. और मधुरभाषिणी पत्नी का होना, ५. आज्ञाकारी पुत्र का होना, तथा ६. धर्म अर्थ आदि पुरुषार्थसाधिका विद्या का होना । यही संसार के छः सुख हैं ।

क इति-अन्वय;—कुशूलापूरणाढकैः वहुभिः पुत्रैः कः धन्यः । यत्र पिता विश्रूयते (सः) कुलालम्वी एकः (पुत्रः) वरम् ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ऋणकर्ता पिता शत्रु र्माता च व्यभिचारिणो।
भार्या रूपवतो शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥२२॥

शब्दार्थ—कुशूलापूरणाढकैः=कुशूल=तुष या भूसी, आपूरण=भरे हुये, आढक=एक विशेष प्रकार का धन्यादिमाप का पात्र—(वर्तन) अर्थात् भूसी से भरे हुये माप पात्र के सदृश, वहुभिः पुत्रैः=वहुत से पुत्रों से, कः—धन्यः =कौन (पिता) धन्य अर्थात् कृतकृत्य-सफल मनोरथ (हो सकता है अर्थात् कोई नहीं) यत्र=जहाँ अर्थात् जिस पुत्र के होने पर, पिता विश्रूयते=पिता प्रसिद्ध या सम्मानित (होता है) (सः=वह) कुलालम्वी=कुल का भरण पोषण करने वाला।

अनुवाद—तुषा से भरे हुये अनेक धान्य पात्रों के सदृश वहुत से पुत्रों से कौन पिता कृतकृत्य होता है अर्थात् कोई नहीं, जिस पुत्र के होने पर पिता सम्मानित हो या प्रसिद्धि प्राप्त कर सके ऐसा एक ही कुल का भरण पोषण करने वाला पुत्र श्रेष्ठ होता है।

प्राचीन समय में धान्यादि के माप के लिये अथवा तौल के लिए वर्तन होते थे, उन्हीं से नाप कर धान्यादि का विनिमय किया जाता था, आढक भी एक माप थी आठ मुट्ठी का एक कुञ्ची और साठ कुञ्ची का एक पूष्कल तथा चार पुष्कलों का एक आढक नामक माप का वर्तन होता था, तुषा से भरे हुये यदि ऐसे अनेक माप पात्र हों तो उनसे क्या लाभ, उसी प्रकार यदि मूर्ख अनेक पुत्र हों तो उनसे भी कोई लाभ नहीं।

ऋणकर्तेति-अन्वय—ऋणकर्ता पिता शत्रुः, व्यभिचारिणी माता च (शत्रुः) रूपवती भार्या शत्रुः, अपण्डितः पुत्रः शत्रुः।

अनुवाद—कर्ज लेने वाला पिता शत्रु के समान होता है, व्यभिचारिणी माता भी शत्रुतुल्य होती है, रूपवती पत्नी भी शत्रु तुल्य होती है और मूर्ख पुत्र भी शत्रुवत् होता है।

पिता द्वारा गृहीत ऋण का दायित्व पुत्र पर पड़ता है अतः पिता शत्रु कहा गया है। माता के व्यभिचारिणी होने पर कुल प्रतिष्ठा की हानि होती है, सौन्दर्यशालिनी भार्याः प्रायः वशवर्तिनी नहीं होती एवं मूर्ख पुत्र सब प्रकार के अनर्थ करता है, अतः इन सबको शत्रुवत् वताया गया है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अनभ्यासे विषं विद्या अजीर्णे भोजनं विषम् ।
विषं सभा दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥२३॥
यस्य कस्य प्रसूतोऽपि गुणवान् पूज्यते नरः ।
धनु र्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति ॥२४॥

अनभ्यास-इति-अन्वय—अनभ्यासे विद्या विषम्, अजीर्णे भोजनम् विषम्, दरिद्रस्य सभा विषम्, वृद्धस्य तरुणी विषम् (भवति)

शब्दार्थ—अनभ्यासे = पढ़े हुये विषय का अभ्यास न करने पर, अजीर्णे = न पचने पर, तरुणी = युवती स्त्री ।

अनुवाद—पढ़े हुये विषय का अभ्यास न होने पर विद्या विष के समान, न पचने पर भोजन विष के समान होता है। दरिद्र के लिये सभा और वृद्ध के लिये तरुणी विष के समान दुःखदायिनी होती है।

यस्येति-अन्वय—यस्य कस्य प्रसूतः अपि गुणवान् नरः पूज्यते, वंशविशुद्धः अपि धनुः निर्गुणः सन किं करिष्यति ।

शब्दार्थ—यस्य कस्य प्रसूतः अपि = जिस किसी उत्तम या अधम वंश में उत्पन्न हुआ भी, गुणवान् पूज्यते नरः = गुणवान् मनुष्य सम्मानित होता है, वंशविशुद्धः अपि धनुः = उत्तम वांस से बना हुआ भी धनुष, निर्गुणः = (यदि) डोरी या रस्सी से रहित है, किं करिष्यति = क्या करेगा अर्थात् यदि अच्छे बाँस से बना हुआ भी धनुष है किन्तु उसमें रस्सी या प्रत्यञ्चा नहीं बँधी है तो वह क्या कर सकता है अर्थात् कुछ नहीं, अर्थात् उससे लक्ष्य भेद रूप कार्य नहीं हो सकता, इसी प्रकार यदि कोई उत्तम वंश में उत्पन्न भी हुआ है, पर वह गुण रहित (निर्गुण) है तो वह कुछ नहीं कर सकेगा ।

अनुवाद—जिस किसी वंश में उत्पन्न हुआ भी यदि मनुष्य गुणवान् है तो वह पूजित होता है, उत्तम वंश में उत्पन्न होकर भी गुणरहित मनुष्य क्या कर सकता है जैसे उत्तम वांस से बना हुआ होकर भी रस्सी से रहित धनुष कुछ नहीं कर सकता ।

वस्तुतः यहाँ 'वंश और निर्गुण' शब्द श्लिष्ट हैं जिनके क्रमशः अर्थ हैं—वंश = बांस और वंश-कुल, निर्गुण = रस्सी से न बंधा हुआ तथा गुणहीन ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

हा हा पुत्रक ! नाधीतं गतास्वेतासु रात्रिषु ।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि ॥२५॥
आहारनिद्राभय मैथुनञ्च समानमेतत् पशुभि र्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥२६॥

हेति-अन्वय—हा हा पुत्रक ! गतासु एतासु रात्रिषु (त्वया) न अधीतम् । तेन त्वम् विदुषाम् मध्ये पङ्के गौः इव सीदसि ।

शब्दार्थ—हा हा खेद सूचक अव्यय, पुत्रक=हे पुत्र ! गतासु एतासु रात्रिषु=इन व्यतीत हुई रात्रियों में अर्थात् इस बीते हुये समय में 'त्वया-तुमने) न अधीतम्=नहीं पढ़ा, तेन=इस कारण, त्वम्=तुम, विदुषाम् मध्ये=विद्वानों के बीच, पङ्के गौः इव=कीचड़ में (फँसी) गाय के समान, सीदसि=दुःखी होते हो ।

अनुवाद—हे पुत्र ! तुमने इन विगत रात्रियों में अध्ययन नहीं किया (अतः) तुम विद्वानों के बीच, पंक में फँसी गाय के समान दुःखी होते हो ।

पंक में फंसी गाय जिस प्रकार शक्ति हीन होने से वहीं छटपटाती रहती है, वाहर नहीं निकल पाती, उसी प्रकार तुम भी विद्याशक्ति से रहित होने के कारण विद्वानों के बीच दुःखी होते हो, इसका कारण है कि तुमने इस विगत समय में विद्याध्ययन नहीं किया था ।

आहारेति अन्वय—आहारनिद्राभयमैथुनम् च, नराणाम् एतत् पशुभिः समानम्, धर्मः हि तेषाम् अधिकः विशेषः, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—आहारनिद्राभयमैथुनम् च=खाना, सोना, डरना और स्त्री प्रसंग, नराणाम् एतत् पशुभिः समानम्=मनुष्यों की (ये चारों ही बातें तो) पशुओं के समान ही होती हैं अर्थात् पशुओं में भी ये चारों बातें पाई जाती हैं । धर्मः हि तेषाम् अधिकः विशेषः=निश्चयतः धर्म ही एक उनकी अधिक विशेषता है अर्थात् पशुओं में धर्म नहीं होता, धर्म केवल मनुष्य में ही होता है, अतः धर्म की दृष्टि से मनुष्य, पशुओं से अधिक श्रेष्ठ है, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः=धर्म से हीन मनुष्य पशुओं के समान ही होते हैं ।

अनुवाद—खाना सोना डरना और स्त्री प्रसंग, मनुष्यों की ये (चारों .

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥२७॥
आयुः कर्म च वितञ्च विद्या निधनमेव च।
पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥२८॥

बातें तो) पशुओं के समान ही होती है, धर्म ही केवल उनकी अधिक विशेषता है अतः धर्म से रहित मनुष्य पशुओं के समान ही हाते हैं।

निष्कर्ष यह कि यदि मनुष्य, मनुष्य कोटि में रहना चाहता है तो उसे अवश्य धर्माचरण करना चाहिये अन्यथा उसमें और पशु में कोई अन्तर न होगा, धर्मज्ञान विद्याध्ययन से होता है अतः उसे विद्याध्ययन कर धर्मात्मा होना चाहिए।

धर्मेति-अन्वय—धर्मार्थकाममोक्षाणाम् यस्य एकः अपि न विद्यते, अजागलस्तनस्य इव तस्य जन्म निरर्थकम्।

शब्दार्थ—धर्मार्थकाममोक्षाणाम्=धर्म अर्थ काम और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं, इनमें से यदि, यस्य एकः अपि न विद्यते=एक भी जिसके पास नहीं होता, अजागलस्तनस्य इव=बकरी के गले के स्तन के समान (बकरी के गले के नीचे कुछ खाल लटकती रहती है उसे बकरी का थन ही कहा जाता है पर इससे दूध नहीं निकलता, अतः उसको थन कहना निरर्थक ही होता है) तस्य जन्म निरर्थकम्=उसका जन्म व्यर्थ होता है।

अनुवाद—धर्म अर्थ काम और मोक्ष इनमें से एक भी जिसके पास नहीं होता, बकरी के गले के थन के समान उसका जीवन व्यर्थ होता है।

पुरुषार्थ चतुष्टय का पालन करना मानव का परम कर्त्तव्य होता है, यदि सब नहीं तो कम से कम एक का तो पालन करना अत्यावश्यक होता है, यदि किसी में एक भी नहीं होता तो उसका जन्म लेना उसी प्रकार व्यर्थ होता है जिस प्रकार बकरी के गले का थन, केवल कहने भर के लिए ही होता है।

आयुरिति अन्वय—आयुः कर्म च वित्तम् च विद्या निधनम् एव च। एतानि पञ्च अपि गर्भस्थस्य एव देहिनः सृज्यन्ते।

शब्दार्थ—आयुः=अवस्था, कर्म=अच्छा या बुरा कर्म, वित्तम् च=और

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च—

अवश्यम्भाविनो भावा भवन्ति महता मपि ।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः ॥२६॥

धनं, विद्या=शास्त्रों एवं कलाओं का ज्ञान, निधनम्=मृत्यु । एतानि पञ्च =ये पाँच अर्थात् आयु कर्म धन विद्या और मृत्यु, गर्भस्थस्य एव देहिनः सृज्यन्ते=गर्भ स्थित ही प्राणी के लिये बना दिये जाते हैं । अर्थात् जब तक कि अभी प्राणी गर्भ में ही रहता है तभी तक उसके लिए इन पाँच बातों का निश्चय कर दिया जाता है और उसी के अनुसार इनकी उसे प्राप्ति होती है ।

अनुवाद—आयु कर्म धन विद्या और मृत्यु ये पाँच उसी समय मनुष्य के लिए निर्धारित कर दिये जाते हैं जब तक कि वह अभी गर्भ में ही होता है ।

तात्पर्य यह कि इन पाँच बातों पर मनुष्य का अपना परिश्रम या उद्योग काम नहीं करता अपितु ये पाँचों उसे भाग्य से ही प्राप्त होते हैं, भाग्य वश ही मनुष्य को ये अपने आप प्राप्त होते हैं, अतः इनके विषय में मानव कृत उद्योग काम नहीं आता ।

किञ्च=और भी—

अवश्यमिति-अन्वयः—महताम् अपि अवश्यम्भाविन. भावाः भवन्ति (यथा) नीलकण्ठस्य नग्नत्वम् हरेः महाहिशयनम् (भवति)

शब्दार्थ-महताम्=दिव्य ऐश्वर्यशाली राजा और देवताओं को भी, अवश्यम्भाविनः भावाः=अवश्य ही घटित होने वाले सुख दुःख आदि धर्म, भवन्ति=होते हैं, (जैसे) नीलकण्ठस्य = शिवजी का, नग्नत्वम्=वस्त्ररहित नग्न-विवस्त्र होना, हरेः=विष्णु भगवान् का, महाहिशयनम्=महा अहि= शेष नाग पर शयन करना ।

अनुवाद—दिव्य ऐश्वर्यशाली भी राजा और देवताओं के सम्बन्ध में भी अवश्य घटित होने वाले अर्थात् भाग्यतः प्राप्तव्य सुख दुःख आदि धर्म होते हैं, भवितव्यता से ये भी नहीं बच सकते, जैसे कि भगवान् शिव का विवस्त्र रहना और विष्णु का शेषनाग पर शयन करना ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपि च—

यदभावि न तद् भावि भावि चेन्न तदन्यथा ।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥३०॥

एतत्कार्याक्षमाणां केषाञ्चिदालस्य वचनम् ।

न दैवमिति सञ्चिन्त्य त्यजेदुद्योग मात्मनः ।
अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति ॥३१॥

अपि च—और भी—

यदिति-अन्वयः—यत् अभावि तत् न भावि, (यत्) भावि चेत् न तत् अन्यथा (भवति) इति अय चिन्ताविषघ्नः अगदः किं न पीयते ।

शब्दार्थ—यत् अभावि=जो होने वाला नहीं होता, तत् न भावि=वह नहीं होता, भावि चेत्=अगर जो होने वाला होता है, न तत् अन्यथा, वह कभी अन्यथा अर्थात् विपरीत नहीं होता अर्थात् अवश्य होता है । इति=इस प्रकार, अयं चिन्ताविषघ्नः अगदः=यह चिन्ता रूपी विष को नष्ट करने वाला अगद (औषध) किं न पीयते=क्यों नहीं पिया जाता ।

अनुवाद—जो नहीं होने वाला होता वह कभी नहीं होता, और जो होने वाला होता है, वह कभी विपरीत नहीं होता अर्थात् अवश्य ही घटित होता है । इस प्रकार यह चिन्ता रूपी विष का नाशक औषध क्यों नहीं पिया जाता ।

तात्पर्य यह है कि भवितव्यता कभी टलती नहीं घटित होकर ही रहती है, जो होनहार नहीं है वह कभी हो नहीं सकता, यह एक निश्चित सिद्धान्त है, जिसके अनुसार अर्थात् जिस सिद्धान्त के अनुसार चलने से सभी चिन्तायें दूर हो जाती हैं अतः मनुष्य को इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर निश्चिन्त रहना चाहिये, यह सभी चिन्ताओं का नाशक है अत एव वह एक औषध के समान है जिसे सबको सेवन करना चाहिए ।

एतदिति—कार्य करने में असमर्थ (अक्षम) किन्हीं लोगों का यह आलस्य युक्त कथन है, अर्थात जो लोग आलसी होते हैं और कार्य करने में असमर्थ होते हैं उनका यह कथन है:—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

उद्योगिनं पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मी
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुष मात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः ॥३२॥

नेति-अन्वयः—'दैवम्' इति सञ्चिन्त्य (जनः) आत्मनः उद्योगम् न त्यजेत् । (यतः) अनुद्योगेन तिलेभ्यः तैलानि (जनः) आप्तुम् न अर्हति ।

शब्दार्थ—दैवम्=भाग्यम्, इति सञ्चिन्त्य=ऐसा सोचकर, आत्मनः उद्योगम् न त्यजेत्=अपना उद्योग नहीं छोड़ना चाहिए । अनुद्योगेन=उद्योग बिना, तिलेभ्यः तैलानि=तिलों से तेल (भी) आप्तुम् न अर्हति=प्राप्त करने योग्य नहीं होता ।

अनुवाद—'भाग्यम्' अर्थात् जो भाग्य में होगा वह मिलेगा ऐसा सोचकर मनुष्य को अपना उद्योग नहीं छोड़ना चाहिए (क्योंकि) उद्योग के बिना तो तिलों से भी तेल (मनुष्य) प्राप्त करने योग्य नहीं होता ।

अर्थात् बिना उद्योग के तिलों से भी तेल नहीं पाया जा सकता अतः मनुष्य को भाग्य के भरोसे अपना उद्योग नहीं छोड़ना चाहिए ।

उद्योगिनमिति-अन्वयः—लक्ष्मीः उद्योगिनम् पुरुषसिंहम् उपैति, कापुरुषाः 'दैवेन देयम्' इति वदन्ति । दैवम् निहत्य आत्मशक्त्या पौरुषम् कुरु यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कः अत्र (जनस्य) दोषः ।

शब्दार्थ—पुरुष सिंहम्=सिंह के समान उद्योगशील, उद्योगिनम्=उद्यम करने वाले पुरुष को लक्ष्मीः उपैति=लक्ष्मी (धन) प्राप्त होता है, (किन्तु) कापुरुषाः—कायर लोग 'दैवेन देयम्' भाग्य से जो मिलना होगा वह मिलेगा' इति वदन्ति=ऐसा कहते हैं । दैवम् निहत्य=भाग्य को मार कर अर्थात् भाग्य पर भरोसा न करके, आत्मशक्त्या पौरुषं कुरु=अपनी शक्ति भर परिश्रम करो, यत्ने कृते=प्रयत्न करने पर भी, यदि न सिद्ध्यति=अगर (काम) सिद्ध नहीं होता, कः अत्र दोषः=इस विषय में क्या दोष है अर्थात् तो मनुष्य का इसमें क्या दोष है अर्थात् कुछ नहीं ।

अनुवाद—सिंह के समान उद्योगशील उद्यमी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है, जो भाग्य में होगा वह मिलेगा ऐसा तो कायर लोग ही कहते हैं, भाग्य

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गति र्भवेत् ।
तथा पुरुष कारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥३३॥
पूर्वजन्म कृतं कर्म तद् दैव मिति कथ्यते ।
तस्मात् पुरुषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः ॥३४॥

पर भरोसा न करके अपनी शक्ति भर परिश्रम करो, यदि प्रयत्न करने पर भी काम सिद्ध नहीं होता तो इसमें (मनुष्य) का दोष नहीं है ।

अर्थात् मनुष्य को सदा उद्योग करते रहना चाहिये, भाग्य पर भरोसा न करना चाहिये । उद्योग करते रहने पर भी धन नहीं मिलता अथवा काम पूरा नहीं होता तो इसमें मनुष्य का दोष न माना जायेगा ।

यथेति-अन्वय—यथा हि एकेन चक्रेण रथस्य गतिः न भवेत् तथा पुरुष-कारेण विना दैवम् न सिद्ध्यति ।

शब्दार्थ—चक्रेण = पहिये से, गतिः = चलना, पुरुषकारेण = पुरुषार्थ के द्वारा ।

अनुवाद—जिस प्रकार एक पहिये से कभी रथ की गति नहीं हो सकती अर्थात् एक पहिये से रथ नहीं चल सकता इसी प्रकार पुरुषार्थ के विना भाग्य सिद्ध नहीं हो सकता ।

अर्थात् बिना पुरुषार्थ के, भाग्य से कोई फल नहीं मिलता, पुरुषार्थ और भाग्य दोनों ही मिल कर मनुष्य के कार्यसाधक होते हैं, न अकेला पुरुषार्थ और न अकेला भाग्य ही । रथ दोनों पहियों से चल सकता है, एक से नहीं ।

पूर्वेति-अन्वय—(यत्) पूर्वजन्मकृतम् कर्म (तद्) दैवम् इति कथ्यते । तस्मात् (जनः) अतन्द्रितः (सन्) पुरुषकारेण यत्नम् कुर्यात् ।

शब्दार्थ—पूर्वजन्मकृतं कर्म = पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म (तद्-वह) दैवम् इति कथ्यते = भाग्य कहा जाता है । तस्मात् = इसलिये, अतन्द्रितः सन् = आलस्य रहित होकर । पुरुषकारेण—पुरुषार्थ, उद्योग अथवा परिश्रम से । यत्नं कुर्यात् = प्रयत्न करना चाहिये ।

अनुवाद—जो पूर्वजन्म में किया हुआ कर्म होता है, वही भाग्य कहा जाता है, अर्थात् पूर्वजन्मकृत कर्म ही भाग्य होता है और कुछ नहीं, भाग्य का निर्माता अपना कर्म ही होता है अर्थात् पूर्वकृत कर्म का ही नाम भाग्य है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद् यदिच्छति ।
एव मात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥३५॥
काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वापि निधिमग्रतः ।
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थं मपेक्षते ॥३६॥

इसलिये निरालस्य होकर मनुष्य को परिश्रम से कार्य सिद्धि के लिये प्रयत्न करना चाहिये ।

अर्थात् भाग्य कोई नई वस्तु महीं होती, अपने भाग्य का निमाता पुरुष स्वयं होता है, वह जो कुछ भी पूर्व समय में कर चुका है, उन्हीं उसके संचित कर्मों का भाग्य है, अतः भाग्य पर निर्भर न रह कर मनुष्य को यत्न करते रहना चाहिये ।

यथेति—यथा कर्ता मृत्पिण्डतः यद् यद् इच्छति तत् तत् कुरुते, एवं मानवः आत्मकृतम् कर्म प्रतिपद्यते ।

शब्दार्थ—कर्ता=करने वाला अर्थात् कुम्भकार, मृत्पिण्डतः=मिट्टी के पिण्ड से, आत्मकृतम् कर्म=अपने द्वारा किये गये, कर्म को, प्रतिपद्यते=प्राप्त करता है ।

अनुवाद—जिस प्रकार कुम्भकार मिट्टी के पिण्ड से जो जो बनाना चाहता है, वह वह बना लेता है अर्थात् मिट्टी से घट शराव आदि बनाना उसकी इच्छा पर निर्भर रहता है । उसी प्रकार मनुष्य अपने द्वारा किये गये कर्म को प्राप्त होता है ।

अर्थात् वह अपनी इच्छा से जैसा ही अच्छा या बुरा कर्म चाहता है, करता है और भाग्य वश उसके वैसे फल को प्राप्त करता है, तात्पर्य यह कि कर्म करने में मनुष्य स्वतन्त्र है, वह अपनी इच्छा से कैसा भी अच्छा या बुरा कर्म उसी प्रकार कर सकता है जैसे कि एक कुम्भकार मिट्टी से जैसा भी बर्तन चाहता है, बना लेता है । उसके द्वारा किया गया कर्म ही भाग्य कहा जाता है और उसके अनुसार उसे वैसा अच्छा या बुरा फल उसी प्रकार मिलता है जैसे कुम्भकार जैसा भी बर्तन बनाएगा उसी के अनुकूल उसे कम या अधिक मूल्य प्राप्त होगा ।

काकेति—कालतालीयवत् प्राप्तम् निधिम् अग्रतः दृष्ट्वा अपि 'दैवम् स्वयं न आदत्ते' (किन्तु) पुरुषार्थम् अपेक्षते ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥३७॥

शब्दार्थ—काकतालीयवत् प्राप्तम् = अगत्या-अचानक-सहसा या अप्रत्याशित रूप में मिला हुआ। निधिम् = खजाना-धन, अग्रतः दृष्टवा अपि = आगे (पड़ा हुआ) देखकर भी, दैवम् स्वयं न आदत्ते = भाग्य स्वयं ही उसे (उठाकर) नहीं दे देता अर्थात् मनुष्य को स्वयं अपने हाथ से उसे उठाना और प्राप्त करना पड़ता है, उद्योग के विना वह भी नहीं मिलता, पुरुषार्थम् अपेक्षते = उद्योग की आवश्यकता पड़ती है।

अनुवाद—अचानक प्राप्त हुये खजाने को अपने आगे देखकर भी, वह भाग्य से स्वयं हस्तगत नहीं हो जायेगा अपितु उसे प्राप्त करने के लिए हस्तोद्योग करना ही पड़ता है।

भाग्य से सहसा प्राप्त भी सम्पत्ति को हस्तगत करने के लिए भी उद्योग करना ही पड़ता है अर्थात् हाथ के उद्योग से ही उसे प्राप्त किया जाता है, वह स्वतः प्राप्त न होगा। सामने परोसे हुए थाल का भोजन अपने आप मुख में नहीं चला जायेगा, हाथ से खाना ही पड़ेगा। इससे स्पष्ट है कि भाग्य और पुरुषार्थ दोनों ही की साथ-साथ अपेक्षा रहती है, केवल किसी एक से कार्य सिद्ध नहीं होता।

काकतालीय- 'कौवा और ताड़ का फल' वस्तुतः यह एक लोक प्रचलित न्याय है, जिसका तात्पर्य होता है, अचानक ही कोई वस्तु प्राप्त हो जाय, जैसे कोई व्यक्ति ताड़ के फल की आशा से वृक्ष के पास गया, उसी समय अचानक कोई कौवा ताड़ फल पर आकर बैठ गया और फल टूट कर गिर पड़ा और उस मनुष्य को वह अचानक प्राप्त हो गया।

उद्यमेनेति—हि कार्याणि उद्यमेन सिद्ध्यन्ति, न मनोरथैः, सुप्तस्य सिंहस्य मुखे मृगाः न प्रविशन्ति।

शब्दार्थ—हि = क्योंकि, उद्यमेन = उद्योग से, न मनोरथैः = इच्छाओं मात्र से नहीं, सुप्तस्य = सोते हुए।

अनुवाद—क्योंकि उद्योग से ही कार्य सफल होते हैं, इच्छा मात्र से नहीं, जैसे कि सोते हुये सिंह के मुख में मृग स्वयं नहीं प्रविष्ट होते।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मातृपितृकृताभ्यासो गुणितामेति बालकः ।
न गर्भच्युतिमात्रेण पुत्रो भवति पण्डितः ॥२८॥
माता शत्रुः पिता बैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥२९॥

सिंह जैसे शक्तिशाली वनराज को भी अपनी शिकार के लिये स्वयं मृगादि पशुओं को मारने का प्रयत्न करना ही पड़ता है, यदि वह सोता रहे तो मृग अपने आप उसके मुख में नहीं घुसेंगे, इससे सिद्ध होता है कि कार्य उद्योग से ही सफल होते हैं, केवल इच्छा मात्र से नहीं अतः भाग्य या इच्छा के भरोसे न रहकर मनुष्य को उद्योग करना चाहिये ।

मात्रिति-अन्वय—मातृपितृकृताभ्यासः बालकः गुणिताम् एति । गर्भच्युतिमात्रेण पुत्रः पण्डितः न भवति ।

शब्दार्थ—मातृपितृकृताभ्यासः=माता पिता के द्वारा जिसे विद्याध्ययन कराया गया है; गुणिताम् एति=निपुणता को प्राप्त होता है, गर्भच्युतिमात्रेण =गर्भ से उत्पन्न होने मात्र से, पण्डितः=विद्वान् ।

अनुवाद—माता पिता द्वारा जिसे विद्याभ्यास कराया जाता है वही बालक निपुणता प्राप्त करता है, गर्भ से उत्पन्न होने मात्र से ही कोई पुत्र विद्वान नहीं हो जाता ।

माता पिता केवल जन्म देने मात्र से ही बालकों को विद्वान् नहीं बना सकते, उन्हें उसे अध्ययन भी कराना पड़ता है तभी वे विद्वान् बनते हैं, क्योंकि विद्या एक अर्जित धन है, वह पैतृक दाय के रूप में प्राप्त नहीं होती है, सबको उसे परिश्रम से अर्जित करना पड़ता है ।

मातेति-अन्वयः—येन बालः न पाठितः, 'तस्य बालकस्य माता शत्रुः (भवति) पिता च वैरी (भवति) । (यतो हि एतादृशः अशिक्षितः बालकः सभामध्ये (तथैव) न शोभते, यथा हंसमध्ये बकः (न शोभते) ।

शब्दार्थ—येन=जिसने न पाठितः=नहीं पढ़ाया, बकः=बगला ।

अनुवाद—जिसने (अपने) बालक को नहीं पढ़ाया, (ऐसी) माता शत्रु के समान होती है और पिता भी शत्रु होता है, (ऐसा अशिक्षित बालक)

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

रूपयौवनसम्पन्ना बिशालकुलसम्भवा: ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका: ॥४०॥

अपरञ्च

पुस्तकेषु च नाधीतं, नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
न शोभते सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रिया: ॥४१॥

(विद्वानों के) समूह के बीच (उसी प्रकार) शोभा नहीं पाता जैसे हंसों के बीच बगुला शोभा नहीं पाता ।

विद्वानों के बीच प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मनुष्य को विद्वान होना आवश्यक है, पर बालक का विद्वान् होना माता पिता के प्रयत्न और शिक्षा देने पर निर्भर होता है ।

रुपेति—रूपयौवनसम्पन्ना: विशालकुलसम्भवा: (अपि) विद्याहीना:, निर्गन्धा: किंशुका इव न शोभन्ते ।

शब्दार्थ—रूपयौवनसम्पन्ना:=सौन्दर्य और युवावस्था से पूर्ण (तथा) विशालकुलसम्भवा:=बड़े अथवा उच्च कुल में उत्पन्न हुये (भी) विद्याहीना: =विद्या से रहित लोग, निर्गन्धा किंशुका: इव=सुगन्धि रहित पलाश पुष्पों की भाँति, न शोभन्ते=शोभा नहीं पाते ।

अनुवाद—सौन्दर्य और युवावस्था से पूर्ण, तथा उत्तम कुल में उत्पन्न हुये (भी) विद्यारहित लोग (उसी प्रकार) शोभा नहीं पाते जैसे सुगन्धि रहित पलाश के पुष्प ।

पलाश के पुष्प लालवर्ण के एवं कोमल होने के कारण देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं, पलाश के वनों में ये बड़ी मात्रा में भी होते हैं, पर पलाश-पुष्प में कोई सुगन्धि नहीं होती, अत: वे उपवनों में शोभा नहीं पाते, लोगों द्वारा उपेक्षित ही होते हैं, इसी प्रकार भले ही लोग देखने में सुन्दर युवक हों और उच्च कुलीन भी हों, पर यदि वे विद्या विहीन हैं तो कभी आदर नहीं पाते ।

अपर ञ्च—और भी—

पुस्तकेष्विति-अन्वय—(येन) पुस्तकेषु च न अधीतम्, गुरुसन्निधौ च न अधीतम् (स) सभामध्ये स्त्रिया: जारगर्भ: इव न शोभते ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मूर्खोऽपि शोभते तावत् सभायां वस्त्रवेष्टितः ।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किञ्चिन्न भाषते ॥४२॥

एतच्चिन्तयित्वा स राजा पण्डित सभां कारितवान् । राजोवाच-भो भोः पण्डिताः । श्रूयतां मम वचनम् । अस्ति कश्चिदेवं भूतो विद्वान्, यो मम पुत्राणां नित्य मुन्मार्गगामिना मनधिगतशास्त्राणामिदानीं नीतिशास्त्रोपदेशेन पुनर्जन्म कारयितुं समर्थः ? यतः

शब्दार्थ—न अधीतम्=नहीं पढ़ा, गुरुसन्निधौ=गुरु के समीप, स्त्रियाः जारगर्भः इव=स्त्री के व्यभिचार से उत्पन्न वर्ण संकर सन्तान के समान ।

अनुवाद—जिसने पुस्तकों में नहीं पढ़ा और न गुरु समीप ही अध्ययन किया (ऐसा अशिक्षित मनुष्य) स्त्री के व्यभिचार से उत्पन्न वर्ण संकर व्यक्ति के समान (विशिष्ट लोगों के) समूह के बीच शोभा नहीं पाता ।

जैसे जारज व्यक्ति को विशिष्ट जनों के बीच कभी सम्मान नहीं मिलता समाज में वर्ण संकर मनुष्य हेयदृष्टि से देखा जाता है, इसी प्रकार जिसने विद्याध्ययन नहीं किया है, वह कहीं भी अच्छे लोगों में आदर नहीं पाता ।

मूर्ख इति-अन्वय—वस्त्रवेष्टितः मूर्खः अपि तावत् सभायाम् शोभते, मूर्खः च तावत् शोभते, यावत् किञ्चिद् न भाषते ।

शब्दार्थ—वस्त्रवेष्टितः=सुन्दर वस्त्र धारण किये हुये, तावत्=तब तक, यावत्=जब तक, किञ्चत्=कुछ भी, न भाषते=नहीं बोलता ।

अनुवाद—(अच्छे) वस्त्र पहने हुये मूर्ख भी सभा में अथवा जन समूह में शोभा पाता है, किन्तु वह मूर्ख सभा में तभी तक शोभा या आदर पाता है जब तक कि कुछ नही बोलता ।

मूर्ख व्यक्ति सज्जनों के बीच उचित बात कहने में असमर्थ होता है, भले ही ऐसा मूर्ख अच्छे कपड़े पहन कर थोड़ी देर के लिये जनसमूह में आदर प्राप्त कर ले, लेकिन उसको यह आदर तभी तक मिलेगा जब तक कि वह कुछ बोलेगा नहीं, बोलने पर तो उसकी मूर्खता प्रकट हो जायेगी और वह अनादृत होगा ।

एतदिति—यह सोच कर उस राजा ने विद्वानों की सभा कराई । राजा ने कहा, हे पण्डितो । मेरी बात सुनिये । क्या कोई ऐसा विद्वान् है, जो कि मेरे

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम् ।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ॥४३॥

उक्तं च—

हीयते हि मतिस्तात ! नीचैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥४४॥

सदा अनुचित मार्ग पर चलने वाले शांस्त्रों को न पढ़ने वाले पुत्रों का अब नीतिशास्त्र के उपदेश द्वारा नया जन्म कराने में समर्थ हो, क्योंकि—

चिन्तयित्वा=सोचकर, कारितवान्=कराई, उवाच=कहा, श्रूयताम्= सुनिये, एवं भूतः=ऐसा, कारयितुम्=कराने के लिये ।

काच इति-अन्वय—काचः काञ्चनसंसर्गात् मारकतीं द्युतिम् धत्ते तथा सत्सन्निधानेन मूर्खः अपि प्रवीणताम् याति ।

शब्दार्थ— काचः=काँच (जिसका सफेद एवं चमकीला रंग होता है) काञ्चन संसर्गाद्=सोने के सम्पर्क से या सोने के पास रखे जाने से, मारकतीम् द्युतिम् धत्ते=मरकत मणि की कान्ति को धारण करता है, सत्सन्निधानेन =सज्जनों के संसर्ग से, प्रवीणताम्= निपुणता को ।

अनुवाद—कांच, सोने के सम्पर्क से या पास रखे जाने से मरकतमणि की कान्ति को धारण करता है उसी प्रकार सज्जनों की समीपता के द्वारा मूर्ख भी निपुणता को प्राप्त होता है ।

कांच सफेद और चमकीला होता है किन्तु जब वह सोने के पास रख दिया जाता है तब सोने की कान्ति के मिलने से उसकी भी कान्ति कुछ नीली सी मरकत मणि के समान हो जाती है, इसी प्रकार मूर्ख भी सज्जनों की संगति से योग्य बन जाता है ।

उक्तं च—कहा भी है—

हीयत इति-अन्वय—हे तात । हि नीचैः सह समागमात् मतिः हीयते, समैः च (समागमात्) समताम् एति । विशिष्टैः च (समागमात्) विशिष्टताम् एति ।

शब्दार्थ—तात=प्रिय, नीचैः सह समागमात्=नीच जनों के साथ मिलने से, मतिः=बुद्धि, हीयते=नीच या हीन हो जाती है । समैः=अपने

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अत्रान्तरे विष्णुशर्मनामा महापण्डितः सकलनीतिशास्त्रतत्वज्ञः वृहस्पतिरिवाब्रवीत्—देव ! महाकुलसम्भूता एते राजपुत्राः तन्मया नीतिं ग्राहयितुं शक्यन्ते ।

यतः—नाद्रव्ये निहिता काचित्क्रिया फलवती भवेत् ।
न व्यापारशतेनापि शुकवत् पाठ्यते बकः ॥४५॥

समान वाले लोगों के साथ, समतामेति=समानता को प्राप्त होती है, विशिष्टैः सह=अपने से श्रेष्ठ जनों के साथ, विशिष्टताम् एति=श्रेष्ठता को प्राप्त होती है ।

अनुवाद—हे प्रियजन ! नीचों के साथ मिलने से बुद्धि हीन हो जाती है, अपने वरावर वालों के साथ समानता को प्राप्त होती है तथा श्रेष्ठ जनों के साथ श्रेष्ठता को प्राप्त होती है ।

सँगति का मानव पर बड़ा प्रभाव होता है जैसे व्यक्ति के साथ सम्पर्क होगा बुद्धि वैसी ही हो जायेगी, संगति से मानव के गुणों में स्वभाव और विचारों में तथा आचरण में वहुत वड़ा प्रभाव पड़ता है ।

अत्रान्तर इति-शब्दार्थ—अत्रान्तरे=इसी बीच, सकलनीतिशास्त्रतत्वज्ञः =सम्पूर्ण नीतिशास्त्र के तत्वों को जानने वाला, वृहस्पतिः इव=वृहस्पति के समान, अब्रवीत्=बोला, महाकुलसम्भूताः=उत्तम कुल में उत्पन्न हुये, नीतिं ग्राहयितुम्=नीति सिखाने के लिये ।

अनुवाद—इसी बीच विष्णु शर्मा नामक महापण्डित ने जो कि सम्पूर्ण नीतिशास्त्र के तत्वों को जानने वाला वृहस्पति के समान था, बोला, राजन् ! ये राजकुमार उच्च कुल में उत्पन्न हुये हैं, अतः मेरे द्वारा इनको नीति शिक्षा दी जा सकती है ।

यतः=क्योंकि—

नाद्रव्य इति अन्वय—अद्रव्ये निहिता काचित् क्रिया फलवती न भवेत् व्यापारशतेन अपि वकः शुकवत् न पाठ्यते ।

शब्दार्थ—अद्रव्ये=कुपात्र या अनुचित स्थान पर, निहिता काचित् क्रिया=किया गया कोई काम, फलवती न भवेत्=सफल नहीं होता, व्यापारशतेनापि=सैकड़ों प्रयत्नों से भी, वकः=बगला, शुकवत्=तोते के

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्य च्च—

अस्मिँस्तु निर्गुणं गोत्रे नापत्य मुपजायते ।
आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ॥४६॥

अतोऽहं षण्मासाभ्यन्तरे भवत्पुत्रान् नीतिशास्त्राभिज्ञान् करिष्यामि, राजा सविनयं पुनरुवाच ।

समान, न पाठ्यते=नहीं पढ़ाया जा सकता ।

अनुवाद—कुपात्र या अयोग्य पात्र के विषय में किया गया कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता, क्योंकि कुपात्र पर अच्छे उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । अतः उसके प्रति किया गया परिश्रम व्यर्थ जाता है जैसे चाहे जितना भी प्रयास किया जाय पर वगले को कोई उस प्रकार नहीं पढ़ा सकता जैसे तोते को पढ़ाया जा सकता है, वगला=कुपात्र है, जबकि शुक शिक्षा ग्रहण के लिये सुयोग्य पात्र माना जाता है । राजपुत्र उच्च कुलीन सुपात्र होने से शिक्षा ग्रहण करने योग्य हैं ।

अन्यच्च=और भी—

अस्मिन्निति-अन्वय—अस्मिन् तु गोत्रे निर्गुणम् अपत्यम् न उप जायते । पद्मरागाणाम् आकरे काचमणेः जन्म कुतः ।

शब्दार्थ—अस्मिन् तु गोत्रे=इस वंश में तो, निर्गुणम्=गुणहीन, अपत्यम्=सन्तान, न उपजायते=नहीं उत्पन्न हो सकती । पद्मरागाणाम् आकरे =पद्मराग (लाल रंग की मणि) मणियों की खानि में, काचमणेः जन्म कुतः =काँच मणि (अर्थात् काँच) का जन्म कहाँ से हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ।

अनुवाद—इस (आपके प्रशस्त) वंश में निर्गुण सन्तान (उसी प्रकार) नहीं हो सकती (जिस प्रकार) पद्मरागमणियों की खानि से काँच उत्पन्न नहीं हो सकता ।

प्रशस्त वंश से उत्तम सन्तान का ही जन्म हो सकता है निर्गुण का नहीं, पद्मरागमणियों की खानि से मणियाँ निकलती हैं, काँच नहीं ।

अतोऽहमिति=शब्दार्थ—षण्मासाभ्यन्तरे=छः महीनों के भीतर ही, भवत्पुत्रान्=आपके पुत्रों को, नीति-शास्त्राभिज्ञान्=नीतिशास्त्र के जानने वाले ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कीटोऽपि सुमनः सङ्गादारोहति सतां शिरः ।
अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥४७॥

अन्यच्च—

यथोदयगिरे द्रव्यं सन्निकर्षेण दीप्यते ।
तथा सत् संनिधानेन हीनवर्णोऽपि दीप्यते ॥४८॥

अनुवाद—इसलिये में आपके पुत्रों को छः माह के भीतर ही नीतिशास्त्र को जानने वाला बना दूँगा । राजा ने विनयपूर्वक फिर कहा—

कीट इति-अन्वय—कीटः अपि सुमनः सङ्गात् सताम् शिरः आरोहति, अश्मा अपि महद्भिः सुप्रतिष्ठितः सन् देवत्वम् याति ।

शब्दार्थ—कीटः अपि=(तुच्छ) कीड़ा भी, सुमनःसङ्गात्=फूल की संगति से, सतां शिरः आरोहति=सज्जनों के शिर पर चढ़ जाता है । अश्मा अपि=पत्थर भी, महद्भिः सुप्रतिष्ठितः=विद्वानों महापुरुषों द्वारा (मूर्ति रूप में) स्थापित होकर, देवत्वं याति=देवभाव को प्राप्त करता है ।

अनुवाद—तुच्छ कीड़ा भी फूलों की संगति से सज्जनों के सिर पर चढ़ जाता है, पत्थर भी बड़े विद्वानों द्वारा प्रतिष्ठित होकर देवत्व प्राप्त कर लेता है ।

जब प्रतिष्ठित सज्जनों को लोग आदर से पुष्प मालायें पहनाते हैं तो फूलों के बीच में होने वाला तुच्छ कीट भी उनके सिर पर पहुँच जाता है इसी प्रकार जब विद्वज्जन किसी पत्थर को वेदमन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित एवं प्रतिष्ठित कर मूर्ति रूप में स्थापित करते हैं तो वह पत्थर भी देवता बन जाता है । अतः सिद्ध है कि सत्संगति से मनुष्य उच्च सम्मान प्राप्त कर लेता है ।

अन्यच्च—और भी—

यथेति-अन्वय—यथा उदयगिरेः सन्निकर्षेण द्रव्यम् दीप्यते, तथा सत्सन्निधानेन हीनवर्णः अपि दीप्यते ।

शब्दार्थ—यथा=जिस प्रकार, उदयगिरेः=उदयाचल पर्वत के, सन्निकर्षेण=सन्निकर्ष से, सम्पर्क से अर्थात् सूर्य के तेज के सम्पर्क से, द्रव्यम्=वस्तु, अर्थात् पर्वत पर होने वाली औषधियाँ आदि, दीप्यते=प्रकाशित होती हैं । तथा=उसी प्रकार, सत्सन्निधानेन=सज्जनों के सम्पर्क से अथवा संगति से,

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति,
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः,
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥४८॥

हीनवर्णः अपि=छोटी जाति में उत्पन्न हीन व्यक्ति भी, दीप्यते=प्रकाशित या आदृत होता है ।

अनुवाद—जिस प्रकार उदयगिरि के सम्पर्क से अर्थात् उदित होते हुये सूर्य के तेज से (वहाँ के) औषधि पत्थर आदि भी प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार सज्जनों के पास रहने से हीनवर्ण व्यक्ति भी आदर पात्र बन जाता है ।

सत्संगति मनुष्य को आदरपात्र बना देती है, अतः सज्जनों का सम्पर्क बनाये रखना चाहिए ।

गुणाइति अन्वय—गुणज्ञेषु गुणाः, गुणाः भवन्ति, ते निगुर्णम् प्राप्य दोषाः भवन्ति । नद्यः आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति, (किन्तु) समुद्रम् आसाद्य (ताः) अपेयाः भवन्ति ।

शब्दार्थ—गुणज्ञेषु=गुणों को जानने वाले लोगों के विषय में अर्थात् गुणज्ञ जनों के पास पहुँचकर, गुणाः गुणाः भवन्ति=गुण, गुण होते हैं । ते=वे ही गुण, निर्गुणम् प्राय=गुणहीन व्यक्ति को पाकर, दोषा भवन्ति, दोष हो जाते हैं । नद्यः=नदियाँ, आस्वाद्यतोयाः=स्वादिष्ट पीने योग्य जल वाली, प्रवहन्ति=बहती हैं, समुद्रम् आसाद्य=समुद्र में पहुँचकर अर्थात् खारी समुद्र में मिलकर (वे) अपेयाः भवन्ति=न पीने योग्य जल वाली हो जाती हैं ।

अनुवाद—गुणज्ञ लोगों के सम्पर्क में गुण, वस्तुतः गुण रहते हैं, किन्तु वे गुण निर्गुण व्यक्ति के पास पहुँचकर दोष बन जाते हैं । नदियाँ, (स्वभावतः) पीने योग्य सुस्वादु जल वाली बहती हैं किन्तु जब वे खारी समुद्र के जल में मिलती हैं तो अपेय हो जाती हैं ।

निर्गुण व्यक्ति के सम्पर्क में अच्छे भी गुण दोष बन जाते हैं क्योंकि वह गुणों का मूल्य नहीं समझता, जैसे मिष्ठ जल वाली भी नदियाँ जब खारी समुद्र में मिलती हैं तो उनका भी जल पीने योग्य नहीं रहता । संगति का ऐसा ही प्रभाव होता है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथ मित्रलाभः

तदेतेषा मस्मत् पुत्राणां नीतिशास्त्रोपदेशाय भवन्तः 'प्रमाणम्' इत्युक्त्वा तस्य विष्णुशर्मणो बहुमानपुरः सर पुत्रान् समर्पितवान् ।

अथ प्रासाद पृष्ठे सुखोपविष्टानां राजपुत्राणां पुरस्तात् प्रस्ताव-क्रमेण स पण्डितोऽब्रवीत् । भोः राजपुत्राः शृणुत—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥१॥

अथ मित्रलाभः

तदिति शब्दार्थ—अस्मत् पुत्राणाम्=हमारे पुत्रों के, भवन्तः=आप ही, प्रमाणम्=प्रमाणभूत हैं। इत्युक्त्वा=यह कहकर, बहुमानपुरःसरम्=बड़े आदर के साथ, समर्पितवान्=दे दिया।

अनुवाद—अतः इन मेरे पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश देने के लिये आप ही प्रमाण हैं। ऐसा कहकर, पुत्रों को, बड़े आदर के साथ, उन विष्णु शर्मा को समर्पित कर दिया।

अथेति शब्दार्थ—प्रासाद पृष्ठे=राजमहल की छत पर, सुखोपविष्टानाम्=सुख पूर्वक बैठे हुए, पुरस्तात्=आगे, प्रस्तावक्रमेण=अवसरानुकूल ढंग से।

अनुवाद—इसके बाद राजप्रासाद की छत पर आराम से बैठे हुये राज पुत्रों के आगे अवसरानुकूल ढंग से उस पण्डित विष्णु शर्मा ने कहा, हे राज-पुत्रो ! सुनो।

काव्येति अन्वय—धीमताम् कालः काव्यशास्त्रविनोदेन गच्छति, मूर्खा-णाम् (कालः तु) व्यसनेन निद्रया कलहेन वा (गच्छति)

शब्दार्थ—धीमताम्=बुद्धिमान् शिक्षित जनों का, कालः=समय, काव्य-शास्त्रविनोदेन=सरस काव्यों एवं नीति आदि शास्त्रों के अध्ययन के आनन्द से, गच्छति=व्यतीत होता है, मूर्खाणाम्=अशिक्षित मूर्खजनों का (समय) व्यसनेन=बुरे व्यसनों—द्यूत मद्यपानादि से, कलहेन=लड़ाई झगड़े से।

अनुवाद—बुद्धिमान् जनों का समय (तो) सरस काव्यों एवं नीति आदि

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तद् भवतां विनोदाय काककूर्मादीनां विचित्रां कथां कथयिष्यामि । राजपुत्रै रुक्तम्—आर्य । कथ्यताम् । विष्णुशर्मोवाच, श्रुणुत यूयम् । सम्प्रति मित्रलाभः प्रस्तूयते यस्यायमाद्यः श्लोकः—

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः ।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत् ॥२॥

शास्त्रों के पढ़ने के आनन्द से व्यतीत होता है, (किन्तु) मूर्खों का (समय) दुर्व्यसनों से नींद और कलह से बीतता है ।

बुद्धिमानों का समय तो काव्यशास्त्र के आनन्द में बीतता है, पर मूर्ख लोग इस समय को दुर्व्यसनों में नींद में और कलह में व्यतीत करते हैं । अतः मनुष्य को बुद्धिमान होकर काव्यशास्त्र के विनोद में ही अपना समय बिताना चाहिए । दुर्व्यसनों में नहीं ।

तदिति-शब्दार्थ—भवताम्=आप लोगों के, विनोदाय=मनोरञ्जन के लिये, काककूर्मादीनाम्=कौवा कच्छप आदि की, उक्तम्=कहा, कथ्यताम्=कहिये, संप्रति=अब, प्रस्तूयते=आरम्भ किया जा रहा है, यस्य अयम् आद्यः श्लोकः=जिसका यह प्रथम श्लोक है—

अनुवाद—अतः आप लोगों के मनोरंजन के लिये कौवा कच्छप आदि की विचित्र कथा को कहूँगा, राजपुत्रों ने कहा—आर्य ! कहिये, विष्णु शर्मा ने कहा आप लोग सुनें, इस समय 'मित्रलाभ' नामक प्रकरण को आरम्भ किया जा रहा है, जिसका यह प्रथम श्लोक है—

असाधना इति-अन्वय—असाधनाः वित्तहीनाः बुद्धिमन्तः, सुहृत्तमाः (जनाः) काककूर्ममृगाखुवत् आशु कार्याणि साधयन्ति ।

शब्दार्थ—असाधनाः=साधनों से रहित, वित्तहीना=धन से रहित, (तथापि) बुद्धिमन्तः=बुद्धिमान, सुहृत्तमाः=अच्छे मित्रों वाले (लोगों) आशु=शीघ्र ही, काककूर्म मृगाखुवत्=काक=कौवा, कूर्म=कच्छप, मृग=हिरण और आखु=चूहा की तरह, कार्याणि साधयन्ति=कार्य सिद्ध कर लेते हैं ।

अनुवाद—साधनहीन और धन हीन (भी लोग) बुद्धिमान और अच्छे मित्रों वाले (यदि होते हैं तो वे) कौवा कच्छप, मृग और चूहे की तरह शीघ्र ही, अपने कार्य सिद्ध कर लेते हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

राजपुत्रा ऊचुः—कथमेतत् ? सोऽब्रवीत्—

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मली तरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचित् अवसन्नायां रात्रौ अस्ताचलचूड़ावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि, लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयमायान्तं व्याधमपश्यत्। तमालोक्याचिन्तयत्—'अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनं जातम्। न जाने किमनभिमतं दर्शयिष्यति' इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः। यतः—

धन और साधन यद्यपि कार्य सिद्धि करने वाले होते हैं तथापि इनसे रहित भी वे लोग जिनके अच्छे मित्र होते हैं और वे स्वयं बुद्धिमान होते हैं, तो वे अपना काम बना लेते हैं, जैसे काककूर्म आदि सभी साधनों से रहित होकर भी अपने कार्य में सफल होते हैं।

राजपुत्रों ने कहा यह कैसे ? विष्णु शर्मा ने कहा—

अस्तीति-शब्दार्थ—शाल्मली तरुः=सेमल का वृक्ष, नानादिग्देशात् आगत्य=विभिन्न दिशाओं और विविध देशों से आकर, कदाचित्=किसी समय, अवसन्नायां रात्रौ=रात्रि के समाप्त प्राय होने पर, भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि अस्ताचलचूडावलम्बिनि सति=भगवान् कुमुदिनीपति चन्द्रमा के अस्ताचल की चोटी पर पहुँच जाने पर अर्थात् जब कि चन्द्रमा अस्त होने ही वाला था, प्रबुद्धः=जगा, द्वितीयं कृतान्तम् इव=दूसरे यमराज के समान, आयान्तम्—आते हुये, व्याधम=बहेलिये को, अचिन्तयत्—सोचा, अद्य प्रातः एव=आज प्रातः काल ही, अनिष्टदर्शन जातम्=अनिष्ट अर्थात् अनिष्ट कारक बुरे व्यक्ति का दर्शन हुआ, न जाने, किम् अनभिमतं दर्शयिष्यति=न जाने क्या अवाञ्छित या अनिष्ट दिखलायेगा। तदनुसरणक्रमेण=क्रमशः उसके पीछे पीछे, व्याकुलः=व्याकुल होकर, चलितः=चलने लगा। यतः=क्योंकि—

अनुवाद—गोदावरी नदी के किनारे विशाल सेमल का वृक्ष है। वहाँ पर नाना दिशाओं और नाना देशों से आकर रात में पक्षी निवास करते हैं। इसके बाद किसी समय रात्रि के समाप्त प्राय होने पर और जब कि भगवान

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

शोकस्थान सहस्राणि भयस्थान शतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढ माविशन्ति न पण्डितम् ।।३।।
अन्यच्च, विषयिणा मिदमवश्यं कर्तव्यम् ।

कुमुदिनीपति चन्द्रमा अस्ताचल की चोटी पर पहुँच गये थे अर्थात् अस्त होने ही वाले थे, लघुपतनक नाम का कौवा जगा (और उसनें) (एक) दूसरे यमराज की तरह आते हुए वहेलिये को देखा। उसे देखकर सोचने लगा--आज प्रातः काल ही अनिष्ट दर्शन या अशुभदर्शन हुआ, न जाने क्या अनिष्ट दिखलायेगा, ऐसा कहकर क्रम से उसके पीछे-पीछे व्याकुल होकर चल दिया—क्योंकि—

शोकेति-अन्वय—शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च दिवसे दिवसे मूढम् आविशन्ति, पण्डितम् न (आविशन्ति)

शब्दार्थ—शोकस्थानसहस्राणि=हजारों शोक के स्थान, भयस्थानशतानि च=और सैकडों भय के स्थान, मूढम् आविशन्ति=मूर्ख को प्राप्त होते हैं, न पण्डितम्=विद्वान् जन को नहीं।

अनुवाद—मूर्ख जन को हजारों शोक के स्थान और सैकड़ों भय के स्थान प्रति दिन प्राप्त होते हैं, पर विद्वान् को नहीं।

तात्पर्य यह कि जो मूर्ख होता है उसे तो प्रति दिन अनेक शोक और भय के अवसर प्राप्त होते हैं, किन्तु विद्वान् को नहीं। मूर्ख शोक और भय को दूर करने का उपाय नहीं सोच पाता और उनमें फँस कर दुःख उठाता है पर विद्वान् शोक और भय के अवसरों पर अपनी बुद्धि के वल से उन्हें दूर करने का उपाय कर लेता है अतः उसे ये दुःख प्राप्त नहीं होते।

यहाँ यद्यपि कौवे के सामने दुःख का अवसर उपस्थित हो गया था, तथापि बुद्धिमान होने के कारण वह व्याध के पीछे लगकर उससे वचने का उपाय खोजने लगा था।

अन्यच्चेति—और 'भी' विषयिणाम् अर्थात् संसारी लोगों का यह परम कर्तव्य है कि—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

उत्त्थायोत्त्थाय बोद्धव्यं महद् भय मुपस्थितम् ।
मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति ॥४॥

अथ तेन व्याधेन तण्डुलकणान् विकीर्य जालं विस्तीर्णम्, स च तत्र प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। अस्मिन्नेव काले चित्रग्रीव नामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पं स्तां स्तुण्डुल कणानवलोकयामास। ततः कपोतराजस्तण्डुलकणलुब्धान् कपोतान् प्राह-कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां सम्भवः, तन्निरुप्यतां तावत्, भद्रमिदं न पश्यामि, प्रायेणानेन तण्डलकणलोभेनास्माभिरपि तथा भवितव्यम्।

उत्त्थायेति-अन्वय—उत्त्थाय उत्त्थाय, मरणव्याधिशोकानाम् किम् अद्य निपतिष्यति, इति उपस्थितं (यद्) महद् भयम (तत्) वोद्धव्यम् ।

शब्दार्थ—उत्त्थाय उत्त्थाय=उठ उठकर अर्थात् प्रत्येक दिन प्रातः काल उठकर, मरणव्याधिशोकानाम्=मरण शारीरिक व्याधि और शोक इन तीनों में से, किमद्य निपतिष्यति=आज क्या प्राप्त होगा, इति उपस्थितं (यद्) महद् भयम्=यह जो नित्य बड़ा भय उपस्थित होता है, तद् वोद्धव्यम्= उसे समझना चाहिये ।

अनुवाद—नित्य प्रातः उठकर मरण व्याधि और शोक में से आज कौन प्राप्त होगा, यह जो नित्य महान भय उपस्थित होता है उसे जानना चाहिये—

अर्थात् संसारी मनुष्यों का यह परम कर्तव्य है कि वे प्रतिदिन प्रातः काल उठकर यह सोचें कि मरण व्याधि और शोक इन तीनों में से आज कौन मुझ पर आयेगा, क्योंकि ये तीनों बड़े भयानक होते हैं और इनमें से कोई न कोई अवश्य आ उपस्थित होता है, अर्थात् मनुष्य को इन्हें सोच समझकर इनसे वचने का उपाय प्रतिदिन प्रातः सोचना चाहिये ।

अथेति-शब्दार्थ—तण्डुलकणान्=चावलों के कणों को, विकीर्य=फैला कर, जालम् विस्तीर्णम्=जाल लगा दिया, सपरिवारः=अपने परिवार के साथ वियति=आकाश में, विसर्पन्=उड़ता हुआ, तण्डुकणलुब्धान्=तण्डुल-कणों के लिये लालायित, सम्भवः=उत्पत्ति, तन्निरुप्यताम् तावत्=तो पहले इस बात को खूब समझ सोच लो, भद्रमिदं न पश्यामि=मैं इसे

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कङ्कणस्य तु लोभेन मग्नः पङ्के सुदुस्तरे ।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः पथिकः स मृतो यथा ॥५॥

कपोताः ऊचुः—कथमेतत्, सोऽब्रवीत् ।

"कथा १"

अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्नपश्यम्-एको वृद्धो व्याघ्रः स्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे ब्रूते—भो भोः पान्थाः ! इदं सुवर्णकङ्कणं गृह्यताम्, ततो लाभाकृष्टेन केनचित् पान्थेन आलोचितम्, भाग्येनैतत् सम्भवति किन्तु अस्मिन् आत्मसन्देहे प्रवृत्ति र्न विधेया । यतः—

कल्याणकारी नहीं समझता, अस्माभिरपि तथा भवितव्यम्=हमें भी वैसा ही होना पड़ेगा ।

अनुवाद—इसके वाद उस बहेलिये ने चावलों के दानों को फैलाकर जाल लगा दिया, और वह (प्रच्छन्नो भूत्वा) छिपकर बैठ गया । इसी समय चित्रग्रीव नाम के कबूतरों के राजा ने परिवार सहित आकाश में उड़ते हुए उन तण्डुल कणों को देखा । तब कपोतराज ने तण्डुल कणों के लिये लालायित कबूतरों से कहा, इस निर्जन वन में तण्डु कणों की उत्पत्ति कहाँ से (हो सकती है) अतः पहले इस बात को समझ लो, मैं इसे कल्याणकर नहीं समझता । प्रायः इस तण्डुलकण के लोभ से हमें वैसा ही होना पड़ेगा । जैसा कि—

कङ्कणस्येति-अन्वय—कङ्कणस्य लोभेन सुदुस्तरे पंके मग्नः, वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः यथा स पथिकः मृतः ।

शब्दार्थ—सुदुस्तरे पंके मग्नः=कठिनता से ही पार होने योग्य कीचड़ में निमग्न हुआ, वृद्धव्याघ्रेण=बूढ़े वाघ के द्वारा, सम्प्राप्तः=अच्छी तरह से पकड़ कर दवोचा गया ।

अनुवाद—कंकण के लोभ से दुस्तर कीचड़ में फँसा हुआ और बूढ़े वाघ द्वारा सम्यक् दवोचा गया वह पथिक मर गया था ।

कपोता इति=कबूतरों ने कहा, यह कैसे ? उसने कहा—

अहमिति-शब्दार्थ—दक्षिणारण्ये=दक्षिण के जंगल में, चरन्=घूमता आ, ब्रूते=कहता है, पान्थाः=पथिक, गृह्यताम्=ले लीजिये, लोभाकृष्टेन

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गति र्जायते शुभा ।
यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे ॥६॥
किन्तु सर्वत्रार्थार्जनप्रवृत्तौ सन्देह एव । तथा चोक्तम्—
न संशय मनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ॥७॥

=लोभ से आकृष्ट हुये, आलोचितम्=सोचा आत्मसन्देहे=जिसमें अपने को ही सन्देह हो, न विधेया=न करनी चाहिये ।

अनुवाद—एक बार दक्षिण वन में घूमते हुये मैंने देखा कि एक वृद्ध व्याघ्र स्नान किये हुये और कुश हाथ में लिये हुये सरोवर के किनारे कहता है—हे हे पथिको ! इस स्वर्ण कंकण को ले लीजिये, तब लोभ से वशीभूत हुये किसी पथिक ने सोचा भाग्य से ही यह सम्भव होता है, किन्तु जहाँ अपने को सन्देह हो वहाँ प्रवृत्ति न करनी चाहिये, क्योंकि—

अनिष्टेति-अन्वय—अनिष्टात् इष्टलाभेऽपि शुभा गतिः न जायते । यत्र विषसंसर्गः आस्ते, तदपि अमृतम् मृत्यवे (भवति) ।

शब्दार्थ—अनिष्टात्=अनिष्ट कारी व्यक्ति से, इष्टलाभेऽपि=इष्ट वस्तु के प्राप्त होने पर भी, शुभा गतिः न जायते=अच्छी गति अर्थात् अच्छा परिणाम नहीं होता, यत्र=जहाँ, विषसंसर्गः=विष का सम्पर्क, आस्ते=रहता है, तदपि अमृतम्=वह अमृत भी, मृत्यवे=मृत्यु के लिये (होता है) ।

अनुवाद—अनिष्टकारी व्यक्ति से इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होने पर भी, अच्छा परिणाम नहीं निकलता, जहाँ विष का सम्पर्क होता है वह अमृत भी मृत्यु के लिए होता है ।

जैसे विषमिश्रित अमृत भी मृत्यु का कारण होता है, उसी प्रकार अनिष्ट से इष्ट लाभ भी अनिष्ट कारक होता ।

किन्त्विति— किन्तु सर्वत्र (अर्थार्जनप्रवृत्तौ) धन कमाने की प्रवृत्ति में सन्देह ही रहता है, जैसा कि कहा गया है:—

नेति-अन्वय—संशयम् अनारुह्य नरः भद्राणि न पश्यति, पुनः संशयम् आरुह्य, यदि जीवति-पश्यति ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तन्निरूपयामि तावत्। प्रकाशं ब्रूते-कुत्र तव कङ्कणम् ? व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति। पान्थोऽवदत्-कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः। व्याघ्र उवाच-श्रणु रे पान्थ ! प्रागेव यौवनदशायां मह मति दुर्वृत्त आसम्। अनेकगोमानुषाणां वधाद् मे पुत्रा मृता दाराश्च, वंशहीन श्चाहम्। ततः केनचिद् धार्मिकेणाह मुपदिष्टः-दानधर्मादिकं चरतु भवान् इति। तदुपदेशादिदानी महं स्नानशीलो दाता बृद्धो गलितनखदन्तः कथं न विश्वासभूमिः ? उक्तञ्च—

शब्दार्थ—संशयम् अनारुह्य=सन्देह में न पड़ कर, नरः भद्राणि न पश्यति=मनुष्य सुख प्राप्त नहीं करता, पुनः संशयम् आरुह्य=किन्तु संशय में पड़ कर, यदि जीवति पश्यति=यदि जीवित रहता है तो देखता है, अर्थात् विविध सन्देहास्पद पदार्थों में उलझ कर यदि मनुष्य सफलता प्राप्त कर लेता है, तो वह सुखी होता है।

अनुवाद—संशय में न पड़ कर मनुष्य सुख को नहीं देखता किन्तु संशय में पड़ कर यदि सफल होता है तो सुख प्राप्त करता है।

तात्पर्य यह है कि संसार के खाने पीने आदि के पदार्थ, एवं आने जाने आदि के सभी स्थान संशयग्रस्त हैं, प्रत्येक स्थान पर अर्थ प्राप्ति भी संदेहास्पद है, यदि मनुष्य इन सन्देहास्पद विषयों में नहीं पड़ता, इनसे दूर ही रहता है तो वह संसार में सुख एवं आत्मलाभ प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु इन संशयों में जो पड़ता है और फिर अपनी बुद्धि से इनसे सफलता पूर्वक निकल आता है वही सांसारिक सुखों का उपभोग करता है।

तदिति—तो पहले इस बात का निश्चय करता हूँ। (वह इतनी बात मन में सोचकर फिर वह) प्रकट रूप में कहता है—तुम्हारा कङ्कण कहाँ है ? व्याघ्र हाथ फैलाकर दिखलाता है। पथिक ने कहा-हिंसक अथवा घातक स्वभाव वाले तुम्हारे पर कैसे विश्वास हो ? व्याघ्र नें कहा—अरे पथिक सुन। पहले युवावस्था में तो मैं बहुत घातक दुराचारी था, अनेक गाय और मनुष्यों के वध से मेरे पुत्र और पत्नी मर गये, और में वंशहीन हो गया हूँ। तव किसी धार्मिक व्यक्ति नें मुझे उपदेश दिया—आप दान धर्म आदि करें। उसके उपदेश से इस समय मैं नित्य स्नान करने वाला, दानी,

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥८॥
तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थ मपि सेव्यते ।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ॥९॥

वृद्ध, तथा जिस मेरे नख और दाँत गल गये हैं, ऐसा मैं किस प्रकार विश्वास पात्र नहीं हूँ ? कहा भी गया है:—

इज्येति-अन्वय—इज्या अध्ययनदानानि, तपः सत्यम् धृतिः क्षमा अलोभः इति अयं धर्मस्य अष्टविधः मार्गः स्मृतः ।

शब्दार्थ—इज्या=यज्ञ, अध्ययन=विद्याध्ययन, दानानि=दान, तपः =तपस्या करना, सत्यम्=सत्य बोलना, धृतिः=धैर्य धारण करना, क्षमा =क्षमाशील होना, अलोभः=लोभ न करना, यह धर्म का आठ प्रकार का मार्ग कहा जाता है ।

अनुवाद—यज्ञ, दान, अध्ययन, तप, सत्य, धैर्य, क्षमा, अलोभ, यह धर्म का आठ प्रकार का मार्ग कहा जाता है ।

अर्थात् यह धर्म का अष्ट विध मार्ग है, इसका आचरण करने वाला धर्मात्मा होता है, हिंसक नहीं । अतः वह विश्वसनीय है ।

तत्रेति-अन्वयः—तत्र पूर्वः चतुर्वर्गः दम्भार्थम् अपि सेव्यते, उत्तरः तु चतुर्वर्गः महात्मनि एव तिष्ठति ।

शब्दार्थ—तत्र=वहाँ अर्थात् उक्त अष्ट विध धर्म मार्ग में, पूर्वः चतुर्वर्गः =पहला चतुर्वर्गः अर्थात् यज्ञ, अध्ययन, दान, तप यह तो, दम्भार्थम् अपि सेव्यते=दिखावे के लिये-लोक प्रतिष्ठा और ख्याति के लिये भी सेवित किया जाता है, तु-किन्तु, उत्तरः चतुर्वर्गः=उत्तर अर्थात् शेष चतुर्वर्ग-सत्य धृति क्षमा अलोभ, यह तो, महात्मन्येव तिष्ठति=सच्चे महात्मा में ही पाया जाता है ।

अनुवाद—उक्त अष्टविध धर्म मार्ग में पहले चार का सेवन तो प्रदर्शनार्थ या ख्याति के लिये भी किया जाता है किन्तु अन्तिम चार धर्म तो महात्मा में ही पाये जाते हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मम चेतावाँल्लोभविरहो येन स्वहस्तस्थ मपि सुवर्णकङ्कणं यस्मैकस्मैचिद्दातु मिच्छामि। तथापि व्याघ्रो मानुषं खादतीति लोकापवादो दुर्निवार:। यत:

गतानुगतिको लोक: कुट्टिनी मुपदेशिनीम्।
प्रमाणयति यो धर्मे यथा गोघ्नमपि द्विजनम् ॥१०॥

ममेति-शब्दार्थ—एतावान् लोभविरह: = इतना निर्लोभ, येन = जिससे कि, स्वहस्तथम् अपि = अपने हाथ में रखे हुये भी, यस्मै कस्मैचिद् = जिस किसी को, दुर्निवार: = कठिनता से सी निवारण करने योग्य हैं।

अनुवाद—और मुझे तो इतना निर्लोभ है जिससे कि (मैं) अपने हाथ में रखे हुए भी स्वर्णकंकण को जिस किसी को देना चाहता हूँ, तो भी व्याघ्र मनुष्य को खा लेता है, यह लोकनिन्दा कठिनता से ही दूर की जा सकती है।

यत: —क्योंकि—

गतेति-अन्वय—गतानुगतिक: लोक: यथा गोघ्नम् अपि द्विजम् धर्मे प्रमाणयति (तथा) उपदेशिनीम् कुट्टिनीम् न प्रमाणयति।

शब्दार्थ गतानुगतिक: = प्राचीन परम्परा का अनुयायी, लोक: = संसार, यथा = जैसे, धर्मे = धर्मकार्य में, गोघ्नम् अपि द्विजम् = गोहत्या करने वाले ब्राह्मण को भी, प्रमाणयति = प्रमाण रूप में मानता है अर्थात् उसकी वात को प्रामाणिक अवश्य करणीय मानता है, (उसी प्रकार वह) उपदेशिनीम् = सदुपदेश करने वाली, कुट्टिनी = पुश्चली स्त्री को, न प्रमाणयति = प्रमाणित नहीं मानता।

अनुवाद—प्राचीन परम्परा का अनुसरण करने वाला (यह) लोक जिस प्रकार धर्मकार्य में गोहत्या करने वाले भी ब्राह्मण को प्रमाणिक मानता है उसी प्रकार उपदेश देने वाली भी पुश्चली स्त्री को प्रमाणित नहीं करता अर्थात् उसकी बात पर विश्वास नहीं करता।

अर्थात् यह संसार गतानुगतिक-प्राचीन प्रचलित मान्यताओं का मानने वाला है, प्राचीन मान्यता, भले ही वह अविश्वसनीय अप्रमाणिक और असत्य ही क्यों न हो, पर प्राचीन परम्परा का अन्धानुसरण करने वाला यह लोक उसे ही प्रामाणिक मानता है, नवीन अच्छी भी बात को नहीं

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मया च धर्मशास्त्राण्यधीतानि शृणु—

मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्ते भोजनं यथा ।
दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन ! ॥११॥

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥१२॥

मानता, आज भी उस श्रोत्रीय ब्राह्मण की बात, जो कि यज्ञों में गोहत्या करने वाला होता है, प्रामाणिक मानी जाती है, पर यदि कोई कुट्टिनी स्त्री सदुपदेश भी देती है, कल्याण कर बात भी कहती है तो उसे कुट्टिनी मानकर लोग उसकी बात पर विश्वास नहीं करते । यह खेद की बात है ।

मयेति—और मैंने धर्मशास्त्रों को (भी) पढ़ा है, सुनो—

मरुस्थल्यामिति अन्वय—हे पाण्डुनन्दन ! तथा मरुस्थल्याम् वृष्टिः (सफला भवति) (यथा च) क्षुधार्ते भोजनं (सफलं भवति) तथा दरिद्रे (यद्) दीयते, (तद्) सफलम् (भवति) ।

शब्दार्थ—हे पाण्डुनन्दन=पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! यथा मरुस्थल्यां वृष्टिः =जैसे मरुस्थल में वर्षा (सफल कही जाती है और जैसे) क्षुधार्ते भोजनम = भूख से पीडित को (दिया गया) भोजन (सफल होता है) तथा उसी प्रकार दरिद्रे=दीन निर्धन को (जो) दानम्=दान, दीयते=दिया जाता है, (तद्-वह दान) सफल होता है ।

अनुवाद—हे युधिष्ठिर ! जैसे मरुस्थल में वर्षा (सफल कही जाती है) (और जैसे) क्षुधापीड़ित को (दिया गया) भोजन (सफल कहा जाता है, वैसे ही दरिद्र को (जो) दान दिया जाता है वह सफल होता है ।

प्राणा इति-अन्वय—प्राणाः यथा आत्मनः अभीष्टाः (भवन्ति) तथा ते प्राणाः) भूतानाम् अपि (अभीष्टा भवन्ति) साधवः आत्मौपम्येन भूतेषु दयाम् कुर्वन्ति ।

शब्दार्थ—प्राणाः यथा आत्मनः अभीष्टाः=प्राण जैसे अपने को प्रिय होते हैं, तथा ते भूतानाम् अपि=उसी प्रकार वे अन्य सब प्राणियों को भी अभीष्ट होते हैं । साधवः=सज्जन पुरुष, आत्मौपम्येन=अपने ही समान, भूतेषु=प्राणियों पर, दयां कुर्वन्ति=दया करते हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपरं च—

प्रत्याख्याने च दाने च सुखे दुःखे प्रियाप्रिये ।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधि गच्छति ॥१३॥

अनुवाद—जैसे अपने प्राण अपने को प्रिय होते हैं, उसी प्रकार वे अन्य प्राणियों को भी प्रिय होते हैं। सज्जन पुरुष अपने ही समान सभी प्राणियों पर दया करते हैं।

अर्थात् प्राण सभी प्राणियों को प्रिय होते हैं, चाहे वह निकृष्ट प्राणी हो या उत्तम, सभी अपने को बचाना चाहते हैं अर्थात् जीवित रहना चाहते हैं, अतएव वे अपने प्राणों की रक्षा के साधन जुटाते रहते हैं। जो सत्पुरुष होते हैं वे इसीलिये सभी प्रकार के प्राणियों पर अपने समान ही दया भाव रखते हैं।

अपरं च = और भी—

प्रत्याख्यान इति-अन्वय—पुरुषः प्रत्याख्याने दाने च सुखे दुःखे प्रियाप्रिये च। आत्मौपम्येन प्रमाणम् अधिगच्छति।

शब्दार्थ—पुरुषः=सत्पुरुष, प्रात्याख्याने=दूसरे की प्रार्थना को अस्वीकार करने में, दाने च=और दान देने में, सुखे दुःखे च=और सुख तथा दुःख में प्रियाप्रिये=प्रिय और अप्रिय वस्तु के विषय में, आत्मौपम्येन= आत्म सदृश ही, प्रमाणम् अधिगच्छति=प्रमाण प्राप्त करता है, अर्थात् वह, भलीभाँति जान लेता है कि ये सब बातें अपने समान ही दूसरों को भी होती हैं।

अनुवाद—सत्पुरुष, दूसरों की प्रार्थना को अस्वीकार करने में, दान देने में और सुख तथा दुःख में, प्रिय और अप्रिय पदार्थों के विषय में अपने समान ही प्रमाण पाते हैं अर्थात् इन सब विषयों में अपने समान ही दूसरों को भी समझते हैं।

अर्थात् वे जानते हैं कि प्रार्थना आदि के स्वीकृत या अस्वीकृत होने पर, अभीष्ट पदार्थ के मिलने और न मिलने पर जैसे दुःख या सुख हमें होता है वैसे ही दूसरों को भी होता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥१४॥

त्वञ्चातीव दुर्गतस्तेन तत्तुभ्यं दातुं सयत्नोऽहम् । तथा चोक्तम्—

दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥१५॥

अन्यच्च=और भी—

मात्रिति-अन्वय—यः परदारेषु मातृवत्, परद्रव्येषु लोष्ठवत्, सर्वभूतेषु आत्मवत् पश्यति, स पण्डितः (भवति) ।

शब्दार्थ—यः=जो पुरुष, परदारेषु=दूसरों की स्त्रियों पर, मातृवत्=माता के समान, पर द्रव्येषु=दूसरे के धनों पर, लोष्ठवत्=मिट्टी के ढेले या पत्थर के टुकड़े के समान, सर्वभूतेषु=सब प्राणियों पर, आत्मवत्=अपने ही समान, पश्यति=देखता है, स् पण्डितः (भवति) वही विद्वान् होता है ।

अर्थात् सच्चा विद्वान् वही है जो कि दूसरों की स्त्रियों को अपनी माता के समान देखे, दूसरों के धन आदि को मिट्टी के ढेले के समान समझे तथा प्राणियों को अपने समान समझे ।

त्वञ्चेति-शब्दार्थ—अतीवदुर्गतः=अत्यन्त निर्धन, तत्=वह स्वर्ण कङ्-कण, सयत्नः=प्रयत्नशील ।

अनुवाद—और तुम अति निर्धन हो, अतः यह स्वर्णकङ्कण तुमको देने के लिये, में प्रयत्नशील हूँ । और वैसा ही कहा गया है ।

दरिद्रानिति-अन्वय—हे कौन्तेय ! दरिद्रान् भर, ईश्वरे धनं मा प्रयच्छ, व्याधितस्य औषधम् पथ्यम् (भवति) नीरुजस्य औषधैः किम् ।

शब्दार्थ—कौन्तेय=कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! दरिद्रान् भर=निर्धनों का पालन करो, ईश्वरे धनम् मा प्रयच्छ=धनवान् पुरुष को धन मत दो, व्याधितस्य=रोगी व्यक्ति के लिए, औषधम्=औषधि, पथ्यम्=हितकर, नीरुजस्य=निरोग व्यक्ति के लिये ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः ॥१६॥

तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकङ्कणमिदं गृहाण, ततो यावदसौ तद् वचः प्रतीतो लोभात् सरः स्नातुं प्रविष्टः तावन्महा पङ्के निमग्नः पलायितु मक्षमः। तं पङ्के पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत्—अहह, महापङ्के पतितोऽसि। अतस्त्वामहमुत्थापयामि, इत्युक्त्वा शनैः शनै रूपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतः स पान्थोऽचिन्तयत्

अनुवाद—हे युधिष्ठिर ! निर्धनों का पालन करो, धनवान् पुरुष को धन मत दो, रोगी व्यक्ति के लिये औषधि हितकर (होती है) नीरोग व्यक्ति के लिये औषधियों से क्या (प्रयोजन) अर्थात् कुछ नहीं।

अन्यच्च—और भी—

दातव्यमिति-अन्वय—दातव्यम् इति यद् दानम् देशे काले च अनुपकारिणि पात्रे दीयते तद् दानम् सात्विकम् विदुः।

शब्दार्थ—दातव्यम् इति यद् दानम्=‘देना चाहिये’ यह समझकर जो दान, देशे काले च अनुपकारिणि पात्रे=समुचित देश में और उपयुक्त समय में, जिससे बदला लेने की आशा न हो ऐसे अनुपकारी पात्र को, दीयते=दिया जाता है, तद् दानम्=वह दान, सात्विकम् विदुः=सात्विक एवं पुण्यप्रद, जानते हैं।

अनुवाद—“देना चाहिये” यह समझकर जो दान, समुचित देश और समुचित समय में, उपकार के बदले उपकार की आशा से रहित योग्य पात्र को दिया जाता है, वह दान पुण्यप्रद दान (सत्पुरुष) जानते हैं।

अर्थात् उचित देश काल और पात्र को दिया गया दान पुण्यप्रद दान कहा जाता है।

तदिति-शब्दार्थ—गृहाण=लीजिये, तद्वचः प्रतीतः=उसके कहने से विश्वस्त होकर, पलायितुमक्षमः=भागने के लिये असमर्थ (हो गया) उत्थापयामि=उठाता हूँ, शनैः शनैः=धीरे धीरे, उपगम्य=पास जाकर।

अनुवाद—तो इस सरोवर में स्नान करके इस सुवर्णकङ्कण को

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

"न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणम्,
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वाभाव एवात्र तथातिरिच्यते,
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः" ॥१७॥

लीजिए। तब ज्यों ही वह उसके कहने से विश्वस्त होकर लोभ से, सरोवर में स्नान के लिये प्रविष्ट हुआ त्यों ही बहुत बड़े कीचड़ में फंस गया और भागने में असमर्थ हो गया, उसे कीचड़ में गिरा हुआ देखकर व्याघ्र ने कहा अहह तुम बहुत बड़े कीचड़ में फंस गये हो, अतः मैं तुमको उठाता हूँ, यह कह धीरे-धीरे पास जाकर उस व्याघ्र के द्वारा दबाये गये उस पथिक ने सोचा—

नेति अन्वय—दुरात्मनः 'धर्मशास्त्रं पठति' इति कारणं न, वेदाध्ययनम् अपि च न कारणम्, अत्र स्वभावः एव तथा अतिरिच्यते, यथा गवाम् पयः प्रकृत्या मधुरम् (भवति)

शब्दार्थ—दुरात्मनः=दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य के लिये, 'धर्मशास्त्रं पठति'=यह धर्मशास्त्र पढ़ता है, इति कारणं न भवति=यह कारण नहीं होता, वेदाध्ययनम् अपि न कारणम्=वेदों का अध्ययन भी कारण नहीं होता। (किन्तु) अत्र=धर्माचरण के विषय में, स्वभाव एव तथा अतिरिच्यते =अपना स्वभाव ही उसी प्रकार सब से प्रधान कारण होता है, यथा=जैसे, गवाम् पयः=गायों का दूध, प्रकृत्या मधुरम्—स्वभावतः ही मीठा होता है।

अनुवाद—दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति के लिये, 'यह धर्मशास्त्र पढ़ता है' यह भी (उसके स्वभाव परिवर्तन में) कारण नहीं होता और न वेदाध्ययन ही कारण होता है, अपितु (सदाचरण के विषय में) अपना स्वभाव ही मुख्य कारण होता है, उसी प्रकार जैसे गायों का दूध स्वभावतः ही मीठा होता है।

जन्मतः जिसका जैसा स्वभाव होता है, वह कभी परिवर्तित नहीं होता, चाहे वह धर्मशास्त्र पढ़ ले या वेदाध्ययन कर ले, मनुष्य में अपने स्वभाव की ही प्रधानता होती है जोकि कभी भी किसी भी स्थिति में नहीं बदलता, गायों का दूध स्वभावतः ही मीठा होता है, वह कभी खट्ठा या कड़ुआ नहीं हो सकता, गाय चाहे जो कुछ खट्टा या कड़ुवा पदार्थ खाती रहे।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च—

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगा भरणप्रायो ज्ञानं भारः क्रियां विना ॥१८॥

तन्मया भद्रं न कृतं यदत्र मारात्मके विश्वासः कृतः। तथा चोक्तम्—

किञ्च—और भी—

अवशेति-अन्वय—अवशेन्द्रियचित्तानाम् क्रिया हस्तिस्नानम् इव (निष्फला भवति) क्रियां विना ज्ञानम् दुर्भगाभरणप्रायः भारः (भवति)।

शब्दार्थ—अवशेन्द्रियचित्तानाम्=जिनकी वाह्य श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ एवं चित्त अर्थात् अन्तःकरण वश में नहीं होता अर्थात् जो अजितेन्द्रिय होते हैं, क्रियां=संध्योपासनादि नित्य एवं व्रत यज्ञादि नैमित्तिक क्रिया, हस्तिस्नानम् इव=हाथी के स्नान के समान (हाथी का स्वभाव होता है कि वह सरोवर आदि में स्नान करके भी पुनः फिर अपने ऊपर धूलि डाल देता है, इस प्रकार उसका स्नान करना निष्फल ही होता है, क्रियां विना=नित्यनैमित्तिक सत्क्रिया के विना, ज्ञानम्=धर्मशास्त्रादि के अध्ययन से उत्पन्न ज्ञान, दुर्भगाभरणप्रायः=दुर्भगा=पतिसौभाग्यरहिता अर्थात् बिधवा के आभरण-आभूषण के समान, भारः=वोझ-जैसे विधवा स्त्री यदि आभूषण धारण करती है तो वे उसकी शोभा को न वढ़ा कर केवल उसके लिए भार स्वरूप ही होते हैं।

अनुवाद—अजितेन्द्रिय पुरुषों की समस्त नित्य नैमित्तिक क्रिया हस्तिस्नान के समान निष्फल होती है, सदाचारण के बिना शास्त्राध्ययन जन्य ज्ञान, विधवा स्त्री के आभूषण धारण के समान केवल भारस्वरूप ही होता है।

तात्पर्य यह कि शास्त्रानुकूल आचरण के विना शास्त्राध्ययन जन्य ज्ञान केवल भाररूप एवं निष्फल ही होता है।

तदिति—तो मैंने अच्छा नहीं किया जो कि इस हिंसक जीव पर विश्वास किया, और जैसा कि कहा गया है—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

नदीनां शस्त्र पाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥१६॥

अपरञ्च—

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः ।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ॥२०॥

अन्यच्च—

नदीनामिति—नदीनाम् शस्त्रपाणीनाम् नखिनाम् तथा शृङ्गिणाम् विश्वासः नैव कर्तव्यः, स्त्रीषु राजकलेषु च (नैव विश्वा ाः कार्यः) ।

शब्दार्थ—नदीनाम्=नदियों का, शस्त्रपाणीनाम्=हाथ में शस्त्र धारण किये हुए लोगों का, नखिनाम्=नख धारियों का, तथा शृङ्गिणाम्=सींग धारियों का, विश्वासो नैव कर्तव्यः=विश्वास नहीं करना चाहिये । स्त्रीषु =स्त्रियों पर (स्त्री जाति का यह स्वभाव होता है कि वह किसी वात को गुप्त नहीं रख पाती) राजकुलेषु च=राजवंश में उत्पन्न हुये लोगों पर ।

अनुवाद—नदियों, शस्त्रधारियों, नखधारियों एवं सींग धारी जीवों का, स्त्रियों और राजवंशोत्पन्न लोगों का भी विश्वास नहीं करना चाहिये ।

अपरञ्च—और भी—

सर्वस्येति-अन्वय—सर्वस्य स्वभावा हि परीक्ष्यन्ते इतरे गुणाः न (परीक्ष्यन्ते) हि सर्वान् गुणान् अतीत्य स्वभावः मूर्ध्नि वर्तते ।

शब्दार्थ—परीक्ष्यन्ते=परीक्षा की जाती है, इतरे=अन्य, अतीत्य= अतिक्रमण करके, मूर्ध्नि वर्तते=ऊपर रहता है ।

अनुवाद—सव प्राणि मात्र के स्वभावों के ही गुण दोषों की परीक्षा की जाती है, उनके अन्य दान धर्मादि गुणों की नहीं, क्योंकि उक्त सभी गुणों का अतिक्रमण कर स्वभाव ही सव के ऊपर रहता है ।

मानव में अन्य सभी गुण उसके स्वभाव के अनुकूल ही रहते हैं अतः मनुष्य का स्वभाव ही प्रधान होता है । अन्य गुण नहीं ।

अन्यच्च—और भी ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी,
दशशत करधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणासौ,
लिखितमिह ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ॥२१॥

एवं चिन्तयन्नेवासौ व्याघ्रेण धृत्वा व्यापादितः खादितश्च । अतोऽहं ब्रवीमि,-कङ्कणस्य तु लोभेन-इत्यादि । अत एव सर्वथा-विचारितं कर्म न कर्तव्यम् ।

स इति-अन्वय—स हि गगन विहारी कल्मषध्वंसकारी दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी असौ विधुः अपि विधियोगात् राहुणा ग्रस्यते, इह ललाटे लिखितम् प्रोज्झितुम् कः समर्थः (भवति)

शब्दार्थ—गगनविहारी=आकाश में विचरणशील, कल्मषध्वंसकारी अन्धकार रूप पाप का नष्ट करने वाला, दशशतकरधारी=सहस्र किरणों को धारण करने वाला, ज्योतिषां मध्यचारी=ग्रह नक्षत्रों के बीच चलने वाला, असौ विधुः अपि=यह चन्द्रमा भी विधियोगात्=भाग्यनियम वश, राहुणा-ग्रस्यते=राहु के द्वारा ग्रस्त कर लिया जाता है, (अतः) इह ललाटे लिखितम् =इस संसार में (जो कुछ) मस्तक पर लिखा है, अर्थात् जो भाग्य में है, प्रोज्झितुं कः समर्थः=उसे अतिक्रमण करने में कौन समर्थ है अर्थात् कोई नहीं ।

अनुवाद—आकाश में विचरण शील, अन्धकार रूप पाप का नाशक, सहस्र किरण धारी नक्षत्रों के बीच चलने वाला यह वह प्रसिद्ध चन्द्रमा भी विधिनियमवश राहु के द्वारा ग्रस्त कर लिया जाता है, (अतः सिद्ध है कि) इस संसार में जो कुछ भाग्य में लिखा है उसे कोई भी उल्लंघित नहीं कर सकता, वह अवश्य ही घटित होगा ।

एवमिति-शब्दार्थ-व्यापादितः—मार डाला गया, **अविचारितं कर्म न कर्त्तव्यम्**—विना सोचे समझे कोई काम न करना चाहिये ।

अनुवाद—इस प्रकार सोचते हुये ही वह (पथिक) व्याघ्र के द्वारा दबोच कर मार डाला गया और खा लिया गया । इसलिये मैं (चित्रग्रीव कपोतराज) कहता हूँ "कङ्कण के लोभ से—इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक के अनुसार"

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यतः

सुजीर्ण मन्नं सुविचक्षणः सुतः,
सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः ।
सुविचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ।।२२।।

एतद् वचनं श्रुत्वा कश्चित् कपोतः सदर्प माह—आः किमेव मुच्यते—

इसलिये (मनुष्य को) बिना भली भाँति समझे बूझे कोई काम न करना चाहिये। (अन्यथा उसका वैसा ही फल होता है) जैसा कि उस लोभी पथिक का हुआ था।

यतः=क्योंकि—

सुजीर्णमिति-अन्वय—सुजीर्णम् अन्नम्, सुविचक्षणः सुतः, सुशासिता स्त्री, सुसेवितः नृपतिः, सुचिन्त्य च उक्तम्, सुविचार्य च यत् कृतम्, (एतत् सर्वम्) सुदीर्घकालेऽपि विक्रियाम् न याति।

शब्दार्थ—सुजीर्णमन्नम्=भली भाँति पचा हुआ या पका हुआ अन्न, सुविचक्षणः सुतः=अच्छी प्रकार शिक्षित पुत्र सुशासिता स्त्री=अच्छी प्रकार शासित अनुशासित आज्ञापालिका भार्या, सुसेवितः नृपतिः=अच्छी प्रकार सेवित हुआ राजा, सुचिन्त्य च उक्तम्—अच्छी प्रकार सोच समझ कर कहा हुआ वचन, सुविचार्य यत् कृतम्, और अच्छी तरह सोच विचार कर किया गया जो काम। (ये सब) सुदीर्घकालेऽपि=लम्बे समय तक भी, विक्रियाम् न याति=विकार या विपरीतता को प्राप्त नहीं होता।

अनुवाद—भली भाँति पचा हुआ अन्न, अच्छी प्रकार शिक्षित पुत्र, अच्छे ढंग से अनुशासित भार्या, सुसेवित राजा, अच्छी प्रकार सोच समझकर कथित वचन एवं सोच विचार कर किया गया कर्म (यह सब) एक बड़े लम्बे समय तक भी विकार को प्राप्त नहीं होते।

एतदिति—यह वचन सुनकर किसी कबूतर ने बड़े गर्व पूर्वक कहा—ओह, इस प्रकार क्यों कहते हो—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

वृद्धस्य वचनं ग्राह्य मापत्काले ह्युपस्थिते ।
सर्वत्रैवं विचारे च भोजनेऽप्य प्रवर्तनम् ॥२३॥

यतः—

शङ्काभिः सर्वमाक्रान्त मन्नं पानं च भूतले ।
प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या जीवितव्यं कथं नु वा ॥२४॥

वृद्धस्येति-अन्वय—हि आपत्काले उपस्थिते वृद्धस्य वचनम् ग्राह्यम्, एवं सर्वत्र विचारे च, भोजने अपि अप्रवर्तनम् (भविष्यति)

शब्दार्थ—हि=क्योंकि, आपत्काले उपस्थिते=आपत्ति के समय के उपस्थित होने पर, वृद्धस्य वचनं ग्राह्यम्=वृद्ध का वचन ग्रहण करने योग्य होता है अर्थात् आपत्ति काल में ही वृद्ध वचन मानना चाहिये, सर्वत्र एवं विचारे च=और सर्वत्र इस प्रकार विचार करने पर, भोजनेऽपि अप्रवर्तनम्=भोजन में भी प्रवृत्ति नहीं होगी। अर्थात् भोजन भी न मिल सकेगा।

अनुवाद—क्योंकि आपत्ति काल उपस्थित होने पर ही वृद्ध के वचन मानने चाहिये, सर्वत्र ऐसे विचार में तो भोजन में भी प्रवृति न होगी। (क्योंकि संसार की प्रत्येक वस्तु में प्रवृत्ति के पहले सन्देह तो रहता ही है, भोजन में भी सन्देह तो होगा ही, यदि इस प्रकार सर्वत्र सन्देह दृष्टि रखी जायेगी तब तो भोजन भी न मिल सकेगा।

शङ्काभिरिति-अन्वय—भूतले शङ्काभिः अन्नं पानं च सर्वम् आक्रान्तम्, कुत्र प्रवृत्तिः कर्तव्या, कथं नु वा जीवितव्यम्।

शब्दार्थ—भूतले=पृथिवी पर, शङ्काभिः=सन्देहों के द्वारा, अन्नम् पानञ्च सर्वम्=सभी प्रकार के भोज्य एवं पेय पदार्थ, आक्रान्तम्=व्याप्त हैं। (इस स्थिति में) प्रवृतिः कुत्र कर्तव्या=कहाँ प्रयत्न या प्रवेश करना चाहिये, कथं नु वा जीवितव्यम्=अथवा किस प्रकार से जीवित रहना चाहिये।

अनुवाद—पृथ्वी पर सभी प्रकार के भोज्य एवं पेय पदार्थ सन्देहों से व्याप्त हैं, (ऐसी स्थिति में) कहां प्रवेश करना चाहिये और किस प्रकार जीवित रहना चाहिये।

संसार का कोई खाने पीने योग्य पदार्थ सन्देह से रहित नहीं है, जब तक

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तथा चोक्तम् -

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ।।२५।।

एतच्चछ्रुत्वा तण्डुलकणलोभेन नभोमण्डलादवतोर्य सर्वे कपोतास्तत्रोपविष्टाः ।

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो वहुश्रुताः ।
छेत्तारः संशयानाञ्च क्लिश्यन्ते लोभमोहिताः ।।२६।।

उपयोग न किया जाय तब तक उसमें इष्टानिष्ट का सन्देह बना ही रहेगा इस स्थिति में कहाँ प्रयत्न करना चाहिये । और यदि प्रयत्न न किया जाय तो जीवित भी किस प्रकार रहना चाहिये । तात्पर्य यह कि प्रत्येक पदार्थ को सर्वथा सन्देह दृष्टि से ही नहीं देखना चाहिये, नहीं तो मनुष्य कुछ भी न कर सकेगा और उसका जीवित रहना भी कठिन हो जायेगा ।

तथा चोक्तम्—और वैसा ही कहा भी है—

ईर्ष्यीति-अन्वय—ईर्ष्यी घृणी तु असन्तुष्टः क्रोधनः नित्यशंकितः परभाग्योपजीवी च एते षड् दुःखभागिनः (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—ईर्ष्यी=दूसरे के उत्कर्ष को न सहने वाला, घृणी=सब पर घृणा करने वाला, असन्तुष्टः=असन्तोषी, क्रोधनः=क्रोधी, नित्यशंकितः=नित्य ही सशंकित रहने वाला, परभाग्योपजीवी=दूसरे के भाग्य पर जीवित रहने वाला, एते=ये छः दुःखभाजिनः=सदा दुःखी रहते हैं ।

अनुवाद—दूसरे के उत्कर्ष को न सहने वाला घृणा या द्रोह रखने वाला असन्तोषी, कोधी, नित्यशंकित, दूसरे के भाग्य पर जीवित रहने वाला, ये छः सदा दुःखी रहते हैं ।

एतदिति—यह बात सुनकर सब कबूतर तण्डुलकण के लोभ से आकाश से उतर कर वहाँ अर्थात् तण्डुल कणों पर बैठ गये ।

सुमहान्तीति-अन्वय—सुमहान्ति शास्त्राणि धारयन्तः वहुश्रुताः, संशयाताम् छेत्तारः अपि लोभमोहिताः क्लिश्यन्ते ।

शब्दार्थ—सुमहान्ति=महान् अर्थ के प्रतिपादक, शास्त्राणि धारयन्तः=शास्त्रों को पढ़ने वाले, वहुश्रुताः=विपुलज्ञानसम्पन्न, संशयानाम् छेत्तारः

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्य च्च

लोभात् क्रोधः प्रभवति, लोभात् कामः प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥२७॥

अन्यच्च—

असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्न विपत्तिकाले, धियोऽपि पुसां मलिना भवन्ति ॥२८॥

अपि=संशयों के निराकरण करने वाले भी विद्वान्, लोभमोहिताः सन्तः, लोभ से मोहित या परवश होकर, क्लिश्यन्ते=दुःखी होते हैं।

अनुवाद—महान् अर्थ के प्रतिपादक, शास्त्रों को पढ़ने वाले विपुलज्ञान-सम्पन्न और विविध संशयों को दूर करने वाले भी विद्वान् लोग परवश होकर दुःखी होते हैं।

सुमहान् विद्वान् भी मनुष्य यदि लोभाकृष्ट होते हैं तो वे दुःख ही उठाते हैं, अतः लोभ, दुःख का प्रमुख कारण है।

अन्य च्च—और भी।

लोभादिति—अन्वय—लोभात् क्रोधः प्रभवति, लोभात् कामः प्रजायते, लोभात् मोहः च (तदनु) नाशः च (अतः) लोभः पापश्य कारणम् (भवति)।

शब्दार्थ—प्रभवति=उत्पन्न होता है, प्रजायते=उत्पन्न होता है, कामः=विषयों के उपभोग की इच्छा, मोहः=विचार शून्यता, नाशः=मृत्यु, परपस्य=सब अनिष्टों का।

अनुवाद—लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोंभ से विषयभोगों की इच्छा उत्पन्न होती है, लोभ से अविवेकता और (तदनु) मृत्यु (होती है) अतः लोभ सभी अनिष्टों का मूल कारण है।

लोभ से सभी प्रकार के अनिष्ट उत्पन्न होते हैं इसलिये लोभ ही सब पाप का कारण है, यहाँ तक मृत्यु का भी लोभ ही कारण होता है।

अन्यच्च—और भी—

असम्भवमिति-अन्वय—हेममृगस्य जन्म असम्भवम्, तथापि रामः मृगाय लुलुभे, प्रायः समापन्नविपत्तिकाले पुसाम् धियः अपि मलिनाः भवन्ति।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अनन्तरं ते सर्वे जालनिवद्धा वभूवु:, ततो यस्य वचनात् तत्राव-लम्बितास्तं सर्वे तिरस्कुर्वन्ति स्म । यत:—

न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये समं फलम् ।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते ।।२६।।

शब्दार्थ—हेममृगस्य=स्वर्ण मृग का, लुलुभे=लुब्ध हो गये, समापन्न-विपत्तिकाले=समीपस्थ विपत्तियों के समय, पुसाम=विद्वान पुरुषों या महा-पुरुषों की, धिय: अपि=वुद्धियाँ भी, मलिना:=विचार शून्य ।

अनुवाद—स्वर्ण मृग का होना असम्भव ही था तथापि राम उस मृग के लिये लुब्ध हो गये, प्राय: निकटवर्ती विपत्ति के समय महापुरुषों की भी बुद्धि कर्तव्या-कर्तव्य विचार शून्य हो जाती हैं ।

विपत्तिकाल उपस्थित होने पर महापुरुष भी विवेक रहित हो जाते हैं और विपत्ति में पड़ जाते हैं ।

अनन्तरमिति—इसके वाद सभी कवूतर जाल में बँध गये, तव जिसके कहने से वे सव वहाँ उतरे थे उसका सभी तिरस्कर करने लगे । यत:—क्योंकि—

नेति-अन्वय—गणस्य अग्रत: न गच्छेत्, कार्ये सिद्धे सति, फलम् समम् (भवति) यदि कार्यविपत्ति: स्यात्, तत्र मुखर: हन्यते ।

शब्दार्थ—गणस्य अग्रत: न गच्छेत्=समुदाय के आगे न चले अर्थात् किसी समुदाय का नेता न वनना चाहिये, सिद्धे कार्ये समं फलम्=यदि कार्य सिद्ध होता है तव तो सभी समान फलभागी वनते हैं, यदि कार्य विपत्ति: स्यात्=यदि काम विगड़ जाता है, तो, मुखर स्तत्र हन्यते=मुखिया या नेता ही वहाँ मारा जाता है ।

अनुवाद— कभी किसी समुदाय का नेता न बनना चाहिये, यदि कार्य सिद्ध होता है तव तो सभी समान फल प्राप्त करते हैं और यदि कार्य विगड़ता हैं तो वहाँ मुखिया ही मारा जाता है ।

अत: किसी कार्य में नेता न वनना चाहिये ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तस्य तिरस्कारं श्रुत्वा चित्रग्रीव उवाच—नायमस्य दोषः।
यतः—

आपदा मापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भी भवति वन्धने ॥३०॥

अन्यच्च —

स वन्धु र्यो विपन्नानामापदुद्धरणक्षमः।
न तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः ॥३१॥

तस्येति—उसके तिरस्कार को सुनकर चित्रग्रीव ने कहा—यह इसका दोष नहीं है, क्योंकि—

आपदामिति-अन्वय—हितः अपि आपतन्तीनाम् आपदाम् हेतुताम् आयाति, हि मातृजङ्घा वत्सस्य वन्धने स्तम्भी भवति।

शब्दार्थ—हितः अपि=हितैषी भी, अपतन्तीनाम् आपदाम्=अवश्य म्भावी आपत्तियों की, हेतुताम्=कारणता को, आयाति=प्राप्त होता है, अर्थात् आती हुई विपत्तियों का कारण वन जाता है। हि= क्योंकि, मातृ जङ्घा=अपनी हितैषिणी माता-गाय की जंघा भी, वत्सस्य वन्धने=वछड़े के बाँधने में, स्तम्भी भवति=खम्भा बन जाती है।

अनुवाद—(अपना) हितैषी भी, आती हुई विपत्तियों का कारण वन जाता है, क्योंकि अपनी माता गाय की जंघा भी, वछड़े के बांधने में खम्भा वन जाती है।

प्रायः लोग पहले कुछ दूध पिलाकार, गाय से अपने लिये दूध निकालने के लिये, उसके बछड़े को उस गाय के ही पैर में बांध देते हैं, इस बछड़े की माता का पैर ही उसके बँधने का कारण हो जाता है, इससे सिद्ध होता है कि विपत्ति के समय अपना परम हितैषी भी उस विपत्ति का कारण वन जाता है।

अन्यच्च—और भी—

स इति-अन्वय—यः विपन्नानाम् आपदुद्धरणक्षमः, स वन्धुः (भवति) भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः न तु।

शब्दार्थ—विपन्नानाम्=आपत्ति ग्रस्तजनों का, आपदुद्धरणक्षमः=आप-

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विपत्काले विस्मय एव कापुरुषलक्षणम्, तदत्र धैर्यमवलम्ब्य प्रतीकारश्चिन्त्यताम् । यतः

विपदि धैर्य मथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचि व्र्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्ध मिदं हि महात्मनाम् ।।३२।।

त्तियों से उद्धार करने में समर्थ, भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः=विपत्ति ग्रस्त जनों की रक्षा के कार्य में उलहना या तिरस्कार में कुशल ।

अनुवाद—जो, विपत्ति ग्रस्त जनों का, आपत्तियों से उद्धार करने में समर्थ होता हैं, वही बन्धु होता है, (किन्तु जो) विपत्ति ग्रस्तजनों की रक्षा के काम में उलहना या बाधा डालने में कुशल होता है, वह बन्धु नहीं होता ।

आपत्तियों से बचाने वाला ही सच्चा बन्धु होता है, किन्तु वह बन्धु नहीं होता जो कि विपत्तियों में पड़े लोगों की रक्षा के लिये जो कोई उपाय भी किया जा रहा है उसमें दूसरों का तिरस्कार करे अथवा दूसरों को उलहना देने में अपनी कुशलता दिखलाये, वस्तुतः ऐसा व्यक्ति शत्रु ही होता हैं, बन्धु नहीं ।

विपदिति—आपत्तिकाल में विस्मय करना या व्याकुल होना कायर पुरुषों का चिह्न है । तो इस विषय में धैर्य धारण कर (विपत्ति से बचने का) उपाय सोचिये । क्योंकि—

विपदीति-अन्वय—विपदि धैर्यम्, अथ अभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः, यशसि च अभिरुचिः, श्रुतौ व्यसनम्, इदम् हि महात्मनाम् प्रकृतिसिद्धम् (भवति) ।

शब्दार्थ—विपदि धैर्यम्=विपत्ति में धैर्य रखना, अथ अभ्युदये क्षमा= और सम्पत्ति लाभ में क्षमाशील रहना, सदसि वाक्पटुता=सभा में बोलने की चतुरता, युद्धि विक्रमः=युद्ध में पराक्रम दिखलाना, यशसि च अभिरुचिः =और (अपनी) कीर्ति में रुचि होना, श्रुतौ व्यसनम्=शास्त्राध्ययन में आसक्ति का होना, इदम् हि=निश्चयतः इन सब बातों का होना, महात्मनाम् प्रकृतिसिद्धम्=महापुरुषों में स्वभावतः सिद्ध होता है, अर्थात् उनमें ये उक्त गुण जन्मजात होते हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च भीरुत्वम् ।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ।।३३।।

अन्य च्च—

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ।।३४।।

अनुवाद—विपत्ति में धैर्य रखना, सम्पत्ति लाभ में क्षमाशील रहना, सभा में बोलने की चतुरता का होना, संग्राम में पराक्रमशील होना, कीर्ति में अभिरुचि का होना और शास्त्राध्ययन में आसक्ति का होना, महापुरुषों में यह सब स्वभाव सिद्ध होता है, अर्थात् महापुरुषों में ये सब गुण अकृत्रिम अर्थात् जन्मजात होते हैं ।

संपदीति-अन्वय—सम्पदि यस्य हर्षः न (भवति) विपदि विषादः (न भवति) रणे च भीरुत्वम् (न भवति) तम् भुवनत्रयतिलकम् विरलम् सुतम् जननी जनयति ।

शब्दार्थ—संपदि=सम्पत्तिकाल में, यस्य हर्षः न भवति=जिसे हर्ष नहीं होता, विपदि विषादः (न भवति) विपत्ति काल में खेद नहीं होता, रणे भीरुत्वम् (न भवति) संग्राम में भय नहीं होता, तम् भुवनत्रयतिलकम् विरलम् सुतम्=ऐसे तीनों लोकों में श्रेष्ठ बिरले ही पुत्र को, जननी जनयति=माता उत्पन्न करती है ।

अनुवाद—सम्पत्तिकाल में जिसे हर्ष नहीं होता, विपत्तिकाल में जिसे खेद नहीं होता और संग्राम में जिसे डर नहीं होता ऐसे तीनों लोकों में श्रेष्ठ बिरले ही पुत्र को माता उत्पन्न करती है ।

अर्थात् ऐसा पुत्र होना दुर्लभ ही होता है ।

अन्यच्च=और भी—

षडिति-अन्वय—इह भूतिम् इच्छता पुरुषेण षड् दोषाः हातव्याः=निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधः आलस्यम् दीर्घशूत्रता ।

शब्दार्थ—इह=इस लोक में, भूतिम्=ऐश्वर्य को, इच्छता=चाहने वाले, पुरुषेण=पुरुष को, षड् दोषाः=छः दोष (जो कि नीचे वतलाये गये

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इदानीमपि एवं क्रियताम्-सर्वै रेकचित्तीभूय जाल मादाय उड्डी-यताम् । यतः—

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणै र्गुणत्व मापन्नै र्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ।।३५।।

हैं । हातव्याः=छोड़ देने चाहिये । निद्रा=नींद, तन्द्रा=निद्रा के समान क्लान्ति कार्यानुत्साह, दीर्घ सूत्रता=धीरे-धीरे देर में काम करना ।

अनुवाद—इस लोक में ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष को निम्नलिखित छः दोष छोड़ देने चाहिये । नींद, निद्रा के समान आलस्य में पड़े रहना, भय, क्रोध, आलस्य, धीरे-धीरे देर में काम करना ।

अर्थात् इन छः दोषों को छोड़ कर ही कोई व्यक्ति ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है ।

इदानीमिति=इस समय भी ऐसा करो सब लोग एक मन होकर जाल को लेकर उड़ जाओ । क्योंकि—

अल्पानामिति=अल्पानाम् अपि वस्तूनाम् संहतिः कार्यसाधिका (भवति) गुणत्वम् आपन्नैः तृणैः मत्तदन्तिनः वध्यन्ते ।

शब्दार्थ—अल्पाना मपि वस्तूनाम्=छोटी भी वस्तुओं का अर्थात् निर्बल एवं क्षुद्र भी लोगों का, संहतिः=समुदाय, एकत्रीकरण, एक साथ मिल जाना, कार्यसाधिका, काम सिद्ध करने वाला, गुणत्वम् आपन्नैः=गुणत्वम्=रज्जुभाव-रस्सी के रूप को, आपन्नैः=प्राप्त हुये, तृणैः=निर्बल तृण घासों के द्वारा, मत्तदन्तिनः=मतवाले हाथी, वध्यन्ते=बांध लिये जाते हैं ।

अनुवाद—निर्बल और क्षूद्र भी वहुत सी वस्तुयें मिलकर कार्य साधिका वन जाती हैं (जैसे) रस्सी के रूप को प्राप्त हुये निर्बल तृणों के द्वारा मतवाले हाथी बाँध लिये जाते हैं ।

बड़े-बड़े रस्सों से, जो कि बहुत से निर्बल तृणों से मिला कर बनाये जाते हैं, मतवाले गजराज बाँध लिये जाते हैं, इससे सिद्ध है कि निर्बल और तुच्छ पदार्थ एकत्रित होकर बड़े से बड़ा कार्य सिद्ध कर सकते हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

संहतिः श्रेयसी पुसां स्वकुलै रल्पकैरपि ।
तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ।।३६।।

इति विचिन्त्य पक्षिणः सर्वे जाल मादाय उत्पतिताः । अनन्तरं च व्याधः सुदूराज्जालापहारकांस्ता नवलोक्य पश्चाद् धावितोऽचिन्तयत् ।

संहतास्तु हरन्त्येते मम जालं विहङ्गमाः ।
यदा तु निपतिष्यन्ति वशमेष्यन्ति मे तदा ।।३७।।

संहतिरिति-अन्वय—पुसाम् अल्पकैः अपि एव कुलैः सह संहतिः श्रेयसी (भवति) तुषेण अपि परित्यक्ताः तण्डुलाः न प्ररोहन्ति ।

शब्दार्थ—पुंसाम्=मनुष्यों को, अल्पकैः अपि स्वकुलैः सह=अपने निर्बल और छोटे से भी कुटुम्बी जनों के साथ, संहतिः=मेल रखना, श्रेयसी=कल्याणकारी होता है । तुषेण=छिलके या भूसी से भी, परित्यक्ताः=रहित, तण्डुलाः=चावल, न प्ररोहन्ति=नहीं उगते हैं ।

अनुवाद—मनुष्यों के लिये, अपने निर्बल और छोटे से छोटे भी कुटुम्वियों से मेल रखना कल्याण कर होता है, क्योंकि ऊपर के छिलके से रहित भी धान नहीं उगते ।

यदि धानों के ऊपर का छिलका हटा दिया जाय तो बोने पर वे नहीं उगेंगे । अतः स्पष्ट है कि अपने छोटे से छोटे भी कुटुम्बी को नहीं छोड़ना चाहिये, अपितु उससे मिलकर ही कार्य सिद्ध करना चाहिये ।

इतीति—यह सोच कर सभी पक्षी जाल ले कर उड़ गये । और इसके बाद बहेलिया, दूर से ही, जाल का अपहरण करने वाले उन (कबूतरों को) देख कर पीछे दौड़ा और सोचा ।

संहता इति-अन्वय—संहता तु एते विहङ्गमाः मम जालम् हरन्ति, यदा तु निपतिष्यन्ति, तदा मे वशम् एष्यन्ति । (अन्य पुस्तकों में 'निपतिष्यन्ति के स्थान पर 'विवदिष्यन्ति' भी पाठ मिलता है, वहाँ इसका अर्थ है कि जब ये आपस में वाद विवाद करेंगे अर्थात् लड़ेंगे । 'निपतिष्यन्ति का अर्थ' है (गिरेंगे) ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ततस्तेषु चक्षुर्विषयाक्रान्तेषु पक्षिषु स व्याधो निवृत्तः। अथ लुब्धक निवृत्तं दृष्ट्वा कपोता ऊचुः—'स्वामिन्। किमिदानीं कर्तुमुचितम्। चित्रग्रीव उवाच -

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः ।।३८।।

शब्दार्थ—संहताः=एकत्रित हुये, एते विहङ्मा=ये पक्षी, वशम् एष्यन्ति =वश में हो जायेंगे।

अनुवाद—एकत्रित हुये पक्षी मेरे जाल को हरण कर रहे हैं (किन्तु) जब ये गिरेंगे तो मेरे वश में आ जायेंगे।

पक्षियों का स्वभाव होता है कि जब वे समूह में होते है तो आपस में वाद विवाद करते हैं और लड़ते हैं फलतः वे भूमि पर गिर पड़ते हैं, व्याघ को इनके स्वभाव से यही आशा थी।

तत इति—चक्षुर्विषयाक्रान्तेषु=चक्षुर्विषय=दृष्टि क्षेत्र अतिक्रान्त= बाहर निकल जाना अर्थात् दृष्टिपथ से ओझल या दूर हो जाना।

तब उन पक्षियों के दृष्टिपथ से ओझल हो जाने पर बहलिया लौट गया। इसके बाद बहेलियो को लौटा हुआ देखकर कबूतरों ने कहा—हे स्वामी! अब क्या करना उचित है चित्रग्रीव ने कहा—

मातेति-अन्वय—माता, मित्रम्, पिता च इति त्रितयम् स्वभावात् हितम्, अन्ये कार्यकारणतः हितबुद्धयः भवन्ति।

शब्दार्थ—त्रितयम्-तीन, हितम्=हितकारी, कार्यकारणतः कार्य कारण रूप स्वार्थवश। हितबुद्धयः=हितैषी।

अनुवाद—माता मित्र तथा पिता ये तीन तो स्वभावतः ही हितकारी होते हैं अर्थात् निःस्वार्थ भाव से ही हित करते हैं, (किन्तु) और दूसरे लोग तो कार्य-कारण रूप स्वार्थवश ही हितैषी बनते हैं।

माता पिता और मित्र के अतिरिक्त शेष सम्बन्धी केवल स्वार्थवश ही हितैषी बनते हैं।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तन्मे मित्रं हिरण्यको नाम मूषिकराजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति, सोऽस्माकं पाशांश्छेत्स्यति, इत्यालोच्य सर्वे हिरण्यक विवरसमीप गताः, हिरण्यकश्च सर्वदा अपायशंकया शतद्वारं विवरं कृत्वा निवसति।

ततो हिरण्यकः कपोताऽवपातभयाच्चकितः तूष्णीं स्थितः। चित्तग्रीव उवाच—सखे हिरण्यक! कथमस्मान्न संभाषसे। ततो हिरण्यक स्तद्वचनं प्रत्यभिज्ञाय ससम्भ्रमं वहि निःसृत्य अब्रवीत्—आः—पुण्यवानस्मि, प्रियसुहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः।

यस्य मित्रेण सम्भाषा यस्य मित्रेण संस्थितिः।
यस्य मित्रेण सलाप स्ततो नास्तीह पुण्यवान्॥३९॥

तदिति-शब्दार्थ—छेत्स्यति=काट देगा। आलोच्य=समझ कर। विवर=विल, अपायशंकया—अनिष्ट की आशंका मे। शतद्वारम्=सौ दरवाजों वाला।

अनुवाद—तो मेरा मित्र हिरण्यक नामक चूहों का राजा, गण्डकी नदी के किनारे पर चित्र वन में रहता है। वह हम लोगों के बँधन काट देगा। ऐसा समझ कर सभी हिरण्यक के विल के पास गये, और हिरण्यक सदा अनिष्ट की आशंका से सौ द्वारों वाला विल वनाकर रहता था।

तत इति-शब्दार्थ—कपोतावपातभयात्=कबूतरों के उतरने के भय से। चकितः=विस्मित होकर। तूष्णीं स्थितः=चुप चाप वैठ गया था। संभाषसे बात चीत करते। प्रत्यभिज्ञाय=पहचान कर। ससंभ्रमस्=शीघ्रता पूर्वक।

अनुवाद—तव हिरण्यक कबूतरों के उतरने के भय से विस्मित होकर चुप चाप वैठ गया था। चित्रग्रीव ने कहा—मित्र हिरण्यक! हम लोगों से क्यों वात चीत नहीं करते। हिरण्यक ने उसके कथन को पहचान कर शीघ्रतापूर्वक वाहर निकल कर कहा—अहह, मैं भाग्यवान् पुण्यात्मा हूँ, मेरा प्रियमित्र चित्रग्रीव आया है।

यस्येति-अन्वय—यस्थ मित्रेण संभाषा, यस्य मित्रेण संस्थितिः। यस्य मित्रेण संलापः (भवति) इह ततः पुण्यवान् नास्ति।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथ पाशबद्धांश्चैतान् दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं स्थित्वा उवाच—सखे ! किमेतत् ? चित्रग्रीव उवाच—सखे, अस्माकं प्राक्तनजन्मकर्मणः फलमेतत् ।

> यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च,
> यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म ।
> तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च,
> तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति ।।४०।।

शब्दार्थ—संभाषा—सम्भाषण-वार्तालाप, संस्थितिः=एकत्र वास—साथ-साथ रहना । संलापः= परस्पर विश्वस्त वार्तालाप ।' इह=इस लोक में । ततः= ऐसे व्यक्ति से बढ़कर अन्य कोई ।

अनुवाद—जिस व्यक्ति की अपने मित्र के साथ बात-चीत होती है, जिसकी अपने मित्र के साथ एकत्र संस्थिति होती है अर्थात् जिसका अपने मित्र के साथ सहवास रहता है तथा जिस व्यक्ति की अपने मित्र के साथ परस्पर विश्वास पूर्वक बातचीत होती है, ऐसे व्यक्ति से बढ़कर इस लोक में कोई दूसरा पुण्यात्मा नहीं होता ।

अथेति-शब्दार्थ—पाशबद्धान् च एतान्=और जाल में बँधे हुए इन कबूतरों को । सविस्मयः क्षणं स्थित्वा=आश्चर्य पूर्वक थोड़ी देर तक ठहर कर । प्राक्तनजन्मकर्मणः=पूर्व जन्म के कर्म का ।

अनुवाद—और इसके बाद, जाल में बँधे हुए इन कबूतरों को देखकर क्षणमात्र विस्मय पूर्वक रुक कर, कहा—मित्र ! यह क्या है ? चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! हमारे पूर्व जन्म के कर्म का यह फल है ।

यस्माच्चेति-अन्वय—यस्मात् च येन च यथा च यदा च यत् च यावत् च यत्र च शुभाशुभम् आत्मकर्म (भवति) तस्मात् च तेन च तथा च तदा च तत् च तावत् च तत्र च विधातृवशात् उपैति ।

शब्दार्थ—यस्मात् =जिससे, यावत्=जितना, शुभाशुभम् आत्मकर्म =अच्छा बुरा अपने द्वारा किया गया कर्म, विधातृवशात्=भाग्यवश । उपैति=प्राप्त होता है ।

अनुवाद—जिस कारण से और जिस साधन से, जिस प्रकार से और जिस समय में जो जैसा, और जितना तथा जिस स्थल पर, अच्छा या बुरा

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च ।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम् ॥४१॥

एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य बन्धनं छेत्तुं सत्वरमुपसर्पति, तत्र चित्रग्रीव उवाच—मित्र ! मा मैवं कुरु, प्रथममस्मदाश्रिता नामेतेषां तावत्पाशांश्छिन्धि, तदा मम पाशांश्छेत्स्यसि, हिरण्यकोऽप्याह—अहमल्पशक्तिः, दन्ताश्च मे कोमलाः । तदेतेषां पाशांश्छेत्तुं कथं समर्थः भवामि । तद् यावन्मे दन्ता न त्रुट्यन्ति तावत्तव पाशान् छिनद्मि । तदनन्तर मेतेषामपि बन्धनं यावच्छक्यं छेत्स्यामि । चित्रग्रीव उवाच—अस्त्वेवम्, तथापि यथाशक्त्येतेषां बन्धनं खण्डय, हिरण्यकेनोक्तम्—आत्मपरित्यागेन यदाश्रितानां परिरक्षणं तन्न नीतिविदां सम्मतम् ।

अपना कर्म होता है, उस कारण से, और उस साधन से, उसी प्रकार तथा उसी समय में, वह वैसा और उतना तथा उसी स्थल पर भाग्यवश प्राप्त होता है ।

रोगेति-अन्वय—देहिनाम् आत्मापराधवृक्षाणाम् रोगशोकपरीताप बन्धनव्यसनानि च एतानि फलानि (सन्ति) ।

शब्दार्थ—देहिनाम्=देहधारियों, जीवों के, आत्मापराधवृक्षाणाम् (आत्मनः अपराधाः, ते एव वृक्षाः तेषाम्) अपने द्वारा किये गये दुष्कर्म रूपी वृक्षों के, रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि=(रोगाः—शारीरिक-व्याधयः, शोकाः मानसिक चिन्ताश्च, परीतापाः विविधावेदनाश्च, बन्धनम् च पाशादिनियन्त्रणादिकं च, व्यसनानि विपत्तयश्च इति रोगशोकपरीतापबन्धन-व्यसनानि (इतरेतर द्वन्द्वः) शारीरिक व्याधि मानसिक चिन्तायें, विविध पीडायें, बन्धन और विपत्तियाँ, एतानि फलानि=ये फल ।

अनुवाद—प्राण धारियों के आत्मकृत दुष्कर्मरूपी वृक्षों के, रोग शोक वेदना बन्धन और विपत्तियाँ, ये फल होते हैं । अर्थात् जो लोग दुष्कर्म करते हैं उन्हें अपने कर्मों के फल स्वरूप आधि व्याधि पीड़ा बन्धन दुःख आदि फल प्राप्त होते हैं ।

एतदिति-शब्दार्थ—छेत्तुम्=काटने के लिए, सत्वरम्=शीघ्र ही, उपसर्पति=पास जाता है, मा मैवं कुरु=नहीं, ऐसा मत करो, अस्मदाश्रि-

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥४२॥

तानाम् = हमारे आश्रितों के, प्रथमं तावत् = पहले तो, पाशांश्छिन्धि = पाशों को काटो, छेत्स्यसि = काटोगे, यावत् न त्रुट्यन्ति = जब तक नहीं टूटते हैं, छिनद्मि = काट देता हूँ, यावच्छक्यम् = यथाशक्ति, अस्त्वेवम् = भले ही ऐसा हो, परिरक्षणम् = रक्षा करना, नीतिविदाम् = नीतिज्ञजनों को, सम्मतम् = मान्य ।

अनुवाद—यह सुनकर हिरण्यक चित्रग्रीव का बन्धन काटने के लिए शीघ्र ही पास जाता है । चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! नहीं, ऐसा मत करो, पहले तो हमारे इन आश्रितों के वन्धन काटो, तब बाद में मेरे बन्धन को काटोगे । हिरण्यक ने भी कहा— मैं अल्पशक्ति वाला हूँ, और मेरे दाँत भी कोमल हैं । तो इनका बन्धन काटने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ । इसलिये जब तक मेरे दाँत नहीं टूटते हैं, तब तक तुम्हारे वन्धनों को काटे देता हूँ, बाद में इनका भी बन्धन यथाशक्ति काट दूँगा । चित्रग्रीव ने कहा—भले ही ऐसा हो, तथापि (पहले) यथाशक्ति इनका बन्धन काटो, हिरण्यक ने कहा—अपने को छोड़कर जो अपने आश्रितों की रक्षा करना है, वह नीतिज्ञ जनों को मान्य नहीं है । यतः—क्योंकि—

आपदिति-अन्वय—आपदर्थे धनम् रक्षेत्, धनैः अपि दारान् रक्षेत्, दारैः अपि धनैः अपि आत्मानम् सततम् रक्षेत् ।

शब्दार्थ—आपदर्थे – आपत्तियों के निवारण के लिये, धनम् रक्षेत् = धन को सुरक्षित रखना चाहिए, धनैः अपि = धन आदि सर्वस्व देकर भी, दारान् = पत्नी को, धनैः दारैः अपि = धन और पत्नी को भी छोड़ कर, आत्मान सततं रक्षेत् = अपनी सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिए ।

अनुवाद—दुर्भिक्ष आदि आपत्तियों के निवारणार्थ धन को अर्जित एवं सुरक्षित करना चाहिए, (किन्तु) धन का त्याग कर पत्नी की रक्षा करनी चाहिए, (परन्तु) धन और पत्नी का भी मोह छोड़कर अपनी सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिए । अर्थात् धन और पत्नी से भी बढ़कर आत्मरक्षा है ।

'दार' पत्नीवाचक दार शब्द पुल्लिङ्ग और नित्य बहुवचनान्त होता है । अतः दारान् का अर्थ है—पत्नी को ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च —

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः ।
तन्निघ्नता किं न हतं रक्षता किन्न रक्षितम् ॥४३॥

चित्रग्रीव उवाच—सखे ! नीतिस्तावदीदृश्येव, किन्त्वहमस्मादाश्रितानां दुःखं सोढुं सर्वथासमर्थः । तेनेदं ब्रवीमि । यतः—

अन्यच्च—और भी—

धर्मेति-अन्वय—प्राणाः धर्मार्थकाममोक्षाणाम् संस्थितिहेतवः (सन्ति) तान् निघ्नता किम् न हतम्, रक्षता च किम् न रक्षितम् ।

शब्दार्थ—धर्मार्थकाममोक्षाणाम्=धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की, संस्थितिहेतवः=रक्षा के साधन, प्राणाः=अपने प्राण ही, तान् निघ्नता=उन प्राणों को अर्थात् अपने जीवन को,नष्ट करने वाले प्राणी द्वारा, किम्-न हतम्=क्या नष्ट नहीं किया गया अर्थात् सब कुछ नष्ट कर दिया गया, रक्षता च=और इनकी रक्षा करने वाले मानव के द्वारा, किम् न रक्षितम्=क्या रक्षित नहीं किया गया अर्थात् सब कुछ रक्षित कर लिया गया ।

अनुवाद—अपने प्राण ही, धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों की रक्षा के साधन होते हैं, अर्थात् जीवित प्राणी ही इस पुरुषार्थों की रक्षा कर सकता है मृतक के द्वारा इनका पालन नहीं हो सकता । इन प्राणों को नष्ट करने वाला जीव क्या नहीं नष्ट कर देता और रक्षा करने वाला क्या नहीं रक्षित कर लेता ? अर्थात् अपने जीवन की रक्षा करने वाला प्राणी अन्य सब पदार्थों की भी रक्षा करने में समर्थ होता है, किन्तु इन प्राणों का स्वयं विनाशक बनकर वह किसी की भी रक्षा नहीं कर सकता, अतः आत्मरक्षा अत्यावश्यक एवं प्रमुख कर्तव्य है ।

चित्रग्रीव—इति—चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! नीति तो वस्तुतः ऐसी ही है । किन्तु मैं अपने आश्रितों के दुःख को सहने में सर्वथा असमर्थ हूँ, इसलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ । क्योंकि—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमित्तं वरं त्यागो विनाशे नियते सति ॥४४॥

अयमपरश्चासाधारणो हेतुः—

जातिद्रव्यगुणानाञ्च साम्यमेषां मया सह ।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रूहि कदा किं तद् भविष्यति ॥४५॥

धनानीति-अन्वय—प्राज्ञः परार्थे धनानि जीवितम् च एव उत्सृजेत्, विनाशे नियते सति सन्निमित्ते त्यागः वरम् ।

शब्दार्थ—प्राज्ञः=बुद्धिमान्, जीवितम्=जीवन, परार्थे=दूसरे के लिये, उत्सृजेत्=त्याग दे, विनाशे नियते सति=विनाश के निश्चित होने पर, सन्निमित्ते=उत्तम कारण अर्थात् सत्कार्य की सिद्धि में ।

अनुवाद—बुद्धिमान् मनुष्य को अपने धन तथा जीवन को भी परकार्य सिद्धि में त्याग देना चाहिए, जब कि धन का विनाश और जीवन का भी मरण निश्चित ही है, तब सत्कार्य के साधन में इनका त्याग देना ही श्रेष्ठ है ।

अयमिति—यह (एक) दूसरा भी (इसका) प्रमुख (असाधारण) कारण है—

जातीति—मया सह एषाम् जातिद्रव्यगुणानाम् च साम्यम् (अस्ति) तद् ब्रूहि, मत्प्रभुत्वम् किं कदा भविष्यति ?

शब्दार्थ—जातिद्रव्यगुणानाम् च साम्यम्=जाति—कपोत जाति, द्रव्य—चञ्चु पंख आदि रूप सम्पत्ति, गुण—उड्डयन सहानुभूति दया उपकार आदि की समानता । अर्थात् मेरे साथ इन कबूतरों की जाति द्रव्य और गुणों की दृष्टि से तो समानता ही है । तद् ब्रूहि=तो बताओ, मत्प्रभुत्व फलम् =मेरी प्रभुता—स्वामित्व या आधिपत्य का फल, किं कदा भविष्यति क्या और कब होगा ।

अनुवाद—जाति द्रव्य और गुणों की दृष्टि से तो मेरे साथ इन सभी कबूतरों की समानता ही है, तो बताओ, इन पर मेरी प्रभुता का फल क्या और कब होगा । अर्थात् जाति आदि की दृष्टि से समान होते हुए भी जो मैं इनका राजा हूँ, इन पर मेरा आधिपत्य है, तो फिर इस मेरे राजा

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च—

विना वर्तन मेवैते न त्यजन्ति ममान्तिकम् ।
तन्मे प्राणव्ययेनापि जीवयैतान्ममाश्रितान् ॥४६॥

किञ्च—

मांसमूत्रपुरीषास्थिपूरितेऽत्र कलेवरे ।
विनश्वरे विहायास्थां यशः पालय मित्र मे ॥४७॥

होने का और क्या फल होगा, यदि मैं अपने से पहले इनकी रक्षा न कर सका तो फिर इन पर मेरी प्रभुता का फल ही और क्या होगा, राजा का कर्तव्य तो अपनी प्रजा की रक्षा करना ही है यदि अपने को बचाने के प्रयास में मैं इनकी रक्षा न कर सका तो मेरा राजा होना कब और कैसे चरितार्थ होगा ?

अन्यच्च—और भी—

विनेति—एते वर्तनम् विना एव मम अन्तिकम् न त्यजन्ति । तद् मे प्राणव्ययेन अपि एतान् मम आश्रितान् जीवय ।

शब्दार्थ—वर्तनम्=वेतन, अन्तिकम्=समीपता, तद्=इसलिये, प्राणव्ययेनापि=प्राणविनियम अथवा प्राण देकर भी, एतान् मम आश्रितान् =इन मेरे आश्रितों को, जीवय=जीवित करो ।

अनुवाद—ये (सब) कबूतर बिना वेतन के ही मेरी समीपता नहीं छोड़ते हैं, इसलिये मेरे प्राण देकर भी इन मेरे आश्रित कबूतरों को जीवित करो ।

किञ्च—और भी—

मांसेति—मित्र ! मांसमूत्रपुरीषास्थिपूरिते विनश्वरे अत्र कलेवरे आस्थाम् विहाय, मे यशः पालय ।

शब्दार्थ—मांसमूत्रपुरीषास्थिपूरिते=(मासं च मूत्रं च पुरीषं च अस्थि च तैः पूरितं तस्मिन्) मांस मूत्र मल और हड्डियों से भरे हुए । विनश्वरे अत्र कलेवरे=विनाशशील इस शरीर पर, आस्थाम्=ममता अथवा आदर को, विहाय=छोड़कर, मे यशः पालय=मेरे यश की रक्षा करो ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपरञ्च पश्य—

यदि नित्य मनित्येन निर्मलं मलवाहिना ।
यशः कायेन लभ्येत तन्न लब्धं भवेन्नु किम् ॥४८॥

यतः—

शरीरस्य गुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥४९॥

अनुवाद—हे मित्र ! मांस मूत्र मल और हड्डियों से परिपूरित तथा विनाशशील इस (मेरे) शरीर पर ममता को छोड़कर, मेरे यश की रक्षा करो। अर्थात् शरीर विनाशशील है, इसका नष्ट होना तो अनिवार्य है, आज नहीं, तो कल नष्ट ही होगा, किन्तु इस शरीर द्वारा अर्जित प्रजापालन रूप यश सदा रहने वाला है, अतः तुम मेरे इस अवश्य विनाशशाली शरीर पर ममता न करके मेरे स्थायी यश की रक्षा करो।

अन्यच्च पश्य=और भी देखो—

यदीति-अन्वय—यदि अनित्येन मलवाहिना कायेन नित्यम् निर्मलम् यशः लभ्येत, नु तत् किम् न लब्धं न भवेत् ।

शब्दार्थ-अनित्येन—विनाशशाली, मलवाहिना=मलमूत्रादि से परिपूर्ण अशुद्ध, कायेन=शरीर से, यशः लभ्येत=प्राप्त हो, तत् किम नु लब्धं न भवेत्=तो क्या प्राप्त हुआ न होगा।

अनुवाद—यदि अनित्य तथा मलमूत्रादि से पूरित शरीर से नित्य निर्मल यश प्राप्त हो सके तो क्या प्राप्त हुआ न हो, अर्थात् सब कुछ ही प्राप्त हुआ समझना चाहिये।

यतः—क्योंकि—

शरीरस्येति-अन्वय—शरीरस्य गुणानाम् च अन्तरम् अत्यन्तम् दूरम् (भवति) शरीरम् क्षणविध्वंसि (भवति) गुणाः (तु) कल्पान्तस्थायिनः (भवन्ति)।

शब्दार्थ—अन्तरम्=भेद, अत्यन्तं दूरम्=बहुत अधिक। क्षणविध्वंसि=क्षणमात्र में ही नष्ट हो जाने वाला, गुणाः=धर्म ज्ञान वैराग्य परोपकारादि सद्गुण, कल्पान्तस्थायिनः=महाप्रलय पर्यन्त रहने वाले।

अनुवाद—शरीर और दया विनय धर्म आदि गुणों में बहुत अधिक विभेद

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इत्याकर्ण्य हिरण्यकः प्रहृष्टमनाः पुलकितः सन् अब्रवीत्—साधु मित्र ! साधु, अनेनाश्रितवात्सल्येन त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते।' एव मुक्त्वा तेन सर्वेषां कपोतानां बन्धनानि छिन्नानि। ततो हिरण्यकः सर्वान् सादरं सम्पूज्य आह—सखे चित्रग्रीव ! सर्वथाऽत्र जालबन्धनविधौ दोष माशङ्क्य आत्मनि अवज्ञा न कर्तव्या।

यतः—

होता है, शरीर तो क्षणभङ्गुर, एक क्षण में ही नष्ट होने वाला होता है, परन्तु गुण, महाप्रलयपर्यन्त रहने वाले होते हैं।

मानवीय सद्गुणों की स्थिति चिरस्थायिनी होती है, पर मानव शरीर क्षणभंगुर होता है, अतः शरीर की अपेक्षा गुणों का विशेष महत्व है।

इति आकर्ण्येति-शब्दार्थ—आकर्ण्य=सुनकर, प्रहृष्टमनाः=प्रसन्न मन होकर, पुलकितः सन्=(हर्ष से) रोमाञ्चित होकर, साधु मित्र साधु =बहुत अच्छा, मित्र ! बहुत अच्छा, आश्रितवात्सल्येन=आश्रितों पर स्नेहभाव के कारण, त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वम्=तीनों लोकों की भी प्रभुता, त्वयि युज्यते=तुम्हारे विषय में उपयुक्त है, अर्थात् तुम में त्रैलोक्याधिपति की योग्यता है। छिन्नानि=काट दिये, आह=कहा, अत्र जालबन्धनविधौ—इस जाल में बँधने के कार्य के विषय में, आत्मनि अवज्ञा=अपने पर घृणा।

अनुवाद—यह सुन कर हिरण्यक ने प्रसन्नमन तथा पुलकित होकर कहा-बहुत अच्छा, मित्र ! बहुत अच्छा, तुम्हारे इस आश्रितों पर स्नेह भाव से, तीनों लोकों की प्रभुता भी तुम्हारे लिये उचित है (अर्थात् जो तुमने अपने आश्रितों पर ऐसा स्नेह भाव दिखलाया है, इससे सिद्ध होता है कि तुम तीनों लोकों के राजा होने योग्य हो, ऐसा कह कर उसने सब कबूतरों के बन्धनों को काट दिया—तब हिरण्यक ने सब का आदरपूर्वक पूजन करके कहा—मित्र चित्रग्रीव। सब प्रकार से इस जाल बन्धन के कार्य में अपने किसी दोष की आशंका करके तुम्हें अपने पर घृणा न करनी चाहिये। अर्थात् इस जाल-बन्धन से तुम्हें आत्मग्लानि न होनी चाहिये।

यतः—क्योंकि—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

योऽधिकाद् योजनशतात् पश्यतीहामिषं खगः।
स एव प्राप्तकालस्तु पाशबन्धं न पश्यति ॥५०॥

अपरञ्च —

शशिदिवाकरयो र्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥५१॥

अन्यच्च —

य इति-अन्वयः—इह यः खगः योजनशतात् अधिकात् आमिषम् पश्यति। स एव प्राप्तकालः तु पाशबन्धं न पश्यति।

शब्दार्थ—इह=इस लोक में, यः खगः=जो श्येन आदि पक्षी, योजनशतात् अधिकात्=सौ से भी अधिक योजन की दूरी से भी, आमिषम्=माँस को, प्राप्तकालः=आसन्न मृत्यु, (मृत्यु जिसके निकट ही हो)।

अनुवाद—इस लोक में जो श्येन आदि पक्षी सौ से भी अधिक योजन की दूरी से मांस (अपने भक्ष्य पदार्थ) को देख लेता है, वही पक्षी आसन्न मृत्यु होने पर जाल बन्धन को नहीं देख पाता।

अपरञ्च—और भी—

शशीति अन्वय—शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनम्, गजभुजङ्गमयोः अपि बन्धनम् मतिमताम् दरिद्रताम् च विलोक्य अहो-विधिः बलवान् इति मे मतिः, (अस्ति)।

शब्दार्थ—शशिदिवाकरयोः=चन्द्र और सूर्य का, ग्रहपीडनम्=राहु के द्वारा ग्रस्त होना, गजभुजङ्गमयोः=गज और सर्प का, बन्धनम्=बाँधा या पकड़ा जाना, मतिमताम्=बुद्धिमानों की दरिद्रताम्=दरिद्रता दीनता निर्धनता को, विधिः बलवान्=भाग्य बलवान् होता है, इति मे मतिः=ऐसा मेरा निश्चय है।

अनुवाद—चन्द्र और सूर्य का राहु द्वारा ग्रसित होना, गज और सर्प का बाँधा जाना, और बुद्धिमानों की दरिद्रता को देख कर मेरी यह मान्यता है कि भाग्य ही बलवान् होता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

व्योमैकान्तविहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं
वध्यन्ते निपुणै रगाधसलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि ।
दुर्नीतं किमिहास्ति किं सुचरितं कः स्थानलाभे गुणः
कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि ।।५२।।

व्योमेति-अन्वय—व्योमैकान्तविहारिणः अपि विहगाः आपदं सम्प्राप्नुवन्ति, निपुणैः अगाधसलिलात् अपि समुद्रात् मत्स्याः वध्यन्ते, इह दुर्नीतं किम् अस्ति सुचरितम् च किम् अस्ति, स्थानलाभे (अपि) कः गुणः, हि व्यसनप्रसारितकरः कालः दूरात् अपि गृह्णाति ।

शब्दार्थ—व्योमैकान्तविहारिणः=आकाश के एक भाग में उड़ने वाले, विहगाः=पक्षी, आपदम्-सम्प्राप्नुवन्ति=आपत्ति को प्राप्त करते हैं । निपुणैः =चतुर जनों द्वारा, अगाधसलिलात् अपि समुद्रात्=अगाध जल वाले भी समुद्र से मत्स्याः=मछलियां, वध्यन्ते=पकड़ ली जाती हैं, दुर्नीतम्=असद् व्यवहार, सुचरितम्=सद् व्यवहार या सदाचरण, किम् इह अस्ति=इस लोक में क्या है, स्थान लाभे (अपि) कः गुणः=(उच्च) स्थान की प्राप्ति में भी क्या गुण है, हि=क्योंकि, व्यसनप्रसारितकरः कालः=विपत्ति के लिये हाथों को फैलाने वाला काल, दूरादपि गृह्णाति=दूर से भी पकड़ लेता है ।

अनुवाद—आकाश के एक भाग में (स्वच्छन्द) विचरण करने वाले भी पक्षी विपत्ति को प्राप्त होते हैं, चतुर जनों द्वारा अगाध जल वाले भी समुद्र से मछलियाँ पकड़ ली जाती हैं, इस संसार में क्या सदव्यवहार या सदाचरण है और क्या दुर्व्यवहार या असदाचरण है, अर्थात् दुर्नय अथवा सुनय का इस संसार में कोई महत्व नहीं है, और न (उच्च) साधन प्राप्त करने में भी कोई गुण है, क्योंकि विपत्ति के लिये अपने हाथों को फैलाने वाला काल (सबको) दूर से भी पकड़ लेता है ।

तात्पर्य यह कि काल की दृष्टि में, गुणों का या उच्च स्थान का, सुरक्षा या सद्व्यवहार का कोई महत्व नहीं है, वह समय आने पर सब पर ही एक सा प्रभाव डालता है, उसके प्रभाव से कोई बच नहीं सकता ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इति प्रतिवोध्य आतिथ्यं कृत्वा आलिङ्ग्य च तेन संप्रेषित-श्चित्रग्रीवोऽपि सपरिवारो यथेष्टदेशान् ययौ, हिरण्यकोऽपि स्वविवरं प्रविष्टः ।

अतः—

यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च ।
पश्य मूषिकमित्रेण कपोता मुक्तवन्धनाः ॥५३॥

इति प्रतिवोध्येति—शब्दार्थ—प्रतिवोध्य=समझा बुझा कर, आतिथ्यं कृत्वा=अतिथि सत्कार करके, आलिङ्ग्य च=आलिङ्गन करके, संप्रेषितः=भेजा गया या विदा किया गया, यथेष्टदेशान्=स्वाभिलषित स्थान को, ययौ=चला गया ।

अनुवाद—इस प्रकार समझा बुझा कर अतिथि सत्कार कर तथा आलिङ्गन कर उसके द्वारा विदा किया गया चित्रग्रीव सपरिवार अपने इष्ट स्थान को चला गया और हिरण्यक भी अपने विल में चला गया ।
अतः=इसलिये—

यानीति-अन्वय—यानि कानि च शतानि मित्राणि कर्तव्यानि, पश्य मूषिकमित्रेण कपोताः मुक्तवन्धनाः (जाताः) ।

शब्दार्थ—यानि कानि च=जो कोई भी हो, शतानि मित्राणि कर्तव्यानि=(मनुष्य को) सैकड़ों मित्र बनाने चाहिए, (अर्थात् छोटे, वड़े, धनी निर्धन जैसे भी हों वैसे सैकड़ों मित्र बना लेने चाहिये, न जाने कब किस प्रकार के मित्र से काम बन जाये, अतः मित्र बनाने में संख्या पर विशेष ध्यान देना चाहिये, केवल उनके गुणों पर ही नहीं, कभी-कभी तुच्छ मित्र से भी काम बन जाता है । पश्य=देखो, मूषिकमित्रेण=मित्र चूहे से, कपोताः मुक्तवन्धनाः=कबूतर बन्धन से छूट गये थे ।

अनुवाद—जैसे कैसे भी (मनुष्य को) सैकड़ों मित्र बना लेने चाहिये, देखो, चूहे मित्र से, कबूतर बन्धन से मुक्त हो गये थे । अर्थात् आकाश चारी कबूतर स्थलचारी चूहे से मित्रता कर लाभान्वित हुए थे अतः सबको अनेक मित्र बनाने चाहिये ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथ लघुपतनकनामा काकः सर्ववृत्तान्तदर्शी साश्चर्यं मिदमाह—'अहो हिरण्यक ! श्लाघ्योऽसि। अतोऽहमपि त्वया सह मैत्री मिच्छामि, अतो मां मैत्र्येणानुगृहीतु मर्हसि।'

एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकोऽपि विवराभ्यन्तरादाह—कस्त्वम् ?

स ब्रूते—लघुपतनक नामा वायसोऽहम्।

हिरण्यको विहस्याह—का त्वया सह (मम) मैत्री ?

यतः—

यद्येन युज्यते लोके बुधस्तत्तेन योजयेत्।
अहमन्नं भवान् भोक्ता कथं प्रीति र्भविष्यति ॥५४॥

अपरञ्च—

अथेति-शब्दार्थ-सर्ववृत्तान्तदर्शी—सब वृतान्त देखने वाला (अर्थात्-जिसने हिरण्यक और कबूतरों की इस घटना को देख लिया था) मैत्र्येण=मित्रभाव से, अनुगृहीतुमर्हसि=कृपा करने योग्य हो। विवराभ्यन्तरात्=बिल के भीतर से।

अनुवाद—इसके बाद लघुपतनक नामक कौवे ने, जिसने कि यह सब वृत्तान्त देखा था, आश्चर्य पूर्वक यह कहा—ओह हिरण्यक ! (तुम) प्रशंसनीय हो। इसलिए मैं भी तुमसे मित्रता चाहता हूँ, अतः तुम मुझे मित्रभाव से अनुगृहीत करने योग्य हो।

यह सुनकर हिरण्यक ने भी बिल के भीतर से कहा—तुम कौन हो।

उसने कहा—मैं लघुपतनक नामक कौवा हूँ।

हिरण्यक ने हंस कर कहा—तुम्हारे साथ मेरी मित्रता कैसी ?

यतः—क्योंकि—

यदिति-अन्वय—लोके येन यत् युज्यते बुधः तत् तेन (सह योजयेत्। अहम् अन्नम् भवान् भोक्ता, प्रीतिः कथम् भविष्यति।

अनुवाद—संसार में जो मित्रता आदि, जिसके साथ उचित हो, बुद्धिमान को उसे उसके साथ ही जोड़ना चाहिये, मैं तो अन्न हूँ अर्थात् भक्ष्य हूँ और आप भोक्ता भक्षक हैं, (हम दोनों में) प्रीति कैसे हो सकेगी।

अपरञ्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भक्ष्यभक्षकयोः प्रीति र्विपत्ते रेव कारणम् ।
शृगालात् पाशवद्धोऽसौ मृगःका केन रक्षितः ॥५५॥

वायसोऽब्रवीत्—कथमेतत् ? हिरण्यकः कथयति—

मृग-शृगाल कथा

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नामारण्यानी । तस्यां चिरान्महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः । स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्ट-पुष्टाङ्गः केनचिच्छृगालेनावलोकितः ।

तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत्—आः ! कथमेतन्मांसं सुललितं

भक्ष्येति-अन्वयः— भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः विपत्तेः एव कारणम् (भवति) शृगालात् पाशवद्धः असौ मृगः काकेन रक्षितः ।

अनुवाद—भक्ष्य और भक्षक में मैत्री का होना विपत्ति का ही कारण (होता है) शृगाल के कारण पाश में बँधा हुआ वह मृग कौवे के द्वारा रक्षित हुआ था ।

वायसोऽब्रवीत्=कौवे ने कहा—**कथमेतत्**=यह कैसे ? **हिरण्यक** कहता है—

अस्तीति-शब्दार्थ—अरण्यानी=अटवी, वहुत वड़ा जंगल=वन, (अरण्य (वन) शब्द से महत्त्वार्थ में ङीष् और आनुक् का आगम होकर अरण्यानी शब्द वनता है, अतः इसका अर्थ है—महारण्य ।) चिरात्=वहुत समय से, महता स्नेहेन=वड़े प्रेम से, भ्राम्यन्=विचरण करता हुआ, हृष्ट पुष्टाङ्गः= =स्वस्थ एवं परिपुष्ट शरीर वाला हृष्टानि-प्रहृष्टानि स्वस्थानि पुष्टानि-सम्पुष्टानि च अङ्गानि यस्य स) केनचित् शृगालेन=किसी गीदड़ के द्वारा, आः-अहा-ओह, सुललितम्=सुमधुर-स्वादिष्ट, एतन्मासम्-इस मृग के मांस

अनुवाद—मगध प्रदेश में चम्पकवती नामक वहुत बड़ा जंगल है। उसमें वहुत समय से वड़े प्रेम से मृग और कौवा रहते हैं। और वह मृग अपनी इच्छानुसार घूमता हुआ, हृष्ट पुष्ट शरीर वाला किसी गीदड़ के द्वारा देखा गया ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भक्षयामि । भवतु । विश्वासं तावदुत्पादयामि ।' इत्यालोच्य उपसृत्याब्रवीत्—मित्र ! कुशलं ते ?

मृगेणोक्तम्- कस्त्वम् ?

स ब्रूते—क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकोऽहम्, अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवन्निवसामि। इदानीं त्वां मित्रमासाद्य, पुनः सबन्धु र्जीवलोके प्रविष्टोऽस्मि। अधुना तवानुचरेण मया सर्वथा भवितव्यम्।

मृगेणोक्तम्—'एवमस्तु'।

ततः पश्चादस्तङ्गते सवितरि भगवति मरीचिमालिनि, तौ मृगस्यवासभूमिं गतौ। चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति। तौ दृष्ट्वा काकाऽवदत्—सखे चित्राङ्ग ! कोऽयं द्वितीयः। मृगो ब्रूते—जम्बुकोऽयम्, अस्मत्सख्य मिच्छन्नागतः।

को, कथं भक्षयामि=कैसे खा पाऊँ, भवतु=अच्छा, होगा-देखता हूँ, विश्वासं ताव दुत्पादयानि=तो पहले विश्वास उत्पन्न करूँ, इत्यालोच्य=ऐसा निश्चय कर, उपसृत्य=पास जाकर, जम्बुकः=गीदड़, आसाद्य=प्राप्त कर, एवमस्तु=ऐसा ही हो।

उसे देखकर गीदड़ ने सोचा—ओह, इसका सुमधुर मांस कैसे खा पाऊँ, अच्छा—देखता हूँ, तो पहले विश्वास उत्पन्न करूँ, ऐसा निश्चय कर, पास जाकर बोला—मित्र ! तुम्हारी कुशल तो है ?

मृग ने कहा—तुम कौन हो। उसने कहा—क्षुद्रबुद्धि नामक मैं गीदड़ हूँ, इस जंगल में बन्धुहीन होकर मृतक के समान रहता हूँ। इस समय तुमको मित्र पाकर पुनः बन्धुसहित जीवलोक में प्रविष्ट हुआ हूँ (अर्थात् तुम्हें मित्र पाकर पुनः मैं इस संसार में सबन्धु हो गया हूँ) अब मैं सब प्रकार से आपका अनुचर होकर रहूँगा अर्थात् सदा आपके साथ ही अनुगामी बनकर रहूँगा।

मृग ने कहा—ऐसा ही हो, अर्थात् तुम मेरे अनुचर बनकर रहो।

तत इति शब्दार्थ—मरीचिमालिनि=किरणमाली, भगवति सवितरि=भगवान् सूर्य के, अस्तङ्गते=अस्त हो जाने पर, ततः पश्चात्=इसके बाद,

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

काको ब्रूते—मित्र ! अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता । तन्न भद्रमाचरितम् । तथा चोक्तम्—

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः ॥५६॥

वासभूमिम्=निवास स्थान, चिरमित्रम्=पुराना मित्र. कोऽयं द्वितीयः=यह दूसरा कौन है ? अस्मत् सख्यम् इच्छन् आगतः=हम लोगों से मित्रता चाहता हुआ, आया है । अकस्मात् आगन्तुना सह=अचानक आये हुए (व्यक्ति) के साथ, न युक्ता=उचित नहीं । तत् (त्वया) भद्रम् न आचरितम्=तो (तुमने) अच्छा नहीं किया । तथा च उक्तम्=जैसा कि कहा गया है—

अनुवाद—तब इसके बाद किरणमाली भगवान् सूर्य के अस्त हो जाने पर, वे दोनों मृग के निवास स्थान पर गये । (वहाँ) चम्पक वृक्ष की शाखा पर सुबुद्धि नाम का, मृग का पुराना मित्र कौवा रहता था, उन दोनों को देख कर कौवे ने कहा—यह दूसरा कौन है ? मृग ने कहा—यह गीदड़ है । हम लोगों से मित्रता चाहता हुआ आया है । कौवे ने कहा—मित्र ! अचानक आये हुये के साथ मित्रता उचित नहीं, अतः तुमने (यह) अच्छा नहीं किया । जैसा कि कहा गया है—

अज्ञातेति-अन्वय – अज्ञातकुलशीलस्य कस्यचित् वासः न देयः, हि मार्जारस्य दोषेण जरद्गवः गृध्रः हतः ।

शब्दार्थ—अज्ञातकुलशीलस्य=जिसके कुल तथा स्वभाव का पता न हो, (ऐसे) कस्यचित्=किसी को (भी) वासः न देयः=निवास नहीं देना चाहिये, हि-यतः=क्योंकि, मार्जारस्य=विल्ली के, दोषेण=अपराध से, जरद्गवः=दृष्टिहीन=अन्धा (जरत्यौ जीर्णे गावौ दृशौ यस्य सः जरद्गवः) दृष्टिहीन वृद्ध, गृध्रः=गीध पक्षी—अर्थात् जरद्गव नाम का वृद्ध गीध, हतः=मारा गया था ।

अनुवाद—जिसका कुल और स्वभाव अज्ञात हो (ऐसे) किसी को (अपने पास) निवास न देना चाहिये, क्योंकि विल्ली (विडाल) के अपराध से जरद्गव गीध मारा गया था ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तावाहतुः—कथमेतत् ? काकः कथयति—

जरद्गवविडाल कथा

अस्ति भागीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान् पर्कटी वृक्षः। तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकाद् गलितनखनयनो जरद्गवनामा गृध्रः प्रतिवसति। अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात् किञ्चिद् उद्धृत्य तस्मै ददति, तेनासौ जीवति, तेषां शावकानां रक्षाञ्च करोति।

अथ कदाचिद् दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्रागतः। ततस्तमायान्तं दृष्ट्वा पक्षिशावकै भयार्तैः कोलाहलः कृतः। तच्छ्रुत्वा जरद्गवेनोक्तम्—कोऽयमायाति।

तावाहतुः—**तौ आहतुः**=उन दोनों ने कहा—यह कैसे कौवा कहता है—

अस्तीति-शब्दार्थ—गृध्रकूटनाम्नि पर्वते=गृध्रकूट नामक पर्वत पर, पर्कटीवृक्षः=पाकड़ का वृक्ष, कोटरे=खोखले में, दैवदुर्विपाकात्=दुर्भाग्यवश, गलितनखनयनः=जिसके नख और नेत्र गल चुके थे अर्थात् जो नखविहीन और दृष्टिहीन हो चुका था, तज्जीवनाय=उसके जीवन के लिये, तद्वृक्षवासिनः=उस वृक्ष पर रहने वाले, स्वाहारात्=अपने खाने से, किंश्चित् उद्धृत्य=कुछ निकाल कर।

शावकानाम्—बच्चों की।

मार्जारः—विडाल—विल्ली, **आयान्तम्**=आता हुआ, **भयार्तः**—भयभीत हुये, **कोलाहलः**=चीखना शोर करना। **कोऽयमायाति**=यह कौन आ रहा है।

अनुवाद—गंगा के किनारे गृध्रकूट नामक पर्वत पर (एक) विशाल पाकड़ वृक्ष था, उसके खोखले में दुर्भाग्यवश गले हुये नख और नेत्रों वाला जरदगव नामक गृध्र रहता था, इसके वाद, उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षी, इसके जीवन के लिये कृपा पूर्वक, अपने आहार से कुछ निकाल कर उसे दे देते थे, जिससे यह जीता था और उनके बच्चों की रक्षा करता था।

इसके वाद किसी समय दीर्घकर्ण नाम का विडाल पक्षियों के वच्चों को खाने के लिये वहाँ आया। तव उसको आता हुआ देख कर पक्षियों के बच्चों ने भयभीत होकर कोलाहल किया। यह सुनकर जरद्गव ने कहा—यह कौन आ रहा है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

दीर्घकर्णो गृध्र मवलोक्य सभयमाह—हा हतोऽस्मि, यतोऽयं मां व्यापादयिष्यति ।

अथवा

तावद् भयस्य भेत्तव्यं यावद् भयमनागतम् ।
आगतन्तु भयं वीक्ष्य नरःकुर्याद् यथोचितम् ॥५७॥

अधुनास्यातिसंनिधाने पलायितुमक्षमः । तद्यथा भवितव्यम् तथा भवतु तावत् विश्वास मुत्पाद्यास्य समीपमुपगच्छामि—इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत्—आर्य ! त्वामभिवन्दे, गृध्रोऽवदत्—कस्त्वम् ? सोऽवदत्—मार्जारोऽहम् । गृध्रो ब्रूते—दूरमपसर, नो चेद्धन्तव्योऽसि मया । मार्जारोऽवदत्—श्रूयतां तावदस्मद्वचनम् । ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्यः, यतः ।

हा हतोऽस्मि=हाय, मैं मारा गया, **व्यापादयिष्यति**=मार डालेगा ।

दीर्घकर्ण ने गृध्र को देख कर भय पूर्वक कहा—हाय, मैं मारा गया, क्योंकि यह मुझे मार डालेगा ।

अथवा—

तावदिति-अन्वय—यावद् भयम् अनागतम्, तावद् भयस्य भेत्तव्यम्, आगतं भयं तु वीक्ष्य नरः यथोचितम् कुर्यात् ।

शब्दार्थ—भेतव्यम्=डरना चाहिये, अनागतम्=न आया हुआ वीक्ष्य=देख कर, यथोचितम्=जैसा उचित हो ।

अनुवाद—जब तक भय नहीं आया है, तब तक भय से डरना चाहिये, किन्तु भय को आया हुआ देख कर मनुष्य को जैसा उचित हो वैसा करना चाहिये । अर्थात् भय का कोई न कोई उपाय करना चाहिये डरना न चाहिये ।

अधुनेति-शब्दार्थ—अधुना अस्य अतिसंनिधाने=अब इसके अति समीप (होने पर) पलायितुम् अक्षमः=भागने के लिये असमर्थ (हूँ) तद् यथा भवितव्यम्=तो जैसा (भी) होना हो, तथा भवतु=वैसा हो । उत्पाद्य=उत्पन्न करके, इति आलोच्य उपसृत्य=ऐसा सोचकर पास जाकर, आर्य !

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

जातिमात्रेण किं कश्चिद्धन्यते पूज्यते क्वचित् ।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत् ।।५८।।

गृध्रो ब्रूते—ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि ? सोऽवदत्—अहमत्र गंगातीरे नित्यस्नायी, निरामिषाशी, ब्रह्मचारी, चान्द्रायण व्रत माचरंस्तिष्ठामि । यूयं धर्मज्ञाः प्रेमविश्वासभूमयः । इति पक्षिणः सर्वे

पूज्य ! अभिवन्दे=नमस्कार करता हूँ । दूरम् अपसर=दूर हट जाओ, नो चेत् मया हन्तव्यः असि=यदि नहीं, (तो तुम) मेरे द्वारा मारे जाओगे । श्रूयताम्=सुनिये, अस्मद्वचनम्=मेरा कथन, वध्यः=मारने योग्य, यतः=क्योंकि

अनुवाद—अत्र इसके अति समीप में (होने से) भागने के लिये असमर्थ हूँ । तो फिर जो होना हो वह हो, पहले विश्वास उत्पन्न कर (इसके) पास जाता हूँ. ऐसा सोचकर समीप जाकर बोला—हे आर्य ! तुम्हें नमस्कार करता हूँ । गृध्र ने कहा—तुम कौन हो, उसने कहा—मैं विडाल हूँ, गृध्र ने कहा, दूर भाग जाओ, नहीं तो मेरे द्वारा मारे जाओगे । विडाल ने कहा—पहले हमारी बात सुनिये तब यदि मैं मारने योग्य हूँ, तो मार डालना, क्योंकि—

जातिमात्रेणेति-अन्वय—(लोकैः) क्वचित् कश्चित् जातिमात्रेण हन्यते पूज्यते किम् अथवा व्यवहारं परिज्ञायः वध्य पूज्यः भवेत ।

शब्दार्थ—क्वचित् कश्चित्=कहीं कोई, जाति मात्रेण=केवल अपनी जातिमात्र से, हन्यते पूज्यते किम्=मारा जाता और पूजा जाता है क्या । परिज्ञाय=जान कर, वध्यः पूज्यो भवेत्=मारने योग्य अथवा पूजने योग्य होता है ।

अनुवाद—क्या कहीं कोई, केवल अपनी जाति मात्र से ही, मारा जाता और पूजा जाता है ? अर्थात् नहीं, किसी की जातिमात्र ही मारने योग्य या पूजने योग्य नहीं होती, अपि तु, (उसके व्यवहार को देख कर) वह मारने योग्य अथवा पूजने योग्य होता है ।

गृध्र इति शब्दार्थ—ब्रूहि=कहो, किम् अर्थम् आगतः असि=किस लिये आये हो, नित्यस्नायी=नित्य स्नान करने वाला, निरामिषाशी=

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सर्वदा ममाग्रे प्रस्तुवन्ति, अतो भवद्भ्यो विद्यावयोवृद्धेभ्यो धर्मं श्रोतुमिहागतः। भवन्तश्चैतादृशा धर्मज्ञाः, यन्मामतिथिं हन्तुमुद्यताः। गृहस्थधर्मश्चैषः—

अरावप्युचितं कार्यं मातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥५९॥

आमिष=मांस, निरामिष=माँस रहित, आशी=खाने वाला अर्थात् मांस रहित पदार्थ खाने वाला, आचरन्=करता हुआ, प्रेमविश्वासभूमयः=प्रेम और विश्वास के पात्र, प्रस्तुवन्ति=प्रशंसा करते हैं, विद्यावयोवृद्धेभ्यः= विद्या और अवस्था में वृद्ध और श्रेष्ठ, इह आगतः=यहाँ आया हूँ, भवन्तः च एतादृशः=और आप लोग ऐसे, हन्तुम् उद्यताः=मारने को तैयार हैं, एषः गृहस्थ धर्मः च=और यह गृहस्थ धर्म है—

अनुवाद—गृध्र ने कहा—कहो, किस लिए आये हो, उसने कहा—मैं यहाँ गंगा के किनारे नित्य स्नान करने वाला, मांस रहित भोजन करने वाला, ब्रह्मचारी, चान्द्रायणव्रत करता हुआ रहता हूँ, "आप लोग धर्मज्ञाता (एवं) प्रेम और विश्वास के पात्र हैं" ऐसी सभी पक्षी सदा मेरे आगे प्रशंसा करते हैं, इसलिये विद्या तथा अवस्था में श्रेष्ठ आप लोगों से धर्म सुनने के लिए यहाँ आया हूँ, (किन्तु) आप लोग तो ऐसे धर्मज्ञ (हैं) कि मुझ अतिथि को मारने के लिये तैयार हैं—और यह गृहस्थधर्म है—

अराविति-अन्वय—अरौ अपि गृहम् आगते उचितम् आतिथ्यम् कार्यम्। द्रुमः छेत्तुः पार्श्वगताम् छायाम् न उपसंहरते।

शब्दार्थ—गृहम् आगते—घर आने पर, अरौ अपि=शत्रु के भी, उचितम् आतिथ्यम् कार्यम्=उचित अतिथि सत्कार करना चाहिए, द्रुमः= वृक्ष, छेत्तुः=काटने वाले के, पार्श्वगताम् छायाम्=पास में पड़ी हुई छाया को, न उपसंहरते=हटाता नहीं है।

अनुवाद—शत्रु के भी घर आने पर (उसका) उचित अतिथि सत्कार करना चाहिए, वृक्ष (अपने) काटने वाले व्यक्ति के (भी) पार्श्वगत छाया को नहीं हटाता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यदि वा धनं नास्ति तदा प्रीतिवचसाऽतिथिः पूज्य एव यतः—

तृणानि भूमि रुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥६०॥

अन्यच्च—

तात्पर्य है कि वृक्ष को काटने वाला व्यक्ति यद्यपि वृक्ष का शत्रु होता है, तथापि जब वह वृक्ष के पास जाकर उसे काटता है और उस पर वृक्ष की छाया पड़ती है और वह उस वृक्ष की छाया में खड़ा होकर ही उसे काटता है, फिर भी वृक्ष अपने पास आये हुए अपने शत्रु के ऊपर से अपनी छाया नहीं हटाता और इस प्रकार वह उसका अपने पास आने पर उचित सत्कार ही करता है। उदार एवं साधुजन शत्रु से भी द्वेष नहीं करते, अपितु वे उसकी भी सहायता करते हैं।

किञ्चेति—और भी, यदि धन नहीं है, तथापि प्रेमपूर्ण वचनों से अतिथि पूजनीय ही होता है।

यतः—क्योंकि—

अन्वय—तृणानि भूमिः उदकम् चतुर्थी सूनृता वाक् च एतानि अपि सताम् गेहे कदाचन च उच्छिद्यन्ते।

तृणानीति-शब्दार्थ—तृणानि=(विछाने और बैठने के लिये) घास फूस आदि, भूमिः=निवास स्थान, उदकम्=(पीने नहाने के लिए) जल, चतुर्थी सूनृता वाक्=(उक्त तीन पदार्थ) तथा चौथी सूनृता (प्रिय और सत्य) वचन, एतानि अपि=ये चार तो, सतां गेहे=सत्पुरुषों के घर में, कदाचन न उच्छिद्यन्ते=कभी भी कम नहीं होते अर्थात् ये चार चीजें तो सज्जनों के घर में अतिथियों के लिये सर्व सुलभ रहती हैं।

अनुवाद—(आस्तरण और बैठने के लिए) घास फूस, निवास के लिए स्थान, जल और चौथी वस्तु, प्रिय और सत्य वाणी, ये चार तो सज्जनों के घर में कभी भी कम नहीं होते अर्थात् सदा सुलभ रहते हैं।

अन्यच्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः ।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥६१॥

अपरञ्च—

निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ॥६२॥

अन्यच्च—

बाल इति-अन्वय—बालः वा यदि वा वृद्धः युवा वा गृहम् आगतः, तस्य पूजा विधातव्या, अभ्यागतः सर्वस्य गुरुः ।

शब्दार्थ—यदि वा=अथवा, गृहम् आगतः—(यदि निवासार्थ) घर में आया है, विधातव्या=करनी चाहिए, आभ्यागतः=अतिथि, सर्वस्य गुरुः= सबका पूज्य आदरपात्र ।

अनुवाद—बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक (जो कोई भी हो यदि अपने) घर आ गया है, तो उसकी पूजा करनी चाहिए (क्योंकि) अतिथि सबका पूज्य होता है ।

अपरञ्च च—और भी—

निर्गुणेष्वपीति-अन्वय—साधवः निर्गुणेषु अपि सत्वेषु दयाम् कुर्वन्ति । चन्द्रः चाण्डाल वेश्मनः ज्योत्स्नाम् नहि संहरते ।

शब्दार्थ—साधवः=सत्पुरुष. निर्गुणेषु अपि सत्वेषु=गुण हीन भी प्राणियों पर, चाण्डालवेश्मनः=चाण्डाल के घर से (भी), ज्योत्स्नाम्= चाँदिनी को, उपसंहरते=हटाता है ।

अनुवाद—सत्पुरुष, गुणहीन भी जीवों पर दया करते हैं, चन्द्रमा, चाण्डाल के घर से भी अपनी चाँदिनी को नहीं हटाता है ।

तात्पर्य यह कि, चाण्डाल के गुणहीन होने पर भी चन्द्रमा अपने प्रकाश को उसके घर से नहीं हटाता है अपितु वह गुणी अथवा निर्गुणी, सबको ही एक सा प्रकाश देता है, इसी प्रकार सज्जन सब पर ही समान भाव से दया करते हैं !

अन्यच्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अतिथि र्यस्य भग्नाशो, गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥६३॥

अन्यच्च —

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः ।
पूजनीयो यथायोग्यम् सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥६४॥

गृध्रो ब्रूते—'मार्जारो हि मांसरुचिः, पक्षिशावकाश्चात्र निवसन्ति, तेनाहमेवं ब्रवीमि ।'

अतिथिरिति-अन्वय—यस्य अतिथिः भग्नाशः (भूत्वा) गृहात् प्रतिनिवर्तते, स तस्मै दुष्कृतं दत्वा, पुण्यम् आदाय गच्छति ।

शब्दार्थ—भग्नाशः=निराश, प्रतिनिवर्तते=लौट जाता है, दुष्कृतम्=पाप ।

अनुवाद—जिसका अतिथि निराश होकर (गृहस्थ) के घर से लौट जाता है, वह अतिथि, उस (गृहस्थ) को (अपना) पाप देकर (उसके) पुण्य को लेकर चला जाता हैं । अर्थात् अतिथि के विमुख होकर लौट जाने पर गृहस्थ को पुण्य न मिल कर पाप ही मिलता, अतिथि को निराश करने वाला पाप का भागी होता है ।

अन्यच्च—और भी—

उत्तमस्यापीति-अन्वय—उत्तमस्य अपि वर्णस्य गृहम् आगतः नीचः अपि यथायोग्यम् पूजनीयः अतिथिः सर्वदेवमयः (भवति) ।

शब्दार्थ—उत्तमस्यापि वर्णस्य=उत्तम वर्ण । ब्राह्मण आदि जाति, के भी, गृहमागतः=घर में आया हुआ, यथायोग्यम्=यथोचित रूप से, सर्वदेवमयः=सब देवताओं का स्वरूप ।

अनवाद—उत्तम वर्ण (ब्राह्मण आदि जाति) के घर में आया हुआ नीच (चाण्डाल आदि नीच प्राणी) भी अतिथि ययोचित रूप से पूजनीय होता है (क्योंकि) अतिथि सब देवताओं का स्वरूप होता है ।

गृध्र इति-शब्दार्थ—मांसरुचिः—मांस खाने में रुचि रखने वाला, तेनाहमेवंब्रवीमि—इसलिये मैं ऐसा कहता हूँ. । वीतरागेण=विरक्त होकर, दुष्करम् कठिन, अध्यवसितम्=स्वीकार किया है । परस्परं विवदमानाम्=परस्पर

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तच्छ्रुत्वा मार्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति, ब्रूते च—मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्यवसितम्। परस्परं विवदमानानामपि शास्त्राणाम्—'अहिंसा परमो धर्म, इत्यत्रैकमत्यम्।

यत:—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दान महिंसा परमं तपः॥६५॥

वादविवाद (कलह) करने वाले अर्थात् एक दूसरे के विरुद्ध सिद्धान्त रखने वाले भी, इत्यत्रैकमत्यम्=इस सम्बन्ध में एक मत है। अर्थात् इसे सभी मानते हैं।

अनुवाद—गृध्र कहता है—कि विडाल चूकि मांस भक्षण में रुचि रखने वाला होता है, और पक्षियों के वच्चे यहाँ रहते हैं। इसीलिये मैं ऐसा कह रहा हूँ।

यह सुन कर विडाल भूमि का स्पर्श कर (अपने) कानों का स्पर्श करता है (अपने को पूर्णतः इस वात से दूर रहने का और अपने को सर्वथा निर्दोष प्रमाणित करने का यह एक ढंग होता है—भूमि का स्पर्श कर अपने कान पकड़ना, विडाल ने भी अपने को मांस-भक्षण से सर्वथा दूर सिद्ध करने के लिये ऐसा किया था। और कहताहै—मैंने धर्मशास्त्र को सुनकर विरक्त होकर इस परम कठिन चान्द्रायण व्रत को स्वीकार किया है। आपस में विरुद्ध सिद्धान्त रखते हुये भी सभी धर्मशास्त्रों का इस विषय में तो एकमत है ही—कि अहिंसा ही परम उत्कृष्ट धर्म है।

यत:—क्योंकि—

अहिंसेति-अन्वय—अहिंसा परमः धर्मः अहिंसा परः दमः, अहिंसा परमम् दानम् अहिंसा परमं तपः।

अनुवाद—अहिंसा (ही) सर्वोत्कृष्ट धर्म है, अहिंसा ही सव से उत्कृष्ट दम (इन्द्रिय निग्रह) है, अहिंसा ही उत्कृष्ट दान है, और अहिंसा ही सवसे बड़ा तप है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अहिंसा परमो यागस्त्वहिंसा परमं वलम् ।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं श्रुतम् ।।६६।।
सर्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्वसहाश्च ये ।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ।।६७।।
एक एव सुहृद्धर्मो, निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ।।६८।।

अहिंसेति-अन्वय—अहिंसा परमः यागः अहिंसा परमम् वलम् अहिंसा परमम् मित्रम्, अहिंसा परमम् श्रुतम् ।

अनुवाद—अहिंसा (मन, वचन तथा क्रिया) से भी किसी प्राणी की हिंसा न करना, कष्ट न पहुँचाना ही सवसे बड़ा यज्ञ है, अहिंसा ही सवसे वड़ा वल है, अहिंसा ही अपना परम मित्र अथवा सहायक है, और अहिंसा ही सवसे वड़ा श्रुत (उपदेश—धर्मशास्त्रादि का पढ़ना और तदनुकूल आचरण करना) है ।

सर्वेति-अन्वय—ये नराः सर्वहिंसानिवृत्ताः सर्वसहाः च, सर्वस्य आश्रय-भूताः च (सन्ति) ते नराः स्वर्गगामिनः (भवन्ति)

शब्दार्थ—सर्वहिंसानिवृत्ताः=सव प्रकार की हिंसा से दूर रहने वाले अर्थात् जो लोग प्राणिमात्र को भी, मन से, वचन से और काम से किसी भी प्रकार से दुःख नहीं पहुँचाते हैं। सर्वसहाः=सव कुछ सहन करने वाले, अर्थात् यदि कोई प्राणी, अकारण ही दुर्वचन भी कहता है, अपराध भी करता है, तो भी सहन कर लेने वाले, सर्वस्य आश्रयभूताः=सब प्राणियों को आश्रय-सहारा देने वाले अर्थात् सभी प्रकार के जीवों के दुःख में सहायक होने वाले तथा उन्हें आश्वासन, धैर्य एवं आश्रय देने वाले। स्वर्गगामिनः=स्वर्ग जाने वाले अर्थात् स्वर्ग जैसे उत्तम लोक को प्राप्त करने वाले होते हैं ।

अनुवाद—जो लोग सव प्रकार की हिंसा से रहित होते हैं तथा सव प्रकार की सहनशीलता रखने वाले होते हैं तथा जो सवको आश्रय देने वाले होते हैं, ऐसे लोग स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ।

एक इति-अन्वय—एकः धर्मः एव सुहृत् यः निधने अपि अनुयाति, अन्यत् सर्वम् तु शरीरेण समम् नाशम् गच्छति ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च

योऽत्ति यस्य यदा मांस मुभयोः पश्यतान्तरम् ।
एकस्य क्षणिका प्रीति रन्यः प्राणै विमुच्यते ॥६९॥
मर्तव्यमिति यद् दुःखं पुरुषस्योपजायते ।
शक्यते नानुमानेन परेण परिर्वाणतुम् ॥७०॥

शब्दार्थ—एकः धर्म एव=केवल एक धर्म ही, सुहृत्=सच्चा मित्र, निधने अपि=मरने पर भी, अनुयाति=पीछे चलता है, अन्यत् सर्वम् तु= और सब कुछ तो, अर्थात् शरीर आदि सभी अन्य पदार्थ, शरीरेण समम्= शरीर के साथ ही, नाशम् गच्छति—नष्ट हो जाता है ।

अनुवाद—केवल एक धर्म ही सच्चा मित्र होता है, जो कि मरने पर भी पीछे-पीछे चलता है, अन्य सब पदार्थ तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं ।

मरने पर भी साथ देने वाला केवल एक धर्म ही होता है, अन्य सब कुछ शरीर नाश के साथ ही नष्ट हो जाता है अतएव धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है ।

किञ्च—और भी—

य इति—यः यदा यस्य मांसम् अत्ति (तदा) उभयोः अन्तरम् पश्यत । एकस्य क्षणिका प्रीतिः, अन्यः प्राणैः विमुच्यते ।

शब्दार्थ—अत्ति=खाता है, उभयोः=दोनों का, पश्यत=तुम सब देखो, क्षणिका प्रीतिः=क्षणभर का आनन्द या स्वाद, अन्यः=दूसरा अर्थात् मरने वाला, प्राणैः विमुच्यते=प्राणों से मुक्त हो जाता है, अर्थात् मर जाता है ।

अनुवाद—जो कोई व्यक्ति, जब किसी दूसरे जीव का मांस खाता है तब (उन दोनों के बीच) भेद देखो—एक की तो अर्थात् जो मांस खाने वाला है उसकी तो क्षण भर के लिये प्रीति (आनन्द या स्वाद) होती है, पर अन्य अर्थात् वह जीव जिसका मांस खाया गया है, प्राणों से ही रहित हो जाता है, अर्थात् मर जाता है ।

मर्तव्यमिति-अन्वय—पुरुषस्य, 'मर्तव्यम् इति' यद् दुःखम् उपजायते, (तद्) परेण अनुमानेन परिर्वाणतुम् न शक्यते ।

शब्दार्थ—'मर्तव्यम् इति'='अब मुझे मरना ही है' यह सोचकर, पुरु-

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

श्रृणु-पुनः—

स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्य्यते।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः कुर्यात्पातकं महत् ॥७१॥

षस्य यद दुःखम् उपजायते=पुरुष को जो दुःख होता है, तद्=उस दुःख को, परेण=कोई दूसरा मनुष्य जो कि अभी जीवित है, अनुमानेन=केवल अपने अनुमान मात्र से, परिवर्णितुम् न शक्यते=वर्णन नहीं कर सकता।

अनुवाद—"अब मुझे मरना हीहैं" यह सोचकर मरने वाले मनुष्य को जो दुःख होता है, उस दुःख का कोई जीवित मनुष्य, केवल अपने अनुमान मात्र से वर्णन नहीं कर सकता। इसको तो भुक्तभोगी ही जान सकता है, अर्थात् मरने वाला ही, मरने के दुःख को जान सकता है, दूसरा व्यक्ति नहीं।

प्रस्तुत श्लोक की दूसरी पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार भी है "शक्यस्तेनानुमानेन, परोऽपि परिरक्षितुम्" अर्थात् "अब मुझे अवश्य ही मरना होगा" ऐसा सोच कर एक मनुष्य को जितना दुःख होता है, उतना ही दुःख दूसरे को भी होता है, अतः इस प्रकार का अनुमान कर मनुष्य को दूसरे की रक्षा करनी चाहिये।

तात्पर्य यह कि मरने से जितना और जैसा दुःख अब मुझे हो रहा है, वैसा ही दूसरे को भी होता होगा ऐसा अनुमान कर मनुष्य को अपनी ही तरह दूसरे की रक्षा करनी चाहिये।

श्रृण पुनः=और सुनो।

स्वच्छन्देति-अन्वय—स्वच्छन्दवनजातेन शाकेन अपि (यद् उदरम्) प्रपूर्य्यते, अस्य दग्धोदरस्य अर्थे कः महत् पातकम् कुर्यात्।

शब्दार्थ—स्वछन्दवनजातेन=स्वभावतः वन में उत्पन्न हुए अर्थात् सर्वदा सर्व सुलभ, शाकेन अपि=शाक के द्वारा भी, प्रपूय्यंते=भर लिया जाता है, अस्य दग्धोदरस्य अर्थे=इस पापी पेट के लिये, कः महत् पातकम् कुर्यात्=कौन हिंसारूप जघन्य पाप करे।

अनुवाद—स्वभावतः वन में उत्पन्न होने वाले (सर्व सुलभ) शाक से भी (जो पेट) भरा जा सकता है, (तो फिर) इस (ऐसे) पापी पेट के लिए, कौन मनुष्य हिंसा जैसा घोर पाप करेगा अर्थात् कोई नहीं।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

एवं विश्वास्य सा मार्जारस्तरु कोटरे स्थितः ।

ततो दिनेषु गच्छत्सु असौ पक्षिशावका नाक्रम्य कोटर मानीय प्रत्यहं खादति । येषामपत्यानि खादितानि तंः शोकार्तैं विलपद्भि रितस्ततो जिज्ञासा समारब्धा । तत्परिज्ञाय मार्जारः कोटरान्निःसृत्य वहिः पलायितः । पश्चात् पक्षिभि रितस्ततो निरुपयदिभस्तत्र तरुकोटरे शावकास्थीनि प्राप्तानि । अनन्तरम्—'अनेनैव जरद्-गवेनास्माकं शावकाः खादिताः' इति सर्वैः पक्षिभि र्निश्चित्य स गृध्रो व्यापादितः ।

अतोऽहं ब्रवीभि—'अज्ञातकुलशीलस्य' इत्यादि ।

हिंसा से उदरपूर्ति ही होती है, यह यदि शाक से भी हो सकती है तो फिर इसके लिये प्राणिहिंसा रूप जघन्य पाप नहीं किया जाना चाहिए ।

एवमिति—इस प्रकार विश्वास दिला कर वह विडाल वृक्ष के कोटर में रहने लगा ।

तत इति-शब्दार्थ—दिनेषु गच्छत्सु=कुछ दिन वीतने पर, आक्रम्य= पकड़ कर, प्रत्यहम्=प्रति दिन, शोकार्तः=शोक से व्याकुल होकर, विल-पद्भिः=विलाप करते हुए, इतस्ततः इधर उधर, जिज्ञासा समारब्धाः= जानना चाहा अर्थात् इधर उधर से पता लगाना आरम्भ किया । तत् परिज्ञाय=यह जानकर, निःसृत्य=निकल कर, वहिः पलायितः=वाहर भाग गया, इतस्ततो निरुपयद्भिः=इधर उधर पता लगाते हुए, अस्थीनि= हड्डियाँ, अनन्तरम्=इसके वाद, निश्चित्य=निश्चय करके, व्यापादितः= मार डाला ।

अनुवाद—तव कुछ दिनों के वीतने पर, यह विडाल पक्षियों के बच्चों को पकड़ कर, अपने खोखले में लाकर प्रतिदिन खाने लगा, जिनके वच्चे खा डाले गये थे, उन शोक से व्याकुल और इधर उधर देखते हुए (पक्षियों ने) तव पता लगाना आरम्भ किया । यह जानकर विडाल, खोखले से निकल कर वाहर भाग गया । इसके वाद पक्षियों ने इधर उधर पता लगाते हुए वहाँ वृक्ष के खोखले में वच्चों की हड्डियाँ प्राप्त कीं, इसके वाद "इस जरद्-गव ने ही हम लोगों के वच्चे खा डाले हैं" ऐसा सव पक्षियों ने निश्चय कर उस गृध्र को मार डाला ।

इसलिये मैं कहता हूँ—'अज्ञात कुल एवं अज्ञात स्वभाव वाले किसी को

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इत्याकर्ण्य स जम्बुकः सकोपमाह—मृगस्य प्रथमदर्शनदिने भवानप्यज्ञातकुलशील एव, तत्कथं भवता सहैतस्य स्नेहानुवृत्ति रुत्तरोत्तरं वर्द्धते ?

"यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि ।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ॥७२॥

अन्यच्च—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥७३॥

भी निवास नहीं देना चाहिए इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक को कौवे ने मृग से कहा—

इतीति-शब्दार्थ—सकोपम्=क्रोधपूर्वक, मृगस्य प्रथमदर्शनदिने=मृग के सर्व प्रथम मिलने के दिन, एतस्य=इस मृग की, स्नेहानुवृत्तिः=प्रेम व्यवहार उत्तरोत्तरं वर्द्धते=आगे-आगे दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है ।

अनुवाद—यह सुनकर उस गीदड़ ने क्रोधपूर्वक कहा—मृग के प्रथम मिलने के दिन आप भी तो अज्ञातकुलशील, ही (रहे होंगे) तो फिर किस प्रकार आपके साथ इसका प्रेम व्यवहार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है ।

यत्रेति-अन्वय—यत्र विद्वज्जनः न अस्ति, तत्र अल्प धीः अपि श्लाघ्यः, तिरस्तपादपे देशे एरण्डः अपि द्रुमायते ।

शब्दार्थ—यत्र=जहाँ पर, विद्वज्जनः=विद्वान् मनुष्य, अल्प धीः अपि =तुच्छ बुद्धि वाला भी, श्लाघ्यः=प्रशंसनीय होता है, निरस्तपादपे देशे= वृक्षों से विहीन देश में, एरण्डः अपि द्रुमायते=एरण्ड=अण्ड वृक्ष, अथवा रेंडी का पौधा, भी वृक्ष कहा जाता है ।

अनुवाद—जहाँ विद्वान् मनुष्य नहीं होता, वहाँ तुच्छ बुद्धि वाला भी व्यक्ति प्रशंसनीय होता है (जैसे) वृक्ष विहीन देश में एरण्ड भी वृक्ष समझा जाता है ।

अन्यच्च—और भी—

अयमिति—अयम् निजः परः वा इति लघुचेतसाम् गणना (भवति) उदारचरितानाम् तु वसुधा एव कुटुम्बकम् (भवति) ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यथाऽयं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि ।

मृगोऽब्रवीत्—किमनेनोत्तरोत्तरेण । सर्वै रेकत्र विस्रम्भालापैः सुखमनुभवद्भिः स्थीयताम् । यतः—

न कश्चित् कस्यचिन् मित्रं, न कश्चित्कस्य चिद्रिपुः ।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ॥७४॥

शब्दार्थ—अयम् निजः परः वा=यह अपना अथवा दूसरे का है, इति लघु-चेतसाम् गणना=यह तो तुच्छ मन वाले लोगों का विचार होता है, उदारचरितानाम् तु=उदार चरित्र वाले लोगों के लिये तो, वसुधा एव कुटुम्वकम्=सम्पूर्ण पृथिवी ही उनका कुटुम्व होती है ।

अनुवाद—यह अपना अथवा दूसरे का है, यह विचार तो तुच्छ मन वाले लोगों का होता है, उदार चरित वाले लोगों के लिये तो सम्पूर्ण पृथिवी ही उनका कुटुम्व होती है, अर्थात् उदारजन पृथिवी के सभी जीवों को अपना कुटुम्वी ही समझते हैं ।

इन दो श्लोकों द्वारा गीदड़ ने कौवे को मूर्ख एवं तुच्छ विचारों वाला बताने का प्रयास किया है ।

यथेति—जिस प्रकार यह मृग मेरा वन्धु है इसी प्रकार आप भी—

मृग इति-शब्दार्थ—अनेन उत्तरोत्तरेण किम्=इस उत्तर प्रत्युत्तर से क्या लाभ ! विस्रम्भालापैः=विश्वस्त बात चीत द्वारा, सुखमनुभवद्भिः=सुख का अनुभव करते हुए, स्थीयताम्=रहिये ।

अनुवाद—मृग ने कहा, इस उत्तर प्रत्युत्तर से क्या लाभ ? सभी लोग एक साथ, विश्वास पूर्वक बात चीत करते हुए और सुख का अनुभव करते हुए रहिये ।

नेति-अन्वय—कश्चित् कस्यचित् न मित्रम्, कश्चित् कस्यचित् न रिपुः, व्यवहारेण मित्राणि तथा रिपवः जायन्ते ।

शब्दार्थ—कश्चित्=कोई, कस्यचित्=किसी का, जायन्ते=होते हैं ।

अनुवाद—न तो कोई किसी का मित्र होता है और न कोई किसी का शत्रु । व्यवहार से मित्र और शत्रु बनते हैं । (तात्पर्य यह कि परस्पर व्यवहार

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

काकेनोक्तम्—एवमस्तु। अथ प्रातः सर्वे यथाभिमतदेशं गताः।

एकदा निभृतं शृगालो ब्रूते—सखे! अस्मिन् वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति। तदहं त्वां तत्र नीत्वा दर्शयामि।

तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति।

अथ दिनकतिपयेन क्षेत्रपतिना तद् दृष्ट्वा पाशा योजिताः। अनन्तरं पुनरागतश्च चरन् मृगः तत्र पाशैः वद्धोऽचिन्तयत्— को मामितः कालपाशादिव व्याधपाशात् त्रातुं मित्रादन्यः समर्थः? तत्रान्तरे जम्वुक स्तत्रागत्योपस्थितोऽचिन्तयत् फलित स्तावदस्माकं कपटप्रवन्धः मनोरथसिद्धिरपि प्रायो मे भविष्यति। एतस्योत्कृत्य मानस्य मांसासृग्लिप्तानि अस्थीनि मयाऽवश्यं प्राप्तव्यानि तानि वाहुल्येन (मे) भोजनानि भविष्यन्ति।"

से ही कोई किसी का शत्रु या मित्र वन जाता है, जन्म से कोई किसी का मित्र या शत्रु नहीं होता।

काकेनेति-शब्दार्थ—एवमस्तु=ऐसा ही हो, यथा भिमतदेशम्=अपने अपने इष्ट स्थान को, गताः=गये, निभृतम्=एकान्त में चुपचाप, वनैकदेशे =वन के एक भाग में, सत्यपूर्णम्=धान्यों से भरा हुआ, तथा कृते सति= वैसा करने पर।

अनुवाद—कौवे ने कहा—ऐसा ही हो, अर्थात् तीनों साथ-साथ रहें, इसके बाद प्रातः काल सब अपने इष्ट स्थान को चले गये।

एक समय एकान्त में चुपचाप गीदड़ ने कहा—मित्र! वन के एक भाग में धान्यों से पूर्ण (एक) खेत है, मैं तुमको वहाँ ले जाकर दिखला दूँगा।

ऐसा करने पर अर्थात् गीदड़ द्वारा वह खेत दिखा दिया जाने पर, मृग प्रतिदिन वहाँ जाकर धान्य खाने लगा।

अथेति-शब्दार्थ—दिनकतिपयेन=कुछ दिन वीतने पर, क्षेत्रपतिना= खेत के स्वामी ने, पाशाः योजिताः=जाल लगा दिया। अनन्तरम्=इसके बाद, पुनरागतः=पुनः आया हुआ, चरन्=धान्य खाता हुआ, पाशैं वंद्धः= जाल से वँधा हुआ, इतः कालपाशादिव व्याघपाशात्=इस यम पाश के समान व्याध पाश से, त्रातुं मित्रादन्यः कः समर्थः=मित्र के अतिरिक्त रक्षा

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मृगस्तं दृष्ट्वैवोल्लासितो ब्रूते—सखे। छिन्धि तावन्मम वन्धनम्। सत्वरं त्रायस्व माम्। यतः—

आपत्सु मित्रं जानीयाद् युद्धे शूरं ऋणे शुचिम्।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च वान्धवान् ॥७५॥

करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है। अत्रान्तरे=इसी बीच, अस्माकं कपटप्रवन्धः तावत् फलितः=हमारा कपट प्रबन्ध (चालाकी) तो सफल हो गया, मनोरथसिद्धिः अपि प्रायः भविष्यति=अब प्रायः मेरी मनोरथसिद्धि भी हो जायेगी अर्थात् मुझे इसका माँस खाने को मिल जायेगा। एतस्य उत्कृत्यमानस्य=इसके उधेड़े जाने पर अर्थात् जब इसको काट कर खाल निकाली जायेगी तव, मांसासृग्लिप्तानि अस्थीनि=मांस और रक्त से सनी हड्डियाँ, मयाऽवश्यं प्राप्तव्यानि=मुझे अवश्य मिलेंगीं, तानि वाहुल्येन मे भोजयानि भविष्यन्ति=वे मेरा भरपूर भोजन होंगीं। उल्लासितः=प्रसन्न होकर, त्रायस्व माम्=मेरी रक्षा करो।

अनुवाद—इसके वाद कुछ दिन वीतने पर खेत के स्वामी ने, यह देखकर (अर्थात् मृग द्वारा धान्यों को खाया हुआ देखकर) जाल लगा दिया। इसके बाद पुनः आया हुआ और खेत को चरता हुआ वह मृग वहाँ जाल में बँध गया और सोचने लगा, इस यम पाश के समान व्याध के पास से मुझे बचाने के लिये मित्र के अतिरिक्त कौन समर्थ हो सकता है? इसी वीच वहाँ गीदड़ आकर उपस्थित हुआ और सोचने लगा—मेरा कपट जाल तो सफल हो गया, अब मेरे मनोरथ की सिद्धि भी प्रायः हो जायेगी। उधेड़े जाते हुए इस मृग की, मांस और रक्त से सनी हुई हड्डियाँ तो मुझे अवश्य मिलेंगीं। वे मेरा भरपूर भोजन होंगीं।

मृग उसे देखकर ही प्रसन्न होकर वोला—मित्र मेरा बन्धन तो काट दो, शीघ्र ही मेरी रक्षा करो,

क्योंकि—

आपत्स्विति-अन्वय—आपत्सु मित्रम्, युद्धे शूरम्, ऋणे शुचिम्, क्षीणेषु वित्तेषु भार्याम्, व्यसनेषु च वान्धवान् जानीयात्।

शब्दार्थ—ऋणे शुचिम्=ऋण व्यवहार में ऋण के प्रतिदान पर शुचि

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपरञ्च—

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥७६॥

जम्बुको मुहुर्मुहुः पाशं विलोक्या चिन्तयत् दृढ़वन्धनवद्धोऽस्ति तावदयं मृगः । ब्रूते च—सखे ! स्नायुनिर्मिता एते पाशाः, तदद्य भट्टारक रविवारे कथमेतान् दन्तैः स्पृशामि ? मित्र ! यदि चित्ते नान्यथा मन्यते तदा प्रभाते यत् त्वया वक्तव्यं तत्कर्तव्यम् ।

अर्थात् निष्कपट सच्चे व्यक्ति की, जानीयात्=परीक्षा करे या पहचाने, वित्तेषु क्षीणेषु=धन के नष्ट हो जाने पर, व्यसनेषु=आपत्तियाँ उपस्थित होने पर ।

अनुवाद—आपत्तियाँ उपस्थित होने पर मित्र की, युद्ध उपस्थित होने पर शूरवीर की, ऋण व्यवहार के समय निष्कपट सच्चे व्यक्ति की, धन के नष्ट होने पर पत्नी की और दुःखों के समय बन्धुजनों की परीक्षा करें अर्थात् इन अवसरों पर ही सबकी सच्ची पहचान होती है ।

अपरञ्च—और भी ।

उत्सव इति-अन्वयः—उत्सवे व्यसने दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे च एव, राजद्वारे श्मशाने च यः तिष्ठति स बान्धवः (भवति) ।

शब्दार्थ—उत्सवे=विवाहादि उत्सव के समय, व्यसने=विपत्ति के समय, दुर्भिक्षे=अनावृष्टि आदि से उत्पन्न दुष्काल या अकाल के समय राष्ट्रविप्लवे=राज्यभङ्ग या राज्य परिवर्त्तन या राज्य क्रान्ति के अवसर पर, यः तिष्ठति=जो साथ देता है ।

अनुवाद—उत्सवादि हर्ष के समय, दुःख के समय अकाल और राज्य-क्रान्ति के समय, राजद्वार अर्थात् अदालत में एवं श्मशान में जो साथ देता है, वही सच्चा बन्धु होता है ।

जम्वुद-इति-शब्दार्थ—मुहुर्मुहुः=वार-बार । अयं तावत् मृगः दृढ़वन्धन-वद्धः अस्ति=यह मृग तो सुदृढ़ पाशों से बँधा हुआ है । एते पाशाः स्नायु-निर्मिताः=ये पाश अर्थात् जाल की रस्सियाँ, स्नायु अर्थात् तांतः (पशुओं की आँतों या नाड़ियों) से बनी हुई हैं, तदद्य=तो आज, भट्टारकरविवारे

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इत्युक्त्वा तत्समीपे आत्मान माच्छाद्य स्थितः सः । अनन्तरं स काकः प्रदोषकाले मृगमनागत मवलोक्येतस्ततोऽन्विष्य तथाविधं तं दृष्ट्वोवाच—सखे किमेतत् ? मृगेणोक्तम्—अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलमेतत् । तथा चोक्तम्

सुहृदां हितकामानां यः शृणोति न भाषितम् ।
विपत् सन्निहिता तस्य, स नरः शत्रुनन्दनः ॥७७॥

=अपने स्वामी सूर्य के दिन, रविवार को मांस भक्षण वर्जित होता है) एतान् कथं दन्तैः स्पृशामि=इनको दाँतों से कैसे स्पर्श करूँ । यदि चित्ते न अन्यथा मन्यसे=यदि चित में विपरीत न समझो, यत् त्वया वक्तव्यं तत्कर्तव्यम्=जो तुम कहोगे वह किया जायेगा । आत्मानम् आच्छाद्य=अपने को छिपा कर, स स्थितः=वह बैठ गया । प्रदोष काले=संध्या के समय, अनागतम् =न आया हुआ, अन्विष्य=खोजकर, तथाविधम्=वैसा अर्थात् बन्धन में फँसा हुआ, अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य=मित्र के वचनों का न मानने का, फलमेतत्=यह फल है ।

अनुवाद – गीदड ने बार-बार पाश को देखकर (मन ही मन) सोचा—यह मृग तो सुदृढ़ पाशों से बँधा हुआ है अर्थात् अपने आप छूट कर भाग नहीं सकता, और कहा—मित्र ! ये पाश तो तांत से बने हुए हैं, तो आज अपने स्वामी सूर्य के दिन इनको दाँतों से कैसे स्पर्श करूँ । हे मित्र ! यदि अपने चित्त में कुछ विपरीत न समझो तो प्रातः आप जो कुछ कहोगे वह किया जायेगा अर्थात् इन पाशों को काट दूँगा । ऐसा कहकर उसके पास ही अपने को छिपाकर बैठ गया । इसके बाद उस कौवे ने संध्याकाल मृग को न आया हुआ देखकर, इधर उधर खोज कर, उस स्थिति में उसे देखकर कहा—मित्र ! यह क्या है ? मृग ने कहा—अपने मित्र के वचनों की उपेक्षा करने का यह फल है । जैसा कि कहा गया है—

सुहृदामिति-अन्वय—यः हितकामानाम् सुहृदाम् भाषितम् न शृणोति, तस्य विपत् सन्निहिता, स नरः शत्रुनन्दनः ।

शब्दार्थ—हितकामानाम्=हितैषी, भाषितम्=कथन, सन्निहिता=समीपवर्तिनी, शत्रुनन्दनः=शत्रुओं को आनन्दित करने वाला । शृणोति=सुनता है, स्वीकार करता है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

काको ब्रूते—स वञ्चकः क्वास्ते ? मृगेणोक्तम् 'मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव । काको ब्रूते—मित्र ! उक्त मेव मया पूर्वम्—

अपराधो न मेऽस्तीति नैतद् विश्वासकारणम् ।
विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥७८॥
दीपनिर्वाणगन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम् ।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः ॥७९॥

अनुवाद—जो मनुष्य, हितैषी मित्रों का (हितकारी) वचन नहीं स्वीकार करता, उस मनुष्य के लिये विपत्ति (सदा) समीपवर्तिनी रहती है, अर्थात् वह कभी भी विपत्ति में पड़ सकता है, और ऐसा मनुष्य, शत्रुओं के लिये ही सुख कर होता है, (अपने मित्रों के लिये नहीं) ।

काक इति शब्दार्थ—वञ्चकः=धूर्त, ठग । क्व=कहाँ, मन्मांसार्थी= मेरे मांस का चाहने वाला ।

अनुवाद—कौवे ने कहा—वह धूर्त कहाँ है, मृग ने कहा—यहीं मेरे मांस को चाहने वाला बैठा है, कौवे ने कहा—मित्र ! मैंने तो पहले ही कहा था ।

अपराध इति अन्वय—मे अपराधः न अस्ति, इति एतत् विश्वासकारणम् न, हि नृशंसेभ्यः गुणवताम् अपि भयम् विद्यते ।

शब्दार्थ—मे=मेरा, नृशंसेभ्यः=क्रूर जीवों से ।

अनुवाद—"मेरा कुछ अपराध नहीं है, अर्थात् मैं इसका कोई अपराध नहीं करता, इसलिये वह (मेरा साथी) मेरा कुछ भी अनिष्ट न करेगा, ऐसा समझना (अपने साथी के) विश्वास का कारण (कभी) नहीं होता, क्योंकि क्रूर लोगों से गुणवान् (निरपराधियों) को भी सदा भय बना रहता है, गुण-वान् और निरपराधी होकर भी क्रूर जनों से सदा डरते रहना चाहिये ।

दीपेति-अन्वय—गतायुषः दीपनिर्वाणगन्धम् न जिघ्रन्ति सुहृद्वाक्यम् न शृण्वन्ति, अरुन्धतीम् न पश्यन्ति ।

शब्दार्थ—गतायुषः=जिनकी आयु बीत चुकी है, फलतः जो मरने ही वाले हैं, ऐसे गतायु पुरुष, दीपनिर्वाणगन्धम्=दीपक बुझाने से उत्पन्न गन्ध को, जिघ्रन्ति=सूँघते हैं । अरुन्धतीम्=सप्तर्षिमण्डल में स्थित अरुन्धती नामक तारा को ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥८०॥

ततः काको दीर्घं निःश्वस्य प्राह 'अरे वञ्चक ! किं त्वया पापकर्मणा कृतम् । यतः—

संलापितानां मधुरैर्वचोभि—
र्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम् ।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके,
किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति ॥८१॥

अनुवाद—गतायु पुरुष, दीपक बुझाने की गन्ध को नहीं सूँघ पाते, मित्रों के हितकर वचनों को नहीं सुनते और अरुन्धती तारा को नहीं देख पाते।

जो लोग मित्रों की वात नहीं मानते, दीपक बुझाने की गन्ध को नहीं पाते और अरुन्धती तारा को नहीं देख पाते, उन्हें मरने ही वाला समझना चाहिये। अर्थात् मरने ही वाले के ये लक्षण हैं।

परोक्ष इति-अन्वय—परोक्षे कार्यहन्तारम्, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्, तादृशं मित्रम् पयोमुखम् विषकुम्भम् (इव) वर्जयेत् ।

शब्दार्थ—परोक्षे कार्यहन्तारम्=अप्रत्यक्ष में कार्य को विगाड़ने वाले, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्=प्रत्यक्ष में सामने मीठा बोलने वाले, विषकुम्भम्=विषपूर्ण घट को, पयोमुखम्=जिस घट के ऊपरी भाग में दूध भरा है।

अनुवाद—असमक्ष कार्य को विगाड़ने वाले और सामने प्रिय बोलने वाले ऐसे मित्र को उसी प्रकार त्याग देना चाहिये जैसे उस घड़े को त्याग दिया जाता है, जिसके ऊपरी भाग में तो दूध दिखाई पड़ता है, पर भीतर गरल भरा हुआ होता है।

तत इति—तव कौवे ने (दुःख से) लम्बी सांस लेकर कहा—अरे धूर्त पाप कर्म करने वाले तूने यह क्या किया ?

यतः=क्योंकि —

संलावितानामिति-अन्वय—लोके मधुरैः वचोभिः संलापितानाम् मिथ्योपचारैः च वशीकृतानाम् श्रद्दधताम्, आशावताम् च अर्थिनाम् किम् वञ्चयितव्यम् अस्ति ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

उपकारिणि, विश्रब्धे, शुद्धमतौ यः समाचरति पापम् ।
तं जन मसत्यसन्धं, भगवति वसुधे ! कथं वहसि ॥८२॥
दुर्जनेन समं वैरं प्रीतिञ्चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥८३॥

शब्दार्थ—मधुरैः वचोभिः संलापितानाम्=प्रिय वचनों द्वारा जिनसे सम्भाषण किमा गया है अर्थात् प्रियवचन बोल कर धूर्तों ने जिन्हें प्रलोभित कर लिया है, मिथ्योपचारैः=कपटपूर्ण व्यवहारों द्वारा, वशीकृताम्=जो (धूर्तों द्वारा) अपने वश में कर लिये गये हैं, श्रद्दधताम्=दूसरों पर श्रद्धा विश्वास करने वाले, आशावताम्=दूसरों से आशा रखने वाले अर्थिनाम्= याचना करने वाले, कि वञ्चयितव्यम् अस्ति=ठगना, धोखा देना कौन सी बड़ी बात है, अर्थात् ऐसे लोगों को धोखा देना बड़ा सरल है ।

अनुवाद—प्रियवचनों द्वारा प्रलोमित किये गये तथा कपट पूर्ण व्यवहारों द्वारा वशीकृत, श्रद्धालु, आशा रखने वाले एवं याचकों को धोखा देना क्या बड़ी वात है ? अथवा "किं वञ्चमितव्यमस्ति" का यह भी अर्थ यहाँ ठीक हो सकता है कि 'ऐसे लोगों को ठगने में क्या वड़ाई है, अर्थात् ऐसे लोगों को धोखा न देना चाहिए ।'

उपकारिणीति-अन्वय—यः उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ पापम् समाचरति, असत्यसन्धम् तम् जनम्, हे भगवति वसुन्धरे ! कथम् वहसि ।

शब्दार्थ—विश्रब्धे=विश्वस्त, शुद्धमतौ=निश्छल मति वाले, असत्यसन्धम्=असत्य प्रतिज्ञा वाले—कपटाचारी—असत्य भाषी । वसुन्धरे= पृथिवी, कथं वहसि=कैसे धारण करती हो ।

अनुवाद—जो अपने उपकारी पर, विश्वास करने वाले तथा शुद्ध बुद्धि वाले पर पापकर्म करता है, ऐसे उस असत्य प्रतिज्ञा वाले मनुष्य को हे पृथ्वी ! तुम कैसे धारण करती हो, अर्थात् ऐसे व्यक्ति को तुम्हें अपने ऊपर धारण नहीं करना चाहिये ।

दूर्जनेनेति-अन्वय—दुर्जनेन समम् वैरम् प्रीतिम् च अपि न कारयेत् ।उष्णः अङ्गारः करम् दहति, शीतः करम् कृष्णायते ।

शब्दार्थ—समम्=साथ, सख्यम्=मित्रता, उष्णः अङ्गारः=तप्त अंगार, दहति=जलाता है, करम् कृष्णायते=हाथ काला करता है ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथवा स्थितिरियं दुर्जनानाम्—
प्राक् पादयोः पतति, खादति पृष्ठमासं,
कर्णे कलं किमपि रौति शनै र्विचित्रम् ।
छिद्रं निरुप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥८४॥
दुर्जनः प्रियवादी च नैतद् विश्वासकारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे, हृदि हालाहलं विषम् ॥८५॥

अनुवाद—दुर्जन के साथ वैर अथवा मित्रता नहीं करनी चाहिये (क्योंकि वह दोनों ही दशाओं में अनिष्ट करता है, जैसे) तप्त अंगार तो हाथ जला देता है, और शीतल अंगार हाथ को काला कर देता है (अतः दुर्जन से सर्वथा दूर रहना ही उचित है ।)

अथवेति—अथवा दुर्जनों का ऐसा यह स्वभाव ही होता है ।

प्रागिति-अन्वय—मशकः खलस्य सर्वम् चरितम् करोति-प्राक्पादयोः पतति, पृष्ठमांसम् खादति, कर्णे किमपि विचित्रम कलम् शनैः रौति, छिद्रम् निरुप्य अशङ्कः (सन्) सहसा प्रविशति ।

शब्दार्थ—मशकः=मच्छर, खलस्य=दुर्जन के, सर्वं चरितम्=सभी चरित्रों—कार्यों या व्यवहारों को, करोति=अनुकरण करता है, प्राक्=पहले, पृष्ठमासं खादति=पीठ का मांस खाता है, किमपि विचित्रम् कलम् रौति=कुछ विचित्र प्रकार का मधुर और अस्पष्ट गुनगुनाता है, छिद्रं निरुप्य (कहीं पर) छिद्र देखकर, अशङ्कः सन्=निडर होकर ।

अनुवाद—मच्छर, दुर्जन की सभी क्रियाओं का अनुकरण करता है—मच्छर नीचे चक्कर लगाता है, खल पहले तो पैरों पर गिरता है, मच्छर अवसर पाकर पीठ का मांस खाने लगता है, खल भी पीछे से निन्दा करने लगता है, मच्छर कान में कुछ विचित्र प्रकार का अस्पष्ट मधुर शब्द करता है, खल भी इसी प्रकार कान में दूसरे की चुपचाप निन्दा या चुगली करता है, मच्छर फिर छिद्र देखकर निडर होकर सहसा भीतर प्रविष्ट हो जाता है और मनमाने ढंग से काटने लगता है, खल भी इसी प्रकार अवसर पाकर निडर होकर भीतर प्रवेश करके मनुष्य का अनिष्ट करने लगता है ।

दुर्जन-इति—दुर्जनः प्रियवादी च एतत् विश्वासकारणम् न जिह्वाग्रे मधु तिष्ठति, हृदि हालाहलम् विषम् ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथ प्रभाते क्षेत्रपति लंगुडहस्तस्तं प्रदेश मागच्छन् काकेना-वलोकितः। तमालोक्य काकेनोक्तम्, सखे मृग। त्व मात्मानं मृतव-त्संदर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्य तिष्ठ। यदाहं शब्दं करोमि, तदा त्व मुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसे।

मृगस्तथैव काकवचनेन स्थितः। ततः क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्ल-लोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः। 'आः, स्वयं मृतोऽसि' इत्युक्त्वा मृगं वन्धनान् मोचयित्वा पाशान् संवरीतुं सयत्नो वभूव।

शब्दार्थ—दुर्जनः प्रियवादी च=और दुर्जन (यदि) प्रिय बोलने वाला भी है (तो उसका) यह प्रिय बोलना) विश्वास का कारण नहीं है (अर्थात् दुर्जन को प्रियवचन बोलता देख कर उस पर हितैषी होने का विश्वास न कर लेना चाहिये (क्योंकि) जिह्वाग्रे मधु तिष्ठति=(उसकी जीभ के अग्रभाग पर ही मधुरता रहती है) हृदि=हृदय में तो, हालाहलं विषम्=कपट रूप तीक्ष्ण विष।

अनुवाद—दुर्जन (यदि) प्रिय बोलने वाला (भी) है तथापि उसकी यह प्रियवादिता उसके विश्वास का कारण नहीं होती (क्योंकि उसकी) जीभ के अग्र भाग पर ही मधुरता रहती है, हृदय में तो (कपट रूप) तीक्ष्ण विप ही होता है।

अथेति-शब्दार्थ—लगुडहस्तः=डंडे को हाथ में लिये हुये, काकेनावलोकितः=कौवे के द्वारा देखा गया, संदर्श्य=दिखला कर, वातेनोदर पूरयित्वा =वायु से पेट भरकर अर्थात् पेट फुलाकर (मरने पर पशुओं का पेट फूल जाता है) पादान् स्तब्धीकृत्य=पैरों को जड़ या निश्चल करके, सत्वरम्= शीघ्र, पलायिष्यसे=भाग जाओगे।

हर्षोत्फुल्ललोचनेन=प्रसन्नता से विकसित नेत्रों वाले, वन्धनान्मोचयित्वा बन्धन से छुड़ाकर, पाशान् संवरीतुम्=जालों को समेटने के लिये, सयत्नो-वभूव=प्रयत्न करने लगा। कियद दूर मन्तरिते=कुछ दूर हट जाने पर, तमुद्दिश्य—उसका लक्ष्य कर, क्षिप्तेन=फेंके गये।

अनुवाद—इसके बाद प्रातःकाल, डंडे को हाथ में लिये हुये और उस स्थान पर आते हुये खेत के स्वामी को कौवे ने देखा। उसे देख कर कौवे ने

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ततः कियद्दूरमन्तरिते क्षेत्राधिपे काकशब्दं श्रुत्वा मृगः सत्वर मुत्थाय पलायितः। तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिना क्षिप्तेन लगुडेन शृगालो हतः। तथा चोक्तम्—

त्रिभि र्वर्षै स्त्रिभि र्मासै स्त्रिभिः पक्षै स्त्रिभिः र्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यै रिहैव फलमश्नुते ॥८६॥

अतोऽहं ब्रवीमि 'भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः' इत्यादि—काकः पुनराह—

कहा—मित्र मृग ! तुम अपने को मरा सा दिखला कर, वायु से पेट फुला कर पैर निश्चल कर स्थित हो जाओ, जब मैं शब्द करूँ तब तुम उठ कर शीघ्र भाग जाना।

कौवे के कहने से मृग वैसे ही स्थित हो गया, तब प्रसन्नता से विकसित नेत्र वाले क्षेत्रपति ने उस स्थिति में अर्थात् मृतवत् मृग को देखा, 'ओह' स्वयं मर गये हो' ऐसा कहकर मृग को बन्धन से छुड़ा कर, जाल समेटने के लिये प्रयत्न करने लगा।

तब खेत के स्वामी के कुछ दूर हट जाने पर कौवे के शब्द को सुनकर वह मृग शीघ्र उठकर भाग गया। उसे लक्ष्य कर उस क्षेत्रपति के द्वारा फेंके गये डंडे से वह गीदड़ मर गया। जैसा कि कहा गया है—

त्रिभिरिति-अन्वय— अत्युत्कटैः पापपुण्यैः (जनः) इह एव त्रिभिः वर्षैः, त्रिभिः मासैः त्रिभिः पक्षैः त्रिभिः दिनैः वा फलम् अश्नुते।

शब्दार्थ—अत्युत्कटैः पापपुण्यैः=अति तीव्र पाप अथवा पुण्यों के द्वारा, इह एव=इस लोक में ही, त्रिभिः वर्षैः=तीन वर्षों में, फलमश्नुते=फल प्राप्त कर लेता है।

अनुवाद—अति तीव्र पाप अथवा पुण्यों का फल (मनुष्य) इस लोक में ही, तीन वर्ष, तीन मास, तीन पक्ष अथवा तीन दिनों में प्राप्त कर लेता है।

साधारण पाप पुण्यों का फल तो जन्मान्तर में भले ही प्राप्त हो, पर अत्युकट पाप पुण्यों का फल यहीं मिल जाता है।

हिरण्यक कहता है कि इसीलिये मैं कहता हूँ—'भक्ष्य और भक्षक की प्रीति' इत्यादि—

काकः पुनराह—कौवे ने फिर कहा—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

भक्षितेनापि भवतो नाहारो मम पुष्कलः ।
त्वयि जीवति जीवामि चित्रग्रीव इवानघ ॥८७॥

अन्यच्च—

तिरश्चामपि विश्वासो दृष्टः पुण्यैककर्मणाम् ।
सतां हि साधुशीलत्वात् स्वभावो न निवर्तते ॥८८॥

किञ्च—

भक्षितेनापीति-अन्वय—हे अनघ ! भवतो भक्षितेन अपि, मम पुष्कलः आहारः न, त्वयि जीवति (तु) चित्रग्रीवः इव जीवामि ।

शब्दार्थ=भवतो भक्षितेनापि=तुम्हारे भक्षण कर लेने पर भी पुष्कलः =भरपूर-पर्याप्त, त्वयि जीवति=तुम्हारे जीवित रहते (तो) अनघ= निष्पाप, साधु । जीवामि=सुख से जीता रहूँगा ।

अनुवाद— हे साधु । तुम्हारे खा लेने पर भी तो मेरा पर्याप्त-भरपूर आहार न हो सकेगा, किन्तु तुम्हारे जीते रहते, मैं चित्रग्रीव के समान ही (चिरकाल तक सुख से) जीवित रहूँगा ।

अन्यच्च—और भी—

तिरश्चामपीति—पुण्यैककर्मणां तिरश्चाम् अपि विश्वासः दृष्टः, हि सताम् साधुशीलत्वात् स्वाभावः न निवर्तते ।

शब्दार्थ—पुण्यैककर्मणाम्=एक मात्र पुण्यात्मा, तिरश्चाम् अपि=पशु-पक्षियों का भी, हि=क्योंकि, सताम्=सज्जनों का, स्वभावः—स्वभाव, साधुशीलत्वात्=सदाचारपरायण होने के कारण. न निवर्तते=बदलता नहीं अर्थात् किसी भी योनि में उत्पन्न होने पर भी स्वभाव नहीं बदलता ।

अनुवाद—पुण्यकर्म करने वाले पशु पक्षियों का भी (परस्पर विश्वास देखा जाता है, क्योंकि सज्जनों का स्वभाव साधुशील होने के कारण किसी भी योनि में जाकर भी) नहीं बदलता अर्थात् जैसे मानव साधुशील विश्वासपात्र और पुण्यात्मा होते हैं उसी प्रकार पशु पक्षी भी, किसी योनि विशेष में पहुँच कर भी सत्स्वभाव बदलता नहीं, अतः पशु पक्षी भी विश्वासपात्र होते हैं ।

किञ्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम् ।
नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया ॥८९॥

हिरण्यको ब्रूते—चपलस्त्वम् । चपलेन सह स्नेहः सर्वथा न कर्तव्यः । तथा चोक्तम्—

मार्जारो, महिषो मेषः काकः कापुरुषस्तथा ।
विश्वासात् प्रभवन्त्येते, विश्वासस्तत्र नोचितः ॥९०॥

किञ्चान्यत्—शत्रुपक्षयो भवानस्माकम्-उक्तञ्चैतत्—

साधोरिति-अन्वय—प्रकोपितस्य अपि साधोः मनः विक्रियाम् न आयाति । सागराम्भः तृणोल्कया तापयितुम् नहि शक्यम् ।

शब्दार्थ—प्रकोपितस्य अपि=क्रोधित किये गये भी, विक्रियाम् न आयाति=विकार को प्राप्त नहीं होता, सागराम्भः=समुद्र का जल । तृणोल्कया=घास की उल्का लुकाठी) से, तापयितुं न शक्यम्=तप्त नहीं किया जा सकता ।

अनुवाद—क्रोधित किये गए भी सज्जन का मन विकार को प्राप्त नहीं होता (जैसे) घास फूस की उल्का से समुद्र का जल तप्त नहीं किया जा सकता ।

हिरण्यक-इति—हिरण्यक ने कहा—तुम चञ्चल हो, चञ्चल से साथ किसी भी प्रकार स्नेह न करना चाहिये । वैसा ही कहा भी गया है ।

मार्जार इति-अन्वय—मार्जारः महिषः मेषः काकः तथा कापुरुषः, एते विश्वासात् प्रभवन्ति, तत्र विश्वासः न उचितः ।

शब्दार्थ—मार्जारः=विडाल, महिषः-लुलाय या भैंसा, मेषः=मेंढा, कापुरुष=कायर पुरुष, एते विश्वासात् प्रभवन्ति=ये पाँच जीव, इन पर विश्वास करने से, ये अनिष्ट करने में समर्थ हो जाते हैं (प्रभवन्ति) ।

अनुवाद—विडाल, महिष, मेंढा, कौवा तथा कायर पुरुष, ये पाँच (इन पर) विश्वास करने से, प्रभावशाली अनिष्ट करने में समर्थ हो जाते हैं, अतः इन पर विश्वास करना उचित नहीं होता ।

किञ्चान्यत्—इसके अतिरिक्त और भी—तुम हमारे शत्रुपक्षीय हो—यह कहा भी गया है—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

शत्रुणा नहि सन्दध्यात् सुश्लिष्टेनापि सन्धिना ।
सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् ॥९१॥
दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालं कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥९२॥
यदशक्यं न तच्छक्यं यच्छक्यं शक्यमेव तत् ।
नोदके शकटं याति न च नौ गंच्छति स्थले ॥९३॥

शत्रुणेति-अन्वय—सुश्लिष्टेन अपि सन्धिना शत्रुणा नहि सन्दध्यात् । सुतप्तम् अपि पानीयम् पावकम् शमयति एव ।

शब्दार्थ—सुश्लिष्टेन=सुदृढ़, सन्धिना=सन्धि या मेल के द्वारा, न सन्दध्यात्=मेल न करे (क्योंकि), सुतप्तम् अपि पानीयम्=अच्छी तरह तपाया हुआ भी जल, शमयति एव=बुझा ही देता है ।

अनुवाद—सुदृढ़ सन्धि के द्वारा भी शत्रु से मेल न करे, (क्योंकि) बहुत अधिक तप्त भी जल, अग्नि को बुझा ही देता है ।

दुर्जन इति अन्वय—विद्यया अलंकृतः सन् अपि दुर्जनः परिहर्तव्यः, मणिना भूषितः असौ सर्पः किं न भयंकरः ?

शब्दार्थ—अलंकृतः=सुशोभित, सन् अपि=होकर भी, परिहर्तव्यः=दूर करने योग्य होता है ।

अनुवाद—विद्या से सुशोभित होकर भी दुर्जन परिहरणीय ही होता है, मणि से सुशोभित भी क्या यह सर्प भयंकर नहीं होता अर्थात् अवश्य ही होता है ।

यदशक्यमिति-अन्वय—यत् अशक्यम् तत् न शक्यम् यत् शक्यम् तत् शक्य मेव, उदके शकटम् न याति स्थले च नौः न गच्छति ।

शब्दार्थ—यत् अशक्यम् तत् न शक्यम्=जो कार्य असम्भावित है अर्थात् होने योग्य नहीं है, तत् न शक्यम्=वह कभी नहीं हो सकता, यत् शक्यम् तत् शक्यमेव=जो होने योग्य है, अर्थात् जिसका होना सम्भव है, वह अवश्य ही होगा । उदके=जल मे, शकटम्=गाड़ी, नौः=नौका ।

अनुवाद—जो कार्य होने योग्य नहीं है, वह कभी नहीं होगा, तथा जो होने योग्य है वह अवश्य होगा, (जैसे) जल में गाड़ी नहीं चलती, (क्योंकि यह कार्य असम्भव है) और स्थल में नौका नहीं चलती ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपरञ्च—

महताप्यर्थसारेण यो विश्वसिति शत्रुषु।
भार्यासु च विरक्तासु तदन्तं तस्य जीवनम् ॥६४॥

लघुपतनको ब्रूते—श्रुतं मया सर्वम्, तथापि मम चैतावान् संकल्पः—'त्वया सह सौहृद्य मवश्यं करणीय मिति। नो चेदनाहारेणात्मानं तव द्वारि व्यापादयिष्यामि।

अर्थात् जो कार्य सम्भव हो, मनुष्य को उसे ही करना चाहिये, असम्भव कार्य के लिए प्रयास व्यर्थ होता है।

अपरञ्च—और भी—

महतेति-अन्वय—यः महता अपि अर्थसारेण शत्रुषु विश्वसिति, विरक्तासु भार्यासु च विश्वसिति तस्य जीवनम् तदन्तम् भवति।

शब्दार्थ—महता अपि अर्थसारेण=बहुत बड़े भी धनादि प्रयोजन वश, शत्रुषु=शत्रुओं पर, विरक्तासु भार्यासु च=अपने पर अननुरक्त अथवा पर पुरुषानुरक्त पत्नियों पर, तदन्तम्=ऐसे लोगों पर किया गया विश्वास ही पुरुष के जीवन का अन्त होता है।

अनुवाद—जो व्यक्ति, बहुत बड़े धनादि के लोभ वश शत्रुओं और अननुरक्त पत्नियों पर विश्वास करता है, उसका यह विश्वास ही उसके जीवन का अन्त होता है, अर्थात् ऐसा विश्वस्त पुरुष इनके ही द्वारा विनष्ट हो जाता है।

इसका अर्थ यह भी हो सकता है—महतापि अर्थसारेण समन्वितः यः अर्थात् बहुत बड़े धनादि बल से समन्वित भी जो पुरुष इन पर विश्वास करता है।

लघुपतनक इति-शब्दार्थ—एतावान् संकल्पः=इतना (यह) संकल्प है, सौहृद्यम्=मित्रता। अनाहारेण=विना खाये हुये अर्थात् उपवास या अनशन करके, आत्मानं व्यापादयिष्यामि=अपने को मार डालूँगा अर्थात् मर जाऊँगा।

अनुवाद—लघुपतनक ने कहा, मैंने सब सुन लिया, तो भी मेरा इतना संकल्प है कि तुम्हारे साथ मित्रता अवश्य करनी है, यदि ऐसा न हुआ तो

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तथा हि—

मृद्घटवत् सुखभेद्यो दुःसन्धानश्च दुर्जनो भवति ।
सुजनस्तु कनक घटवद् दुर्भेद्यश्चाशु सन्धेयः ॥९५॥

किञ्च—

द्रवत्वात् सर्वलोहानां निमित्तात् सर्व पक्षिणाम् ।
भयाल्लोभाञ्च मूर्खाणां संगतं दर्शनात् सताम् ॥९६॥

मैं तुम्हारे द्वार पर अनशन के द्वारा अपने को मार डालूँगा अर्थात् मैं अनशन करके मर जाऊँगा।

तथाहि—जैसे—

मृद्घटवदिति—दुर्जनः मृद्घटवत् सुखभेद्यः दुःसन्धानश्च (भवति) सुजनः तु कनक घटवत् दुर्भेद्यः आशु सन्धेयश्च (भवति)।

शब्दार्थ—मृद्घटवत्=मिट्टी के घड़े के समान, सुखभेद्यः=अनायास ही टूट जाने योग्य, दुःसन्धानः=कठिनता से जोड़ने वाला होता है, कनक घटवत्=सुवर्ण घट के समान, दुर्वेद्यः=कठिनता से फोड़ने योग्य, आशु=शीघ्र, सन्धेयः=जोड़ने योग्य।

अनुवाद—दुर्जन मिट्टी के घड़े के समान, अनायास टूट जाने योग्य और फिर कठिनाई से ही जुड़ने योग्य होता है, किन्तु सज्जन पुरुप स्वर्णघट के समान कठिनता से फोड़ने योग्य तथा शीघ्र ही जोड़ने योग्य होता है, सज्जन और दुर्जन में यही भेद होता है। अर्थात् दुर्जन के साथ की गई मित्रता शीघ्र टूट जाने वाली और फिर कठिनता से ही जुड़ने वाली होती है, इसके ठीक विपरीत सज्जन के साथ की गई मित्रता जल्दी टूटती नहीं और यदि टूटती भी है तो शीघ्र ही जुड़ जाती है।

किञ्च—और भी—

द्रवत्वादिति-अन्वय—सर्वलोहानाम् द्रवत्वात्, मृगपक्षिणाम् निमित्तात मूर्खाणाम् भयात् लोभात् च, सताम् दर्शनात् च संगतम् (भवति)।

शब्दार्थ—सर्वलोहानाम्=सभी धातुओं का, द्रवत्वात्=पिघलने के कारण, मृगपक्षिणाम्=पशुपक्षियों का, निमित्तात्=किसी न किसी कारण

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च—

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः ।
अन्ये वदरिकाकारा वहिरेव मनोहराः ॥६७॥

स्नेहच्छेदेऽपि साधूनां गुणा नायान्ति विक्रियाम् ।
भङ्गेऽपि हि मृणालाना मनुवध्नन्ति तन्तवः ॥६८॥

से, सताम्=सज्जनों का, दर्शनात्=केवल दर्शन मात्र से, संगतम्=मेल या मैत्री ।

अनुवाद—सभी धातुओं का परस्पर मेल या मिश्रण विघलाने से होता है, पशुपक्षियों का परस्पर मेल किसी न किसी कारण वश होता है, मूर्खों से मेल भय और लोभ वश होता है परन्तु सत्पुरुषों से मैत्री तो केवल देखने मात्र से ही हो जाती है। सज्जन मैत्री के लिये लोभ भय अथवा अन्य कोई निमित्त आवश्यक नहीं ।

किञ्च—और भी—

नारिकेलेति-अन्वय—सुहृज्जनाः नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते अन्ये वदरिकाकाराः वहिः, एव मनोहराः (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—सुहृज्जनाः=सुहृद् जनाः सत्पुरुष, नारिकेलसमाकाराः= नारियल के समान ऊपर से कड़े और रुखे, दृश्यन्ते=दिखलाई पड़ते हैं। वदरिकाकारा=वेर के फल की तरह, वहिरेव मनोहराः=बाहर से ही मनोहर ।

अनुवाद—सुहृदय सज्जन तो नारियल के फल के समान, (ऊपर से कठोर और रुखे, पर भीतर से मधुर और सरस दीख पड़ते हैं, किन्तु दुर्जन बेर के फल के समान बाहर से तो सुन्दर देख पड़ते हैं, पर भीतर से कठोर एवं रुखे होते हैं। (बेर का फल ऊपर से चिकना सुन्दर एवं मधुर होता है पर उसके भीतर कड़ी रुखी गुठली होती है, दुर्जन ऐसा ही होता है, सज्जन नारियल के फल के समान ऊपर से भले ही कठोर जान पड़े पर, भीतर से मधुर होता है ।

स्नेहेति-अन्वय—साधूनाम् स्नेहच्छेदेऽपि गुणाः विक्रियाम् न आयान्ति । हि मृणालानाम् भङ्गेऽपि तन्तवः अनुवध्नन्ति ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च—

शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः ।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः ॥६६॥

एतै गुंणैरुपेतो भवदन्यो मया कः सुहृत् प्राप्तव्यः ?

इत्यादि तद्वचन माकर्ण्य हिरण्यको वहि निःसृत्याह—आप्यायितोऽहं भवतानेन वचनामृतेन' । तथा चोक्तम्—

शब्दार्थ—स्नेहच्छेदेऽपि = प्रेम टूट जाने पर भी, विक्रियाम् न आयान्ति = विकृत नहीं होते, मृणालानाम् = कमल दण्डों के, भङ्गेऽपि = टूटने पर भी, तन्तवः = विसतन्तु-रेशे, अनुवध्नन्ति = परस्पर जुड़े ही रहते हैं ।

अनुवाद—सज्जन पुरुषों से प्रेम टूट जाने पर भी, उनके सरलता आदि गुण विकृत नहीं होते, जैसे कमल नालों के टूट जाने पर भी उसके तन्तु परस्पर जुड़े रहते हैं । तात्पर्य यह है कि सज्जन से यदि भित्रता टूट भी जाये तो भी वह कभी अपकार नहीं करता उसके चित्त में कोई विकार नहीं आता, जैसे कमल नाल के टूटने पर भी उसके तन्तु परस्पर जुड़े ही रहते हैं ।

अन्यञ्च—और भी—

शुचित्वमिति-अन्वय—शुचित्वम्, त्यागिता शौर्यम् सुख-दुखयोः सामान्यम् दाक्षिण्यम् अनुरक्तिः सत्यता च (ऐते) सुहृद्गुणाः ।

शब्दार्थ—शुचित्वम् = पवित्रता अर्थात् चित्त में और व्यवहार में शुद्धता, त्यागिता = दानशीलता शौर्यम् = वीरता, सामान्यम् = सुख दुःख में एक भाव से रहना, दाक्षिण्यम् = उदारता सरलता, अनुरक्तिः = प्रेम ।

अनुवाद—मन वचन और क्रिया में शुद्धता, दानशीलता, वीरता, सुख दुःख में समानभाव, उदारता, प्रेम और सत्यता—ये सब मित्र के गुण होते हैं, अर्थात् एक सच्चे मित्र में ये सब गुण पाये जाते हैं ।

एतैरिति—इन सब गुणों से युक्त आपके अतिरिक्त मुझे और कौन मित्र मिल सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ।

इत्यादीति-शब्दार्थ—वहिः निःसृत्य = बाहर निकल कर, आप्यायितः = परितृप्त-सन्तुष्ट ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

धर्मार्तं न तथा सुशीतलजलैः स्नानं, न मुक्तावली,
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम् ।
प्रीत्या सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसः,
सद्युक्त्या च परिष्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम् ॥ १०० ॥

अन्यच्च—

अनुवाद—इत्यादि (कौवे के) उन वचनों को सुनकर बाहर आकर हिरण्यक ने कहा—मैं आपके इस वचन रूपी अमृत से पूर्णतः तृप्त एवं सन्तुष्ट हो गया हूँ । जैसा कि कहा गया है—

धर्मार्तमिति-अन्वय—सद्युक्त्या परिष्कृतम् सुकृतिनाम् आकृष्टिमन्त्रोपमम् च सज्जनभाषितम् यथा चेतसः प्रीत्यै प्रायः प्रभवति, तथा धर्मार्तम् सुशीतल जलैः, स्नानम् न, मुक्तावली न, प्रत्यङ्गमर्पितम् श्रीखण्डविलेपनम् अपि न सुखयति ।

शब्दार्थ—सद्युक्त्या = नीतियुक्त उत्तम युक्तियों के द्वारा, परिष्कृतम् = स्पष्ट अर्थ युक्त, सुकृतिनाम् = सज्जनों के, आकृष्टिमन्त्रोपमम् = वशीकरण मन्त्र के समान, सज्जनभाषितम् = सज्जनों का कथन, यथा चेतसः प्रीत्यै = जिस प्रकार चित्त की प्रसन्नता के लिए, प्रभवति = समर्थ होता है, धर्मार्तम् = धूप से पीड़ित व्यक्ति को, सुशीतलजलैः स्नानम् = अतिशीतल जल से स्नान, मुक्तावली = मोतियों का हार, प्रत्यङ्गम् अर्पितम् = शरीर के प्रत्येक अंग पर लगाया गया, श्रीखण्डविलेपनम् = चन्दन का लेप, सुखयति = आनन्दित करता है ।

अनुवाद—नीतिसमन्वित उत्तम युक्तियों के द्वारा सुशोभित, तथा सज्जनों को आकृष्ट करने के लिए वशीकरण मन्त्र के समान सज्जनों के वचन चित्त को जितता अधिक आनन्द देते हैं, उतना आनन्द, धूप से पीड़ित व्यक्ति को न तो सुशीतल जल से स्नान ही देता है, न मोतियों का हार ही देता है और न शरीर के प्रत्येक अंग पर लगाया गया चन्दन का लेप ही देता है, अर्थात् सज्जन का वचन सब से अधिक तृप्ति एवं सुख देने वाला होता है ।

अन्यच्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता ।
क्रोधो निःसत्यता द्यूत मेतन्मित्रस्य दूषणम् ॥१०१॥

अनेनेन वचनक्रमेण तदेकमपि दूषणं त्वयि न विद्यते (लक्ष्यते) यतः—

पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते ।
अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेणावगम्यते ॥१०२॥

अपरञ्च—

रहस्येति-अन्वय—रहस्यभेदः याच्ञा, नैष्ठुर्यम्, चलचित्तता, क्रोधः, निःसत्यता द्यूतम् च एतत् मित्रस्य दूषणम् ।

शब्दार्थ—रहस्यभेदः=गुप्त बात को प्रकट कर देना, याच्ञा=माँगना, नैष्ठुर्यम्=कठोरता. चलचित्तता=चित्त की चञ्चलता, निःसत्यता=असत्य भाषण, द्यूतम्=जुआ ।

अनुवाद—गुप्त बातों को प्रकट करना, मांगना, कठोरता, क्रोध, असत्य बोलना, चञ्चल चित्त होना और द्यूत क्रीड़ा, ये सब मित्र के दोष होते हैं। सच्चे मित्र में ये दोष न होने चाहिये ।

अनेनेति—किन्तु तुम्हारे इस कथन से इनमें से एक भी दोष तुम्हारे में नहीं दीख पड़ता है ।

क्योंकि—

पटुत्वमिति-अन्वय—पटुत्वम् सत्यवादित्वम् कथायोगेन बुध्यते, अस्तब्धत्वम् अचापल्यम् प्रत्यक्षेण अवगम्यते ।

शब्दार्थ—पटुत्वम्=दक्षता कुशलता, कथायोगेन=वार्तालाप के प्रसंग से, बुध्यते=अनुमान कर लिया जाता है। अस्तब्धत्वम्=जड़ता रहित होना, उत्साहशक्तिसम्पन्न होना अचापल्यम्=चञ्चलता से रहित होना, अवगम्यते=जान लिया जाता है ।

अनुवाद —(मानव की) कुशलता एवं सत्यवादिता तो (उसके साथ) बात चीत करने से मालुम पड़ जाती है, किन्तु उसकी उत्साहशक्ति तथा गम्भीरता तो प्रत्यक्ष देखकर ही मालुम पडती है ।

अपरञ्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यथैव हि सौहार्दं भवेत् स्वच्छान्तरात्मनः ।
प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठ्योपहत चेतसः ॥१०३॥
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥१०४॥

तद्भवतु, भवतोऽभिमतमेव । इत्युक्त्वा हिरण्यको मैत्र्यं विधाय भोजनविशेषै र्वायसं सन्तोष्य, विवरं प्रविष्टः, वायसोऽपि स्वस्थानं गतः ।

अन्यथैवेति—स्वच्छान्तरात्मनः सौहार्दम् अन्यथैव भवेत्, हि शाठ्योपहत चेतसः वाणी अन्यथा प्रवर्तते ।

शब्दार्थ—स्वच्छान्तरात्मनः=शुद्ध हृदय वाले मनुष्य की, सौहार्दम्=सुहृन्यता, अन्यथैव भवेत्=कुछ और ही प्रकार की होती है, शाठ्योपहत चेतसः=शठता=धूर्तता से युक्त चित्त वाले अर्थात् कुटिल मन वाले मनुष्य को, वाणी=बात चीत, अन्यथा प्रवर्तते=कुछ और ही प्रकार की होती है ।

अनुवाद—शुद्ध हृदय वाले मनुष्य की सुहृदयता या सरलता कुछ और भी प्रकार की होती है, किन्तु कुटिल मन वाले मनुष्य की वात चीत कुछ और ही ढंग की होती है । अर्थात् सज्जन और कुटिल का भेद उनकी वात चीत के ढंग से मालुम पड़ जाता है ।

मनस्यन्यदिति-अन्वय—दुरात्मनाम् मनसि अन्यत्, वचसि अन्यत्, कर्मणि अन्यत् (भवति) महात्मनाम् मनसि एकम् वचसि एकम् कर्मणि च एकम् भवति ।

अनुवाद—दुर्जन लोगों के मन में तो कुछ और रहता है, वात चीत में वे कुछ और ही कहते हैं और काम में कुछ और ही, अर्थात् वे कुछ सोचते हैं, कुछ कहते हैं और करते कुछ और ही हैं, उनके मन वाणी तथा काम में भिन्नता रहती है, किन्तु सत्पुरुषों की वाणी मन एवं काम में एकरूपता होती है वे जो कुछ सोचते वही कहते हैं और वही करते भी हैं ।

तदिति-शब्दार्थ—मैत्र्यम्=मित्रता को, सन्तोष्य=सन्तुष्ट करके, विवरम्=बिल में, ततः प्रभृति=तब से लेकर, अन्योन्याहारप्रदानेन=परस्पर एक दूसरे को भोजन देने से, कुशल प्रश्नैः=कुशल क्षेम पूछने से, विश्रम्भालापैः=

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ततः प्रभृति तयो रन्योन्याहारप्रदानेन, कुशलप्रश्नै विश्रम्भालापैः कालोऽतिवर्तते ।

एकदा लघुपतनको हिरण्यक माह —सखे ! कष्टतरलभ्याहारमिदं स्थानं परित्यज्य स्थानान्तरं गन्तु मिच्छामि । हिरण्यकोऽवदत्—

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥१०५॥

काको ब्रूते—सखे ! कापुरुष वचन मेतत्, यतः—

स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः ।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः ॥१०६॥

विश्वस्त वार्तालापों से, कालोऽतिवर्तते=समय बीतने लगा। कष्टतरलभ्याहारम्=जहाँ पर कष्ट से भोजन मिल सके ।

अनुवाद—तो जैसी आपकी इच्छा है वैसा ही हो, ऐसा कह कर हिरण्यक ने मित्रता करके विशेष प्रकार के भोजन से कौवे को सन्तुष्ट करके, अपने बिल में चला गया । कौवा भी अपने स्थान को गया ।

तब से लेकर, परस्पर भोजन प्रदान कर, कुशल प्रश्न पूछ कर और विश्वस्त वार्तालाप कर दोनों का समय बीतने लगा ।

एक बार लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा मित्र ! कठिनता से आहार मिलने योग्य इस स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाना चाहता हूँ, हिरण्यक ने कहा—

स्थानेति—स्थानभ्रष्टाः दन्ताः केशाः नखाः नराः न शोभन्ते, इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानम् न परित्यजेत् ।

शब्दार्थ—स्थान भ्रष्टाः=अपने स्थान से हट कर, न शोभन्ते=शोभा या आदर नहीं पाते ।

अनुवाद—अपने निश्चित स्थान से हट कर, दाँत, नख, केश और मनुष्य आदर नहीं पाते, यह जानकर बुद्धिमान् मनुष्य को अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहिए ।

कौवे ने कहा—मित्र ! कायर पुरुषों का यह कथन है—क्योंकि—

स्थानेति—सिंहाः सत्पुरुषाः गजाः स्थानम् उत्सृज्य गच्छन्ति (किन्तु) काकाः कापुरुषाः मृगाः तत्रैव निधनम् यान्ति ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च--

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा,
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते वाहुप्रतापार्जितम् ।
यद दंष्ट्रा नख लाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरै स्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ।।१०७।।

शब्दार्थ—उत्सृज्य=छोड़कर, निधनं यान्ति=मर जाते हैं।

अनुवाद—सिंह, सत्पुरुष एवं गज तो अपने स्थान को छोड़ कर (जहाँ सब प्रकार की सुविधा होती है वहाँ) चले जाते हैं, किन्तु-कौवे, कायर पुरुष तथा मृग वहीं पर जहाँ वे उत्पन्न हुए थे और जहाँ अपना प्रथम निवास स्थान वनाया था) मर जाते हैं, उस स्थान को छोड़ कर नहीं जाते, अर्थात् जीविका के साधन के अभाव में भी स्थान को छोड़कर न जाना कायरता है उद्यम शील व्यक्ति स्थानान्तर में जाकर जीविकोपार्जन कर सुखी होते हैं।

किञ्च—और भी—

क इति—अन्वय—मनस्विनः वीरस्य स्वविषयः कः, विदेशः वा कः स्मृतः। (स) यम् देशम् श्रयते तम् एव वाहुप्रतापार्जितम् कुरुते। दंष्ट्रा नख लाङ्गुलप्रहरणः सिंहः यद् वनम् गाहते, तस्मिन् एव हतद्विपेन्द्ररुधिरैः आत्मनः तृष्णाम छिनत्ति।

शब्दार्थ—मनस्विनः=उदारचित्त या सामर्थ्यवान् का, स्वविषयः=अपना देश, स्मृतः=कहा गया है। श्रयते=आश्रय लेता है, या पहुँचता है, वाहुप्रतापर्जितम कुरुते=भुजाओं के बल से स्वाधीन वना लेता है। दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः=दाढ़ नख और पूँछ रूप अस्त्रों वाला, गाहते=प्रविष्ट होता है। हतद्विपेन्द्ररुधिरैः=मारे गये गजराजों के रक्त से, आत्मनः तृष्णाम् छिनत्ति =अपनी प्यास बुझाता है।

अनुवाद—सामर्थ्यशाली वीर पुरुष का कौन सा अपना देश अथवा कौन सा परदेश होता है। अर्थात् कोई नहीं, उसका कोई एक न तो अपना ही देश होता है, और न परदेश ही वह तो जिस देश में पहुँचता है, उसी को अपने वाहुवल से स्वाधीन वना लेता है। जैसे, दाढ़ नख पूँछ रूप अस्त्रों वाला सिंह जिस वन में प्रदेश करता है, उस वन में ही वह (अपने द्वारा)

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

हिरण्यको ब्रूते—मित्र ! क्व गन्तव्यम् ? यथा चोक्तम्—

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।
नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ।।१०८।।

वायसो ब्रूते—अस्ति सुनिरुपितं स्थानम् । हिरण्यकोऽवदत्—किं तत्, वायसो ब्रूते—अस्ति दण्डकारण्ये कर्पूरगौराभिधानं सरः ।

मारे गये गजराजों के रक्त से अपनी प्यास बुझाता है ।

बलवान् पुरुष जिस स्थान पर पहुँचता है उसे ही अपने पराक्रम से जीत कर अपना बना लेता है, अतः उसका न तो कोई स्वदेश होता है और न विदेश । वनराज सिंह जिस वन में प्रवेश करता है उसी वन का वह अधिपति बन जाता है, क्योंकि वह शक्तिशाली होता है, पृथिवी पर अधिकार वीर पुरुषों का होता है, दीन-दुर्बलों का नहीं "वीरभोग्या वसुन्धरा ।"

हिरण्यक इति—हिरण्यक कहता है मित्र ! कहाँ जाना है ?

जैसा कि कहा गया है—

चलतीति-अन्वय—बुद्धिमान् एकेन पादेन चलति, एकेन तिष्ठति, परम् स्थानम् असमीक्ष्य पूर्वम् आयतनम् न त्यजेत् ।

शब्दार्थ—एकेन पादेन चलति एकेन तिष्ठति=एक पैर से चलता है और एक पैर से खड़ा रहता है अर्थात् सर्वथा सोच विचार करके ही किसी काम में प्रवृत्त होता है । परम् स्थानम् असमीक्ष्य=आगे के स्थान को भली भाँति न देख करके, पूर्वम् आयतनम्=पहले स्थान को ।

अनुवाद—बुद्धिमान् पुरुष एक पैर से चलता है और एक से खड़ा रहता है, अर्थात् सोच विचार कर ही किसी कार्य में प्रवृत्त होता है, दूसरे आगे के स्थान को भली भाँति न देख कर अपने प्रथम स्थान को न छोड़ना चाहिये ।

अर्थात् जब आगे का स्थान निश्चित हो जाय उसी समय प्रथम स्थान का त्याग करे, भली-भाँति सोच समझ कर कार्य करने वाला सदा सफल होता है, असमीक्ष्यकारी दुःख का ही अनुभव करता है ।

वायस इतिः-शब्दार्थ—सुनिरुपितम्=जिसका पूर्ण रूप से निश्चय कर लिया गया है । कर्पूरगौराभिधानम्=कर्पूर गौर नामक, सरः=सरोवर,

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तत्र चिरकालोपार्जितः प्रिय सुहृन्मे मन्थराभिधानः कच्छपः सहजधार्मिकः प्रतिवसति । यतः—

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
धर्मे स्वीय मनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः ॥१०९॥

चिरकालोपार्जितः=चिरकाल से प्राप्त–बहुत पुराना, प्रियसुहृत्=प्रिय मित्र, मन्थराभिधानः=मन्थर नामक, सहज धार्मिकः=स्वभाव से ही धर्माचरण करने वाला।

अनुवाद—कौवा कहता है कि पूर्णतः निश्चित किया हुआ स्थान है, हिरण्यक ने कहा—वह कौन सा ? कौवा कहता है कि दण्डक नामक वन में कर्पूर-गौर नामक सरोवर है, वहाँ पर बड़ा पुराना प्रिय मित्र, स्वभाव से ही धर्माचरणशील, मन्थर नामक कच्छप (कूर्म) रहता है।

यतः—क्योंकि—

परोपदेश इति-अन्वय—सर्वेषाम् नृणाम् परोपदेशे पाण्डित्यम् सुकरम्। कस्य चित् तु महात्मनः धर्मे स्वीयम् अनुष्ठानम् (भवति)।

शब्दार्थ=परोपदेशे=दूसरों को उपदेश देने में, पाण्डित्यम्=निपुणता अथवा चतुरता, सुकरम्=सरल, तु=किन्तु, कस्यचित् महात्मनः=किसी ही सत्पुरुष का, धर्मे स्वीयम् अनुष्ठानम्=अपने स्वकीय धार्मिक अनुष्ठान का आचरण अर्थात् अपने कथनानुसार धार्मिक आचरण भी करना।

अनुवाद—दूसरों को उपदेश देने में चतुरता दिखाना सभी मनुष्यों के लिये सरल होता है, किन्तु (अपने कथनानुसार या अपने उपदेश के अनुसार) धर्म के विषय में स्वयं वैसा ही करना अर्थात् धर्माचरण करना तो किसी ही सत्पुरुष का काम होता है।

दूसरों को उपदेश देना जितना सरल होता है, उसका स्वयं आचरण करना उतना ही कठिन होता है यही कारण है कि धर्म का उपदेश देने वाले तो बहुत मिल जाते हैं, पर स्वयं धर्म का आचरण करने वाले दुर्लभ ही होते हैं।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

स च भोजन विशेषैर्मां संवर्द्धयिष्यति । हिरण्यकोऽप्याह— तत्किमत्रावस्थाय मया कर्तव्यम् । यतः—

यस्मिन् देशे न सम्मानो, न वृत्ति र्न च बान्धवः ।
न च विद्यागमः कश्चित्तं देशं परिवर्जयेत् ॥११०॥

किञ्च—

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संस्थितिम् ॥१११॥

अपरञ्च—

स चेति-शब्दार्थ—भोजनविशेषैः=विविध प्रकार के मत्स्य-मांसादि भोजनों से, सम्वर्द्धयिष्यति=सत्कार एवं पालन करेगा। तत् मया अत्र अवस्थाय किं कर्तव्यम्=तो मुझे फिर यहाँ रह कर क्या करना है ?

अनुवाद—और वह कच्छप विविध प्रकार के मत्स्य मांस आदि भोजनों से मेरा सम्मान और पालन करेगा। हिरण्यक ने भी कहा— तो फिर मुझे यहाँ रह कर क्या करना है अर्थात् तब मेरा भी यहाँ रहना व्यर्थ है । क्योंकि—

यस्मिन्निति-अन्वय— यस्मिन् देशे सम्मानः न, वृत्तिः न, वान्धवः च न, कश्चित् विद्यागमः च न (अस्ति) तम् देशम् परिवर्जयेत् ।

शब्दार्थ—वृत्तिः=जीविका, विद्यागमः=विद्या की प्राप्ति ।

अनुवाद—जिस देश में (अपना) आदर नहीं, जीविका का साधन नहीं वन्धुजन नहीं, और विद्या की भी कोई प्राप्ति नहीं है. उस देश को छोड़ देना चाहिए ।

किञ्च—और भी—

धनिक इति अन्वय—यत्र धनिकः श्रोत्रियः राजा नदी पञ्चमः तु वैद्यः, (एते) पञ्च न विद्यन्ते तत्र संस्थितिम् न कुर्यात् ।

शब्दार्थ—धनिकः=धनवान् पुरुष, श्रोत्रियः=वेदपाठी, तत्र संस्थितिम् न कुर्यात्=वहाँ निवास न करना चाहिये ।

अनुवाद—जहाँ धनी पुरुष, वेदपाठी, राजा, नदी और पाँचवा वैद्य (चिकित्सक) ये पाँच नहीं रहते, हैं, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये ।

अपरञ्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते, न कुर्यात्तत्र संस्थितिम् ॥११२॥

अन्यच्च—

तत्र मित्र ! न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।
ऋणदाता च वैद्यश्च, श्रोत्रियः सजला नदी ॥११३॥

अतो मामपि तत्र नय । वायसोऽवदत्—एवमस्तु ।

अथ वायसस्तत्र तेन मित्रेण सह विचित्रालापैः सुखेन तस्य सरसः समीपं ययौ । ततो मन्थरो दूरादेवालोक्य लघुपतनकस्य यथोचित मातिथ्यं विधाय मूषिकस्याप्यतिथिसत्कारं चकार । यतः—

लोकेति-अन्वय—यत्र लोकयात्रा भयम्, लज्जा, दाक्षिण्यम्, त्यागशीलता पञ्च न विद्यन्ते, तत्र संस्थितिम् न कुर्यात् ।

शब्दार्थ—लोकयात्रा=जीवन यापन का उपाय अर्थात् जीविका का साधन, भयम्=राज्यशासन आदि से भय, लज्जा=लोक लज्जा अर्थात् पापाचरण आदि निकृष्ट कामों से लज्जा, दाक्षिण्यम्=उदारता सहानुभूति, त्यागशीलता=दानशीलता ।

अनुवाद—जहाँ जीवन यापन का साधन अर्थात् जीविका साधन, राज्य शासन आदि से भय, नीच कर्मों से लज्जा, उदारता और दानशीलता (ये) पाँच न हों वहाँ निवास नहीं करना चाहिये ।

तत्रेति-अन्वय—मित्र ! यत्र ऋणदाता वैद्यः च श्रोत्रियः च सजला नदी च (इति) चतुष्टयम् नास्ति तत्र न वस्तव्यम् ।

शब्दार्थ—श्रोत्रियः=वेदपाठी, इति चतुष्टयम्=ये चार, वस्तव्यम्=रहना चाहिये ।

अनुवाद—हे मित्र ! जहाँ ऋण देने वाला, वैद्य और वेदपाठी तथा जलपूर्ण नदी, ये चार न हों वहाँ नहीं रहना चाहिये ।

अथ-इति-अनुवाद—इसलिये मुझे भी वहाँ ले चलो । कौवे ने कहा—ऐसा ही हो ।

अथेति-शब्दार्थ—विचित्रालापैः=विविध प्रकार की मनोरम चर्चाओं द्वारा, ययौ=गया, यथोचितम् आतिथ्यम्=वैसा अतिथि सत्कार जैसा कि

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः ।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥११४॥
गुरुरग्नि द्विजातीनां, वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां, सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥११५॥

अपरञ्च—

उसके लिए उचित था ।

अनुवाद—इसके वाद कौवा उस मित्र के साथ विविध प्रकार की मनोरम चर्चाओं के साथ सुख पूर्वक वहाँ उस सरोवर के पास पहुँच गया, तव मन्थरक ने दूर से ही देख कर लघुपतनक का यथोचित आतिथ्य करके मूषिक का भी अतिथि सत्कार किया ।

क्योंकि—

वाल इति-अन्वय—गृहम् आगतः वालः वा यदि वा वृद्धः युवा वा, तस्य पूजा विधातव्या, (यतः) अभ्यागतः सर्वस्य गुरुः (भवति) ।

शब्दार्थ—गृहमागतः=घर में आया हुआ, वा=अथवा, युवा=युवक, विधातव्या=करनी चाहिये, अभ्यागतः=अतिथि ।

अनुवाद—(अपने) घर आया हुआ, चाहे वह वालक हो. वृद्ध हो अथवा युवक अतिथि हो, उसकी पूजा करनी चाहिए, क्योंकि अतिथि सवका ही गुरु (पूज्य) होता है ।

गुरुरिति-अन्वय—अग्निः द्विजातीनाम् गुरुः, ब्राह्मणः वर्णानाम् गुरुः, पतिः (एव) एकः स्त्रीणाम् गुरुः, अभ्यागतः सर्वस्य गुरुः (भवति)

शब्दार्थ—द्विजातीनाम्=ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों का, गुरुः=पूजनीय, वर्णानाम्=चारों ही वर्णों का ।

अनुवाद—द्विजातियों का अग्नि (ही) गुरु अर्थात् पूजनीय या सेवनीय होता है । ब्राह्मण चारों ही वर्णों का गुरु (पूज्य) होता है । केवल पति ही एक स्त्रियों का गुरु अर्थात् पूज्य होता है, किन्तु अतिथि सवका ही गुरू होता है ।

अपरञ्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः ।
पूजनीयो यथायोग्य सर्वदेवमयोऽतिथिः ॥११६॥

वायसोऽवदत्—सखे ! मन्थर ! सविशेषपूजामस्मै विधेहि । यतोऽयं पुण्यकर्मणां धुरीणः कारुण्यरत्नाकरो हिरण्यकनामा मूषिकराजः । एतस्य गुणस्तुतिं जिह्वासहस्रद्वयेनापि सर्पराजो न कदाचित् कथयितुं समर्थः स्यात् । इत्युक्त्वा चित्रग्रीवोपाख्यानं वर्णितवान् ।

उत्तमस्येति-अन्वय—उत्तमस्य अपि वर्णस्य गृहम् आगतः नीचः अपि यथायोग्यम् पूजनीयः (भवति) (यतः) अतिथिः सर्वदेवमयः (भवति) ।

शब्दार्थ—उत्तमस्यापि वर्णस्य=श्रेष्ठ वर्ण अर्थात् ब्राह्मण आदि के, गृहमागतः=घर में आया हुआ, नीचः अपि=नीच वर्ण का भी व्यक्ति, यथायोग्यम् पूजनीयः=यथोचित पूजा के योग्य, सर्वदेवमयः=सभी देवताओं का निवास स्थान अर्थात् अतिथि में सभी देवताओं का निवास रहता है ।

अनुवाद—श्रेष्ठ वर्ण अर्थात् ब्राह्मण आदि के घर पर आया हुआ, नीच वर्ण का भी कोई व्यक्ति उसके द्वारा यथोचित पूजा के योग्य होता है, क्योंकि अतिथि में सभी देवताओं का निवास होता है अर्थात् अतिथि सर्वदेव रूप होता है ।

तात्पर्य यह कि यदि उच्चवर्ण वाले भी मनुष्य के घर पर कोई नीच वर्ण का भी मनुष्य अतिथि रूप में आये, तो वह उस उच्च वर्ण वाले मनुष्य के द्वारा भी यथोचित पूजा के योग्य होता है अर्थात् उसका यथाविधि अतिथि सत्कार किया जाना चाहिए । इसका कारण यह है कि अतिथि में वह चाहे जिस किसी भी वर्ण का क्यों न हो, सभी देवताओं का वास रहता है, अतिथि सर्वदेव स्वरूप होता है अतएव वह सब के द्वारा पूजनीय होता है, अतिथि सत्कार में वर्णगत उच्चता या नीचता नहीं देखना चाहिए ।

वायस इति शब्दार्थ विधेहि=करो, पुण्यकर्मणाम् धुरीणः=पुण्य कर्म वाले लोगों में श्रेष्ठ, कारुण्यरत्नाकरः=करुणा का सागर अर्थात् महा कारुणिक, गुणस्तुतिम्=गुणों की प्रशंसा को, जिह्वासहस्रद्वयेनापि=दो हजार जीभों से भी (शेषनाग के एक हजार मुख माने गये हैं, सर्प सभी दो जीभ वाले होते ही हैं इस प्रकार शेषनाग के दो सहस्र जिह्वा मानी गईं हैं ।)

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मन्थरः सादरं हिरण्यकं सम्पूज्याह—भद्र ! आत्मनो निर्जन-वनागमनकारण माख्यातु मर्हसि। हिरण्यकोऽवदत् कथयामि श्रूयताम्।

अस्ति चम्पकाभिधानायां नगर्यां परिव्राजकावसथः। तत्र चूडा कर्णो नाम परिव्राजकः प्रतिवसति। स च भोजनावशिष्टभिक्षान्न-सहितं भिक्षापात्रं नागदन्तकेऽवस्थाप्य स्वपिति, अहं च तदन्न मुत्प्लुत्य प्रत्यहं भक्षयाभि। अनन्तरं तस्य प्रियसुहृद् वीणाकर्णो नाम परिव्राजकः समायातः। तेन सह नानाकथाप्रसंगावस्थितो मम

उपाख्यानम्-वृत्तान्त।

अनुवाद—कौवे ने कहा—मित्र ! मन्थर ! इस मूषिक राज की पूजा विशेष रूप से करो, क्योंकि यह पुण्यात्मा जनों में अग्रणी, दयासागर मूषिकों का राजा हिरण्यक नामक मूषिक है। शेषनाग भी दो सहस्र जिह्वाओं से भी इसके गुणों की प्रशंसा करने में कदाचित् समर्थ न हो सकें। यह कहकर उसने चित्रग्रीव के वृत्तान्त का वर्णन किया।

मन्थर इति शब्दार्थ—सम्पूज्य=भली भाँति पूजा करके, आत्मनो निर्जन वनागमनकारणम्=अपना निर्जन वन में आने का कारण, आख्यातुम् अर्हसि=कहने योग्य हो।

अनुवाद—मन्थर ने आदरपूर्वक हिरण्यक की भली भाँति पूजा करके कहा—भद्र ! अपना निर्जन वन में आने का कारण बतलाइये। हिरण्यक ने कहा—कहता हूँ—सुनिए।

अस्तीति-शब्दार्थ—चम्पकाभिधानायाम्='चम्पक' नाम की, नगर्यां=नगरी में, परिव्राजकावसथः=सन्यासियों का आवसथ अर्थात् आयतन या मठ अथवा आश्रम। भोजनावशिष्टभिक्षान्नसहितम्=भोजन से बचे हुए भिक्षा के अन्न के साथ, भिक्षापात्रम्=भिक्षा के पात्र (वर्तन) को, नागदन्ते=खूँटी पर, अवस्थाप्य=रख कर अथवा लटका कर, स्वपिति=सोता है। उत्प्लुत्य=उछल कर, प्रत्यहम्=प्रतिदिन, अनन्तरम्=इसके याद, नाना-कथाप्रसगावस्थितः=नाना प्रकार की कथाओं के प्रसंग में दत्तचित्त होकर

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

त्रासार्थं जर्जरवंशखण्डेन चूड़ाकर्णो भूमि मताडयत्। तं तथाविधं दृष्ट्वा वीणाकर्ण उवाच—सखे ! किमिति मम कथाविरक्तोऽन्यासक्तो भवान् ?

यतः—

मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः, कथानुरागो मधुरा च वाणी ।
स्नेहोऽधिकः सम्भ्रमदर्शनञ्च, सदानुरक्तस्य जनस्य लक्षणम् ।।११७।।

भी, अर्थात् विविधकथा प्रसंगों में संलग्न होकर भी। त्रासार्थम्=डराने के लिये, जर्जरवंशखण्डेन=टूटे फटे बाँस के टुकड़े से, भूमिमताडयत्=पृथ्वी को पीटता था। तथाविधम्=उस प्रकार का, कथाविरक्तः=कथा से उदासीन होकर। अन्यासक्तो भवान्=आप दूसरी ओर दत्तचित्त हैं।

अनुवाद—चम्पक नाम की नगरी में सन्यासियों का आश्रम था। वहाँ 'चूड़ाकर्ण, इस नाम से प्रसिद्ध एक संन्यासी रहता था। और भोजन से बचे भिक्षा के अन्न के साथ भिक्षा पात्र को खूँटी पर लटका कर सोता था। और मैं प्रतिदिन उस अन्न को उछल कर खा लेता था इसके वाद उसका प्रिय मित्र वीणाकर्ण नाम से प्रसिद्ध सन्यासी (वहाँ) आया, उसके साथ अनेक विध कथा प्रसंगों में संलग्न होकर भी वह मुझे डराने के लिये टूट फटे बाँस के टुकड़े से पृथ्वी पर पीटता था. उसको उस प्रकार का देख कर वीणा कर्ण ने ने कहा, यह क्या वात है (किमिति) कि मित्र ! मेरी कथा से उदासीन होकर आप दूसरी ओर संलग्न हैं।

यतः—क्योंकि—

मुखमिति-अन्वय—मुखम् प्रसन्नम्, दृष्टिः च विमला, कथानुरागः, वाणी च मधुरा, स्नेहः अधिकः सम्भ्रमदर्शनम् च सदा अनुरक्तस्य जनस्य लक्षणम्।

शब्दार्थ—मुखं प्रसन्नम्=मुख का प्रसन्न होना अर्थात् शोकादि के चिन्हों से रहित होकर प्रफुल्लित होना, दृष्टि का निर्मल होना अर्थात देखने में भ्रूभङ्ग आदि क्रोध सूचक चिन्हों का न होना, कथानुरागः=कथा वार्ता कहने में उत्साह का होना, वाणी च मधुरा=कटु वचन शून्य मनोरञ्जिनी वाणी का होना, स्नेहः=प्रेम, अधिकः=अधिक होना, सम्भ्रमदर्शनम्=तृष्णा पूर्वक पुनः पुनः देखना। (ये छः) सदा स्नेह रखने वाले (सदानुरक्तस्य)।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अद्दष्टिदानं कृतपूर्वनाशन ममाननं दुश्चरितानुकीर्तनम् ।
कथा प्रसंगेन च नामविस्मृति र्विरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम् ॥११८॥

चूड़ाकर्णेन उक्तम् 'भद्र !' नाहं विरक्तः, किन्तु पश्यायं मूषिको ममापकारी सदा पात्रस्थं भिक्षान्नम् उत्प्लुत्य भक्षयति । वीणाकर्णो नागदन्त मवलोक्याह—कथमयं मूषिकः स्वल्पवलोऽपि एतावद् दूर मुत्पतति ? तदत्र केनापि मूषिकवलोपस्तम्भेन कारणेन भवितव्यम् ।

अनुवाद—मुख का प्रसन्न होना, दृष्टि की निर्मलता, कथा में अनुराग, वाणी की मधुरता, अत्यधिक स्नेह और सतृष्ण दृष्टि ये छः सदा अनुराग रखने वाले मनुष्य के लक्षण होते हैं ।

वार्तालाप करते समय यदि उक्त छः बातें किसी व्यक्ति में देखी जांय तो समझना चाहिये कि वह अपने साथ कथा वार्ता करने वाले व्यक्ति पर सदा प्रेम रखता है ।

अद्दष्टीति-अन्वय—अद्दष्टिदानम्, कृतपूर्वनाशनम्, अमाननम्, दुश्चरितानुकीर्तिनम्, कथाप्रसंगेन च नामविस्मृतिः. विरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम् ।

शब्दार्थ—अद्दष्टिदानम्=दृष्टि न देना अर्थात् कुछ कहने या पूँछने पर भी सामने न देखना, कृतपूर्वनाशनम्=पहले किये गये उपकार का स्वीकार न करना, अमाननम्=आदर सत्कार न करना, दुश्चरितानुकीर्तनम्=दुराचरणों को प्रकाशित करना अर्थात् बुराइयों का वार वार वर्णन करना, कथा प्रसंगेन च नाम विस्मृतिः=प्रासंगिक वार्तालाप के अवसर पर व्यक्ति स्थान आदि का नाम भूल जाना (ये पाँच) लक्षण, विरक्तभावस्य जनस्य=उदासीन अथवा अननुरक्त मनुष्य के होते हैं ।

अनुवाद—दृष्टि न देना अर्थात् कुछ पूँछने या कहने पर सामने न देखना, पहले किये गये उपकार को न मानना, आदर सत्कार न करना बुराइयों को प्रकाशित करना तथा वार्तालाप के प्रसंग में स्थानादि के नाम को भूल जाना, ये पाँच उदासीन या अननुरक्त जन के लक्षण हैं ।

चूड़ाकर्णेनेति-शब्दार्थ—ममापकारी=मेरा अपकार करने वाला, पात्रस्थम् =भिक्षापात्र में रखे हुये, स्वल्पवलः अपि=अल्पशक्ति वाला होकर भी, एतावद्

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तथा चोक्तम्—

अकस्माद् युवती वृद्धं केशेष्वाकृष्य चुम्बति।
पतिं निर्दयमालिङ्ग्य हेतुरत्र भविष्यति ॥११६॥

चूड़ाकर्णः पृच्छति—कथमेतत्-वीणाकर्णः कथयति—

अस्ति गौडीये कौशाम्वी नाम नगरी। तस्यां चन्दनदासनामा वणिङ् महाधनो निवसति। तेन पश्चिमे वयसि वर्तमानेन कामाधिष्ठितचेतसा धनदर्पाल्लीलावती नामवणिक् पुत्री परिणीता। सा

दूरम् उत्पतति=इतनी दूर उछल जाता है। तदत्र केनापि मूषिक वलोपस्तम्भेन कारणेन भवितव्यम्=तो इसमें कोई चूहे के वल के आधार का कारण (अवश्य) होगा।

अनुवाद—चूड़ाकर्ण ने कहा—भद्र! मैं उदासीन नहीं हूँ, किन्तु देखो यह मेरा अपकारी चूहा सदा भिक्षापात्र में रखे भिक्षान्न को उछल कर खा लेता है, वीणाकर्ण ने नागदन्त को देखकर कहा—अल्पशक्ति वाला भी यह चूहा किस प्रकार इतनी दूर उछलता है। तो इसमें चूहे के वल के आधार का कोई अवश्य कारण होगा। क्योंकि—

तथा च उक्तम्—और जैसा कि कहा गया है—

अकस्मादिति-अन्वय—युवती अकस्मात् वृद्धम् पतिम् निर्दयम् आलिङ्ग्य, केशेषु आकृष्य चुम्बति, अत्र हेतुः भविष्यति।

शब्दार्थ—युवती—यौवनवती स्त्री, वृद्धं पतिं निर्दयम् आलिङ्ग्य=वृद्ध पति का गाढालिङ्गन करके, केशेषु आकृष्य=वाल खींचकर, चुम्वन करती है।

अनुवाद—(यदि) एक युवती अपने वृद्ध पति का गाढालिङ्गन कर, वाल पकड़ कर चुम्वन करती है तो इसमें कोई कारण अवश्य होगा।

चूड़ाकर्ण इति—चूड़ाकर्ण पूँछता है—यह कैसे, वीणाकर्ण कहता है—

अस्तीति-शब्दार्थ—गौड़ीये=गौड़ देश में—(गौड़ देश बंगाल का एक सूवा था) तेन पश्चिमे वयसि वर्तमानेन=वृद्धावस्था में वर्तमान उसने, कामाधिष्ठितचेतसा=काम द्वारा वशीकृत मन से, अर्थात् कामासक्तचित्त होकर, धनदर्पात्=धन के घमण्ड से, परिणीता=विवाह किया। सा च मकर-

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

च मकरकेतो र्विजय वैजयन्तीव यौवनवती बभूव । स च वृद्धपतिः तस्याः सन्तोषाय नाभवत् । यतः—

शशिनीव हिमार्तानां घर्मार्तानां रवाविव ।
मनो न रमते स्त्रीणां जराजीर्णेन्द्रिये पतौ ॥१२०॥

अन्यच्च —

पलितेषु हि दृष्टेषु पुंसः का नाम कामिता ।
भैषज्य मिव मन्यन्ते यदन्यमनसः स्त्रियः ॥१२१॥

केतो र्विजय वैजयन्ती इव=और कामदेव की विजय पताका के समान वही ।

अनुवाद—गौड़ प्रदेश में कौशाम्बी नाम की नगरी थी, उसमें चन्दनदास नाम का महाधनी वणिक् रहता था । वृद्धावस्था में वर्तमान उसने कामासक्त चित्त होकर धन के गर्व से लीलावती नाम की वणिक् पुत्री से विवाह किया और कामदेव की विजय पताका के समान वह यौवनवती हुई, किन्तु वह (उसका) वृद्ध पति उसके सन्तोष के लिये नहीं हुआ—यतः=क्योंकि—

शशिनीति-अन्वय—हिमार्तानाम् (मनः) शशिनि इव घ र्तीनां (मनः) र वौ इव, स्त्रीणाम् मनः जराजीर्णेन्द्रिये पतौ न रमते ।

शब्दार्थ—हिमार्तानाम्=जाड़े या पाले से पीडित जनों का (मन) शशिनि इव=जैसे चन्द्रमा पर, घर्मार्तानाम्=धूप से पीड़ित जनों का मन, रवौ इव=जैसे सूर्य पर, जराजीर्णेन्द्रिये पतौ=बुढ़ापे से शिथिल इन्द्रियों वाले पति पर, न रमते=आनन्दित नहीं होता ।

अनुवाद—जैसे पाले से जनों का मन चन्द्रमा पर, और धूप से पीड़ित जनों का मन सूर्य पर आनन्दित नहीं होता उसी प्रकार बुढ़ापे से शिथिल इन्द्रियों वाले पति पर स्त्रियों का मन आनन्दित नहीं होता ।

अन्यच्च—और भी—

पलितेष्विति-अन्वय—हि पालतेषु दृष्टेषु पुंसः कामिता नाम का, यत् अन्य मनसः स्त्रियः (तम्) भैषज्यम् इव मन्यन्ते ।

शब्दार्थ—पलितेषु दृष्टेषु=पके हुये श्वेत बालों के दिखाई पड़ने पर, पुंसः कामिता नाम का=फिर पुरुष की कामेच्छा (विषय भोगेच्छा) कैसी ? यत्-यतः=क्योंकि, अन्यमनसः=दूसरों पर आसक्त चित्त वाली, भैषज्यम् इव

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

स च वृद्धपतिः तस्यामतीवानुरागवान् । यतः—

धनाशा जीविताशा च गुर्वी प्राणभृतां सदा ।
वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥१२२॥

नोपभोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयाञ्जरी ।
अस्थि निर्दशनः श्वेव जिह्वया लेढि केवलम् ॥१२३॥

=औषधि के तुल्य ।

अनुवाद—बालों के पक कर श्वेत दृष्टिगत होने पर फिर पुरुष की भोगेच्छा कैसी ? अर्थात् वृद्धता सूचक श्वेत केशों के हो जाने पर पुरुष यदि कामोपभोग की इच्छा करता है तो यह उसकी विडम्बना मात्र है, क्योंकि इस स्थिति में अर्थात् पति वृद्ध होने पर अन्यासक्त चित्त वाली स्त्रियाँ उसे केवल औषधि तुल्य ही मानती हैं ।

स-चेति-अनुवाद—और यह वृद्ध पति उस पर अत्यधिक अनुरागी हो गया । यतः—क्योंकि—

धनाशेति अन्वय—प्राणभृताम् धनाशा जीविताशा च सदा गुर्वी (भवति) वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्यः अपि गरीयसी (भवति) ।

शब्दार्थ—प्राणभृताम्=प्राणियों की, धनाशा=धन की आशा, जीविताशा=जीवन की आशा, गुर्वी=महती प्रबला वा, गरीयसी=प्रेयसी ।

अनुवाद—प्राणियों में (सामान्यतः) धन की आशा और जीवित रहने की आशा प्रबल होती है, किन्तु वृद्ध पुरुष के लिए उसकी युवती पत्नी उसके प्राणों से भी अधिक प्रेयसी होती है ।

सामान्यतः सभी जीवों में जीवित रहने की इच्छा सब से अधिक प्रबल होती है, अपने प्राणों से प्रिय, उन्हें अन्य कोई वस्तु नहीं होती, किन्तु वृद्ध पुरुष अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय अपनी तरुणी पत्नी को मानता है, वह उसके सुख के लिए अपने प्राणों को भी दे सकता है ।

नोपभोक्तुमिति-अन्वय—जरी विषयान् न उपभोक्तुम् शक्नोति, नापि-त्यक्तुम् शक्नोति । निर्दशनः श्वा अस्थि इव केवलम् जिह्वया लेढि ।

शब्दार्थ—जरी=वृद्धजन, विषयान्=काम भोगों को, उपभोक्तुम्=भोगने के लिए, नापि=और न, शक्नोति=समर्थ होता है, निर्दशनः=दाँतों

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथ सा लीलावती यौवनदर्पादतिक्रान्तकुलमर्यादा केनापि वणिक्पुत्रेण सहानुरागवती बभूव । यतः—

स्वातन्त्र्यं पितृमन्दिरे निवसति यात्रोत्सवे संगति—
गोंष्ठी पूरुषसन्निधावनियमो वासो विदेशे तथा ।
संसर्गः सह पुंश्चलीभिरसकृद् वृत्ते निजायाः क्षतिः,
पत्यु वार्धक मीर्षितं प्रवसनं नाशस्य हेतुः स्त्रियाः ॥१२४॥

से रहित, श्वा=कुत्ता, अस्थि=हड्डी को, जिह्वया=जीभ से, लेढि=चाटता है ।

अनुवाद—वृद्धजन न तो विषय भोगों को भोगने के लिए न उन्हें त्यागने के लिए ही समर्थ होता है, अपितु वह दन्त विहीन कुत्ता जैसे हड्डी को केवल जीभ से चाटता ही रहता है उसके वास्तविक रस को नहीं पाता, ठीक उसी प्रकार से वृद्धजन तरुणी के साथ व्यवहार करता है उसका न तो वह भोग ही कर सकता है और न उसका त्याग ही ।

अथेति-शब्दार्थ—यौवनदर्पात्=युवावस्था के घमण्ड के कारण, अतिक्रान्तकुलमर्यादा=अपने कुल की मर्यादा का उल्लंघन करने वाली, अनुरागवती=प्रेम करने वाली ।

अनुवाद—इसके बाद वह लीलावती, अपने यौवन के घमण्ड के कारण, कुल मर्यादा का परित्याग करने वाली होकर किसी वणिक पुत्र के साथ अनुराग करने लगी ।

यतः—क्योंकि—

स्वातन्त्र्यमिति-अन्वय—स्वातन्त्र्यम्, पितृमन्दिरे निवसतिः, यात्रोत्सवे संगतिः, पूरुषसन्निधौ गोष्ठीः अनियमः, तथा विदेशे वासः, पुंश्चलीभिः सह संसर्गः, निजायाः वृत्तेः असकृद् क्षतिः, पत्युः वार्धकम्, ईर्षितम्, प्रवसनम्, स्त्रियाः नाशस्य हेतुः ।

शब्दार्थ—स्वातन्त्र्यम्=स्वतन्त्रता, पितृमन्दिरे निवसतिः=अपने पिता के घर पर ही (चिरकाल तक) रहना, यात्रोत्सवे=यात्रा और उत्सव के समय मेले तमाशे आदि के अवसर पर, संगतिः=अन्य पुरुषों के साथ मिलना जुलना, पुरुषसन्निधौ=पुरुषों के समीप, गोष्ठीः=वार्तालाप करना, अनियमः

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपरञ्च—

पानं दुर्जन संसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नश्चान्यगृहे वासो नारीणां दूषणानि षट् ॥१२५॥

= अनियमित रूप से अथवा शिष्टाचार के विरुद्ध आचरण करना, पुंश्चलीभिः सह संसर्गः=पर पुरुषगामिनी-व्यभिचारिणी स्त्रियों के सम्पर्क में रहना, निजायाः वृत्तेः असकृद् क्षतिः=अपने सदाचरण की वार-वार क्षतिः हानि होना अर्थात् अपने आचरण का बार-बार पतन होना, पत्युः वार्धकम् =पति का वृद्ध होना, ईर्षितम्=परस्पर ईर्ष्या करना, प्रवसनम=परदेश में रहना ।

अनुवाद—स्त्री की स्वतन्त्रता, पिता के घर ही (चिरकाल तक) रहना, यात्रा उत्सव आदि के अवसर पर (अन्य पुरुषों के साथ) मिलना जुलना, अन्य पुरुषों की समीपता में वार्तालाप करना, शिष्टाचार के विरुद्ध आचरण करना, और विदेश में रहना, व्यभिचारिणी स्त्रियों के सम्पर्क में रहना, अपने आचरण का अनेकशः पतन होना, पति का बृद्ध होना, ईर्ष्या करना और परदेश में जाना, यह सब स्त्री के नाश के कारण हैं, अर्थात् इन कारणों से स्त्री असदाचारिणी बन जाती है, अतः इन कारणों को उपस्थित न होने देना चाहिए ।

अपरञ्च—और भी—

पानमिति-अन्वय—पानम्, दुर्जनसंसर्गः, पत्या च विरहः, अटनम्, स्वप्नः, अन्यगृहे वासः, नारीणाम् षट् दूषणानि (सन्ति) ।

शब्दार्थ—पानम्=मदिरा पान करना, दुर्जनसंसर्गः=खल एवं दुराचारी लोगों के साथ रहना, पत्या च विरहः=अपने पति से वियोग होना, अटनम् =घूमना फिरना, स्वप्नः=स्वप्न में पर पुरुष का देखना अर्थात् उससे संसर्ग करना, अन्यगृहे वासः=दूसरों के घर में रहना, दूषणानि=दोष ।

अनुवाद – मदिरा पान करना, खल जनों के साथ रहना, पति से वियोग का होना, घूमना फिरना, स्वप्न में पर पुरुष के साथ संसर्ग करना तथा दूसरे के घर में रहना, स्त्रियों में छः दोष माने गये हैं ।

अर्थात् इन उक्त कारणों से प्रायः स्त्रियाँ अपने चरित्र से गिर जाती हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च—

स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद ! नारीणां सतीत्व मुप जायते ॥१२६॥
न स्त्रोणा मप्रियः कश्चित् प्रियो वापि न विद्यते ।
गावस्तृणभिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ॥१२७॥

अपरञ्च—

अन्यच्च—और भी—

स्थानमिति अन्वय—हे नारद ! (यतः) स्थानम् नास्ति, क्षणम् नास्ति, प्रार्थयिता नरः नास्ति, तेन नारीणाम् सतीत्वम् उपजायते ।

शब्दार्थ—स्थानम्=पर पुरुषों के साथ संसर्ग के लिये उचित एकान्त, स्थान, क्षणम्=संसर्ग के लिए उचित अवसर, प्रार्थयिता नरः=चाहने वाला कामुक पुरुष, सतीत्वम्=पातिव्रत्य, उपजायते=रक्षित रहता है ।

अनुवाद—पर पुरुषों के साथ संसर्ग के लिये उचित एकान्त स्थान (यदि) नहीं है और न पर पुरुषों से संसर्ग प्राप्त करने के लिये उचित अवसर ही है, और न कोई (यदि) चाहने वाला कामुक पुरुष ही मिलता है, हे नारद ! इसी कारण स्त्रियों का सतीत्व रक्षित रहता है ।

यदि उक्त बातें सम्भव हो सकें तो स्त्रियों का सतीत्व होना दुर्लभ हो जाय ।

नेति अन्वय—स्त्रीणामू न कश्चित् अप्रियः (जनः) (भवति) न वा अपि (तासाम्) कश्चित् प्रियः (जनः) भवति । (ताः तु) अरण्ये गावः तृणम् इव नवं नवम् (पतिम्) प्रार्थयन्ति ।

शब्दार्थ—अरण्ये=जंगल में, नवं नवम्=नये नये पुरुष को, प्रार्थयन्ति= चाहती हैं ।

अनुवाद—स्त्रियों का न तो कोई अप्रिय जन होता है और न उनका कोई प्रियजन ही होता है, वे तो, जगल में जैसे गायें नई-नई घास चाहती खोजती फिरती हैं उसी प्रकार नये-नये पुरुषों को चाहती हैं ।

अपरञ्च—और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान् ।
तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः ॥१२८॥
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो महान्तमपि कर्षति ॥१२९॥
स्त्रियो हि चपला नित्यं देवानामपि विश्रुतम् ।
ताश्चापि रक्षिता येषां ते नराः सुखभागिनः ॥१३०॥

घृतेति अन्वय—नारी घृतकुम्भसमा, पुमान् तप्ताङ्गारसमः (भवति) तस्मात् बुधः घृतम् च वह्निम् च एकत्र न स्थापयेत् ।

शब्दार्थ—घृतकुम्भसमा=घी से भरे हुए घट के तुल्य, तप्ताङ्गारसमः =जलते हुए अंगार के समान, बुधः=विद्वान्, एकत्र स्थापयेत्=एक स्थान पर रखे ।

अनुवाद—स्त्री घी से भरे घट के समान होती हैं और पुरुष तप्त अंगार के समान होता है, इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को घृत और अग्नि को एक स्थान पर न रखना चाहिये ।

अर्थात् जैसे घी और अग्नि एक स्थान पर मिलकर जल उठते हैं उसी प्रकार स्त्री और पुरुष एकान्त स्थान पर परस्पर आसक्त हो जाते हैं अतः स्त्री और पुरुष को एक एकान्त स्थान पर न मिलने देना चाहिये ।

मात्रेति अन्वय—मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा विविक्तासनो न भवेत् बलवान् इन्द्रियग्रामः महान्तम् अपि कर्षति ।

शब्दार्थ—मात्रा=माता के साथ, स्वस्रा=बहिन के साथ, दुहित्रा= पुत्री के साथ, विविक्तासनः=एकान्त प्रदेश में स्थित, इन्द्रियग्राम=इन्द्रिय-समूह, महान्तम्=महान् पुरुष को, कर्षति=पाप की ओर खींचता है ।

अनुवाद—(मनुष्यों का कभी) माता भगिनी अथवा पुत्री के साथ भी एकान्त प्रदेश में न स्थित होना चाहिये, क्योंकि इन्द्रिय समूह बड़ा प्रबल होता है जो कि महान् पुरुष को भी पाप की ओर खींच लेता है ।

स्त्रिय इति अन्वय—स्त्रियः हि नित्यं चपलाः (भवन्ति) इति देवानाम् अपि विश्रुतम् । अथवा देवानामपि स्त्रियः नित्यम् चपला (इति पुराणादौ) विश्रुतम् । ताः चापि येषाम् रक्षिताः, ते नराः सुखभागिनः (सन्ति) ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

न लज्जा न विनीतत्वम् न दाक्षिण्यं न भीरुता ।
प्रार्थनाभाव एवैकं सतीत्वे कारणं स्त्रियाः ॥१३१॥
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति ॥१३२॥

शब्दार्थ—देवानामपि स्त्रियः=देवताओं की भी स्त्रियाँ, लक्ष्मी आदि, चपला=चंचला, विश्रुतम्=पुराणादि में प्रसिद्ध है, ताश्चापि येषां रक्षिताः =ऐसी भी चञ्चल स्त्रियाँ जिनके द्वारा सुरक्षित करली गई है ।

अनुवाद—स्त्रियाँ नित्य ही चञ्चल होती हैं, यह बात देवताओं के विषय में भी प्रसिद्ध है अथवा देवताओं की भी स्त्रियाँ सदा चञ्चल होती हैं यह लक्ष्मी आदि के विषय में पुराणादि में प्रसिद्ध हैं ऐसी भी चञ्चल स्त्रियों को जिन लोगों ने सुरक्षित रखा है व लोग ही सुखभागी हैं । अन्य नहीं ।

नेति अन्वय – न लज्जा, न विनीतत्वम्, न दाक्षिण्यम्, न भीरुता, प्रार्थनाभावः एव एकम् केवलम् स्त्रियाः सतीत्वे कारणम् (अस्ति) ।

शब्दार्थ—विनीतत्वम्=विनम्रता, दाक्षिण्यम्=शिष्टता एवं उदारता, भीरुता=भय, प्रार्थनाभावः एव केवलम्=केवल एकमात्र किसी चाहने वाले पुरुष द्वारा संसर्ग याचना का अभाव ही ।

अनुवाद—न लज्जा, न विनम्रता, न उदारता और शिष्टता, और न गुरुजनों से भय ही स्त्री के सतीत्व के कारण हैं, अर्थात् सतीत्व में केवल एकमात्र कारण, उसके लिये किसी चाहने वाले कामुक पुरुष द्वारा उससे संसर्ग कामना की याचना का अभाव ही है ।

पिपेति-अन्वय—पिता कौमारे रक्षति, यौवने च भर्ता रक्षति, स्थविरे भावे पुत्रः च रक्षति, स्त्री स्वातन्त्र्यम् न अर्हति ।

शब्दार्थ—कौमारे=अविवाहित अवस्था में, यौवने=युवावस्था में, भर्ता=पति, स्थविरे भावे=वृद्धावस्था में, स्वातन्त्र्यम्=स्वेच्छाचारिता ।

अनुवाद—अविवाहित अवस्था में तो पिता रक्षा करता है, युवावस्था में पति रक्षा करता है, वृद्धावस्था से (उसका) पुत्र (उसकी) रक्षा-देखभाल करता है, अतः स्त्री कभी भी स्वेच्छाचारिता नहीं कर पाती है ।

जीवन भर स्त्री के लिए उसके संरक्षकों के होने के कारण कभी भी

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

एकदा सा लोलावती रत्नावलीकिरणकर्बुरे पर्यङ्के तेन वणिक्पुत्रेण सह विश्रम्भालापैः सुखासीना तमलक्षितोपस्थितं पतिमवलोक्य सहसोत्थाय केशेष्वाकृष्य गाढमालिङ्गय चुम्बितवती, तेनावसरेण जारश्च पलायितः। उक्तम् च—

उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः।
स्वभावेनैव तच्छास्त्रं स्त्रीबुद्धौ सुप्रतिष्ठितम् ॥१३३॥

उसे स्वेच्छा चारिता का अवसर नहीं मिल पाता, अतः स्त्री के स्वाधीन होने का कभी अवसर नहीं मिलता, अतएव वह सती बनी रहती है, अतएव कहा गया है कि स्त्री को कभी स्वतन्त्र होना उचित नहीं है।

एकदेति-शब्दार्थ—रत्नावली किरणकर्बुरे पर्यङ्के=रत्नों की पंक्तियों की किरणों (चमक) से चित्रित पलंग पर, विश्रम्भालापैः सुखासीना=प्रेम पूर्वक वार्तालाप करती हुई सुख से बैठी हुई, अलक्षितोपस्थितम=सहसा चुपचाप उपस्थित हुये, केशेषु आकृष्य=बाल पकड़ कर गाढमालिङ्ग्य=जोर से लपट कर, तेन अवसरेण=इसी अवसर के बीच, जारः=लम्पट, पलायितः=भाग गया।

अनुवाद—एक बार वह लीलावती, रत्नों की पंक्तियों की किरणों से चित्रित पलंग पर उस वणिक् पुत्र के साथ प्रीतिपूर्वक वार्तालाप करती हुई सुख पूर्वक बैठी हुई, सहसा उपस्थित हुए उस अपने पति को देखकर सहसा (झटपट) उठकर बाल पकड़ कर जोर से उसका आलिंगन कर चुम्बन करने लगी, इसी अवसर के बीच वह लम्पट भी भाग गया।

कहा भी गया है—

उशना इति-अन्वय—यत् शास्त्रम् उशना वेद, यत् च शास्त्रम् बृहस्पतिः वेद, तत् शास्त्रम् स्त्रीबुद्धौ स्वभावेनैव सुप्रतिष्ठितम् (भवति)।

शब्दार्थ—यत् शास्त्रम्=जिस कूट नीति विद्या को. उशनाः=शुक्राचार्य, वेद=जानते हैं, यत् च=और जिस नीति विद्या को।

अनुवाद—जिस कूटनीति विद्या को शुक्राचार्य जानते हैं, और जिस नीतिशास्त्र को बृहस्पति जानते हैं, वह शास्त्र, स्त्री की बुद्धि में स्वभावतः ही रहता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तदालिङ्गन मवलोक्य समीपवर्तिनी कुटिटन्यचिन्तयत्— अकस्मादिय मेनमुपगूढवती इति । ततस्तया कुटिटन्या तत् कारणन् परिज्ञाय सा लोलावती गुप्तेन दण्डिता । अतोऽहं ब्रवीमि—नाकस्माद् युवती वृद्धमित्यादि ।

क्षणं विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्तम्—'कारणञ्चात्र धनवाहुल्य मेत्र भविष्यति—यत:—

धनवान् बलवाँल्लोके सर्व: सर्वत्र सर्वदा ।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युप जायते ॥१३४॥

अर्थात् शुक्राचार्य और वृहस्पति जैसे लोक प्रसिद्ध नीतिशास्त्र प्रणेता और ज्ञाता जिस शास्त्र को जानते हैं, स्त्री की वुद्धि में वह शास्त्र अर्थात् कूट नीति विद्या विना पढ़े ही जन्मत: ही विद्यमान रहती है और वे यथावसर उससे काम लेती है ।

तदेति-शब्दार्थ—अचिन्तयत्=सोचा, उपगूढ़वती=आलिङ्गन किया है, परिज्ञाय=जानकर, गुप्तेन दण्डिता=चुपचाप दण्डित किया ।

अनुवाद—उस आलिङ्गन को देखकर समीपवर्तिनी कुट्टिनी ने सोचा, इसने अकस्मात् ही इसका आलिङ्गन किया है, तव उस कुट्टिनी ने उस अकस्मात् आलिङ्गन के कारण को जान कर उस लीलावती को गुप्त रूप से दण्डित किया अर्थात् उसे यह सव वतला कर यह रहस्य छिपाने के लिए उमसे गुप्त रूप में कुछ धन प्राप्त किया ।

इस लिए मैं कहता हूँ कि अकस्मात् युवती जो वृद्ध का आलिङ्गन करती है तो इसमें कोई न कोई गम्भीर कारण अवश्य होगा ।

थोड़ी देर तक सोचकर परिव्राजक ने कहा कि, इसमें कारण धन की अधिकता ही होगी, क्योंकि—

धनवानिति-अन्वय—सर्व: धनवान् लोके सर्वत्र सर्वदा वलवान् (भवति) हि राज्ञाम् अपि प्रभुत्वम् धनमूलम् उपजायते ।

शब्दार्थ—सर्व:=सव, हि=क्योंकि, राज्ञोमपि=राजाओं का भी, प्रभुत्वम् आधिपत्य, धननूलम् उपजायते=धन के ही आधार पर होता है ।

अनुवाद—संसार में समस्त धनीजन सर्वत्र सदा बलवान् होता है,

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ततः खनित्रमादाय तेन परिव्राजकेन विवरं खनित्वा चिर-सञ्चितम् मम धनम् गृहीतम् । ततः प्रभृति प्रत्यहं निजशक्तिहीनः सत्त्वोत्साहरहितः स्वाहारमप्युत्पादयितु मक्षमः सत्रासं मन्दम् उपसर्पन् चूड़ाकर्णेनावलोकितः । ततस्तेनोक्तम्—

धनेन बलवांल्लोके धनाद् भवति पण्डितः ।
पश्यैनं मूषिकं पापं स्वजातिसमतां गतम् ॥१३५॥

क्योंकि राजाओं को भी प्रभुता धन के आधार पर ही प्राप्त होती है ।

तात्पर्य यह है कि यदि राजा अपने राज्य पर सफलता पूर्वक शासन करता है तो उसकी भी इस सफलता का कारण उसका धनवान् होना ही है । धन से ही शक्ति उत्पन्न होती है और शक्ति से ही शासन चलता है । शक्ति धन ही है, अतः वलवान शक्तिशाली अधिकारी उसी को समझना चाहिए जो धनवान् हो, वलवत्ता धनाहीन होती है ।

तत इति शब्दार्थ—खनित्रम्=खोदने का अस्त्र-कुदाल या फावड़ा, आदि आदाय=लेकर, बिवरम्=मेरे बिल को, खनित्वा=खोदकर, चिर-सञ्चितम्=चिरकाल मे एकत्र किये गये गृहीतम् =ले लिया, ततः प्रभृति =तब से लेकर, प्रत्यहम् =प्रतिदिन, निजशक्ति हीनः=अपनी शक्ति से रहित होकर, सत्वोसाहरहितः=मनोबल और उत्साह से रहित होकर, स्वाहारम् अपि उत्पादयितुम् अक्षमः=अपना भोजन भी पैदा करने के लिए असमर्थ होकर, सत्रासम् मन्दम् उपसर्पन् = भय के साथ धीरे-धीरे चलता हुआ, चूपाकर्णेनावलोकितः=चूड़ाकर्ण से देखा गया ।

अनुवाद—तब कुदाल लेकर उस सन्यासी ने (मेरे) बिल को खोदकर चिरकाल से संचित मेरे धन को ले लिया । तब से लेकर प्रतिदिन अपनी शक्ति से रहित, मनोबल और उत्साह से रहित होकर अपना भोजन भी पैदा करने के लिए असमर्थ होकर सभय धीरे-धीरे चलता हुआ मैं उस चूड़ाकर्ण के द्वारा देखा गया, तब उसने कहा—

धनेनेति-अन्वय - लोकः धनेन वलवान् धनात् पण्डितः भवति एनम् पापम् स्वजातिसमताम् गतम् मूषिकम् पश्य ।

शब्दार्थ—वलवान=सर्वसाधन सामर्थ्यवान्, पण्डितः=सर्व विद्या तथा

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च—

अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥१३६॥

अपरञ्च—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः ॥१३७॥

कलाओं का ज्ञाता, पापम्=पापी अपने पास धन रखते हुए भी दूसरे के अन्न को चुराकर खाने वाला, स्वजातिसमतां गतम्=अपनी जाति की दरिद्रता या धनशून्यता की समानता को प्राप्त हुआ ।

अनुवाद—मनुष्य धन से ही बलवान् होता है, और धन से ही मनुष्य पण्डित अर्थात् शास्त्रों तथा कलाओं का ज्ञाता बनता है। धनसम्पन्न होते हुए भी पर द्रव्यापहारी अतएव पापी, तथा अपनी जातिगत दरिद्रता की समता को प्राप्त हुये इस चूहे को देखो । अर्थात् अब यह धनहीन होने से अन्य चूहों के समान दुर्बल तथा दीन हो गया है।

किञ्च— और भी—

अर्थेनेति-अन्वय – अर्थेन तु विहीनस्य अल्पमेधसः पुरुषस्य सर्वाः क्रियाः विनश्यन्ति यथा ग्रीष्मे कुसरितः (विनश्यन्ति)

शब्दार्थ—अर्थेन=धन से, विहीनस्य=रहित हुये, अल्पमेधसः=अल्प या क्षुद्रबुद्धि वाले, सर्वाः क्रियाः=सभी काम, विनश्यन्ति=नष्ट हो जाते हैं, ग्रीष्मे=ग्रीष्म काल में, कुसरितः=अल्प जल वाली छोटी नदियाँ ।

अनुवाद—धन से रहित हुये क्षुद्रबुद्धि वाले मनुष्य के सभी कार्य उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे ग्रीष्म काल में अल्पजल वाली नदियाँ जल रहित हो जाती अथवा सूख जाती हैं ।

अपरञ्च—और भी—

यस्येति-अन्वय—लोके यस्य अर्थाः तस्य मित्राणि, यस्य अर्थाः तस्य बान्धवाः, यस्यार्थाः स पुमान्, यस्यार्थाः स हि पण्डितः (भवति) ।

शब्दार्थ—यस्यार्थाः=जिसके पास धन होते हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च—

अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च ।
मूर्खस्य च दिशः शून्याः सर्वशून्या दरिद्रता ॥१३८॥

अन्यच्च

दारिद्र्यान्मरणाद् वापि दारिद्र्यमवरं स्मृतम् ।
अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्र्यमति दुःसहम् ॥१३९॥

अनुवाद—जिस जन के पास द्रव्य होते हैं, उसके ही (अनेक) मित्र होते है, अर्थात् शत्रु भी मित्र वन जाते हैं। जिसके पास धन होता है उसके ही वन्धुजन होते हैं अर्थात् अवन्धु भी उसके वन्धु वन जाते हैं। जिसके पास धन होता है, वही मनुष्य होता है अर्थात् वही श्रेष्ठ एवं मान्य पुरुष गिना जाता है जिसके पास ग्रन्थ होते हैं वही विद्वान् होता हैं अर्थात् वह विद्वान् की तरह ही समाज में पूजित होता है।

किञ्च—और भी—

अपुत्रस्येति—अपुत्रस्य गृहं शून्यम् (भवति) सन्मित्ररहितस्य मूर्खस्य च दिशः शून्याः (भवन्ति) (किन्तु) दरिद्रता सर्वशून्या (भवति) ।

शब्दार्थ—अपुत्रस्य गृहं शून्यं (भवति) सन्तानरहित व्यक्ति का घर सूना सा होता है। सन्मित्ररहितस्य=अच्छे मित्रों से रहित, दिशः शून्याः=सभी दिशायें अप्रकाशित सी रहती हैं, द्ररिद्रता=द्रव्यहीनता, सर्वशून्या=सव प्रकार से शून्य होती है।

अनुवाद—सन्तान हीन व्यक्ति का घर शून्य (अप्रकाशित) सा लगता है, अच्छे मित्रों से रहित मूर्ख जन के लिये सभी दिशायें शून्य अर्थात् अन्धकारमय दिखलाई पड़ती हैं, परन्तु द्रव्यहीनता तो सव प्रकार से शून्य होती है निर्धन, के लिये सारा संसार ही शून्य अन्धकारमय दिखलाई पड़ता है।

दारिद्र्याति-अन्वय—दारिद्र्यात् मरणात् वा अपि दारिद्र्यम् अवरम् स्मृतम्. मरणम् तु अल्पक्लेशेन भवति (परन्तु) दारिद्र्यम् अति दुःसहम् (जायते) ।

शब्दार्थ—दारिद्र्यात्=निर्धनता से, मरणात् वा अपि=अथवा मरण से

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च —

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धि रप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्र मेतत् ॥१४०॥

भी, अवरम्=अति हीन, स्मृतम्=माना गया है, अल्पक्लेशेन=थोड़े दुःख से ।

अनुवाद—निर्धनता और मरना इन दोनों में मरना ही निर्धनता की अपेक्षा अति तुच्छ माना गया है, क्योंकि मरना तो थोड़े से दुःख से ही हो जाता है परन्तु निर्धनता तो (जीवन भर) अति असहनीय दुःख देने वाली होती है ।

अन्यच्च– और भी—

तानीति-अन्वय—तानि अविकलानि इन्द्रियाणि, तदेव नाम, सा अप्रतिहता बुद्धिः, तदेव वचनम्, स एव पुरुषः अर्थोष्मणा विरहितः (भूत्वा) क्षणेन अन्यः भवति, इति एतत् विचित्रम् ।

शब्दार्थ—तानि अविकलानि इन्द्रियाणि,=निर्धन पुरुष की यद्यपि वही वैसी ही काणत्व वधिरत्व आदि दोषों से रहित, पूर्णतः कार्यक्षम सभी इन्द्रियाँ वनी रती हैं, तदेव नाम=निर्धन का यद्यपि वही नाम वना रहता है जो कि उसका धनाढ्य होने के समय था, सा अप्रतिहता बुद्धिः=वही अकुण्ठित — तीक्ष्ण-सूक्ष्माति सूक्ष्म विषयों के वोध में समर्थ बुद्धि, तदेव वचनम्=वैसी ही वाणी बनी रहती है जैसी कि धनाढ्यता की अवस्था में थी, स एव पुरुषः= वही पुरुष भी वैसा ही बना रहता है, अर्थोष्मणा=धन की उष्णता अथवा धन के गर्व से, विरहितः=रहित होकर, क्षणेन अन्यः=क्षणमात्र में ही वह अन्य पुरुष हो जाता है, एतत् विचित्रम्=यह बड़ी ही विचित्र बात है ।

अनुवाद—(निर्धन पुरुष की यद्यपि) वही कार्यक्षम इन्द्रियाँ बनी रहती हैं, वही नाम तथा वैसी ही अकुण्ठित बुद्धि भी बनी रहती है, वैसी हो इसकी वाणी भी रहती है और वह पुरुष भी वैसा ही रहता है जैसा कि वह धनाढ्य के समय था किन्तु धन के गर्व से रहित होकर वही पुरुष क्षणमात्र में ही, अन्य जैसा हो जाता है, वह बड़ी ही विचित्र सी बात है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

एतत् सर्वमाकर्ण्य मयाऽलोचितम् "ममात्रावस्थानमयुक्त मिदानीम्' । यच्चान्यस्मै एतद् वृत्तान्तकथनं तदप्यनुचितम् । यतः—

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१४१॥

अपि च—

आयु र्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्र मैथुन भेषजम् ।
तपो दानापमानं च नव गोप्यानि यत्नतः ॥१४२॥

एतदिति-शब्दार्थ—आकर्ण्य=सुनकर, आलोचितम्=विचार किया, अत्रावस्थानम्=यहाँ रहना, अयुक्तम्=अनुचित ।

अनुवाद—यह सब सुनकर मैंने सोचा कि अब मेरा यहाँ रहना अनुचित है। और जो किसी दूसरे से इस वृत्तान्त का कहना है, वह भी अनुचित है, क्योंकि—

अर्थेति—मतिमान् अर्थनाशम् मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च, वञ्चनं च, अपमानम् च न प्रकाशयेत् ।

शब्दार्थ—मतिमान्=बुद्धिमान्, अर्थनाशम्=धन के नाश को मनस्तापम्=अपने मनः सन्ताप को, ग्रहे दुश्चरितानि=अपने घर में होने वाले व्यभिचार आदि दुराचरणों को, वञ्चनम्=दूसरे से ठगे जाने को, अपमानं=अपने दूसरे के द्वारा किये गये तिरस्कार को, न च प्रकाशयेत्=दूसरों पर प्रकट न करे ।

अनुवाद—बुद्धिमान् मनुष्य को अपने धननाश को, मानसिक सन्ताप को, अपने घर के दुराचरणों को, दूसरों के द्वारा ठगे जाने को, और अपने तिरस्कर को प्रकट न करना चाहिये ।

क्योंकि ऐसा करने से लोग उसका उपहास ही करते हैं, उसे कोई लाभ नहीं होता ।

अपि च—और भी—

आयुरिति-अन्वय - आयुः, वित्तम्, गृहच्छिद्रम्, मन्त्रमैथुनभेषजम्, तपः, दानापमानञ्च, इति नव यत्नतः गोप्यानि (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—आयुः=अवस्था, वित्तम्=धन, गृहच्छिद्रम्=घर में होने वाली कमजोरियाँ अथवा अपमानजनक कमियाँ, मन्त्रमैथुनभेषजम्=

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तथा चोक्तम् —

अत्यन्त विमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरुषे ।
मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत् कुतः सुखम् ।।१४३।।

अन्यच्च —

मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति ।
अपि निर्वाण मायाति नानलो याति शीतताम् ।।१४४।।

मन्त्र, सूरतक्रीडा तथा औषधि, गोप्यानि = छिपाने योग्य ।

अनुवाद — अवस्था, धन-घर का कलंक, मन्त्र, मैथुन, औषधि, तप, दान और अपमान इन नौ वातों को यत्नपूर्वक छिपा कर रखना चाहिये ।

इन वातों को किसी से प्रकट न करना चाहिये, नहीं तो अपनी हानि ही होगी, लाभ कुछ न होगा ।

तथा चोक्तम् = वैसा ही कहा भी गया है ।

अत्यन्तेति-अन्वय — दैवे अत्यन्तविमुखे, यत्ने पौरुषे च व्यर्थे (सति) मनस्विनः दरिद्रस्य वनात् अन्यत् कुतः सुखम् ।

शब्दार्थ — दैवे अत्यन्त विमुखे = भाग्य के पूर्णतः विपरीत हो जाने पर, पौरुषे यत्ने च व्यर्थे = पुरुष के प्रयत्न के निष्फल हो जाने पर, मनस्विनः = अभिमान् धनी पुरुष का ।

अनुवाद — भाग्य के पूर्णतः प्रतिकूल हो जाने पर तथा पुरुष के प्रयत्न के भी विफल हो जाने पर निर्धन किन्तु स्वाभिमानी पुरुष को वन के अतिरिक्त कहाँ से सुख मिल सकता है अर्थात् कहीं से भी नहीं ।

तात्पर्य यह कि भाग्य और प्रयत्न दोनों के निष्फल हो जाने पर पुरुष को वन में चला जाना चाहिये, घर एवं वन्धुजनों को छोड़ देना चाहिये, क्योंकि धनहीन होकर वन्धुजनों के बीच रहने की अपेक्षा वन में रहना ही सुखप्रद होता है, अतः निर्धन को यदि कहीं सुख शान्ति मिल सकती है तो वह वन में ही मिल सकती है अन्यत्र नहीं ।

अन्यच्च — और भी —

मनस्वीति-अन्वय — मनस्वी कामम् म्रियते, तु कार्पण्यम् न गच्छति: अनलः निर्वाणम् आयाति, शीतताम् न याति ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च—

कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः।
सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेद् विशीर्येत वनेऽथवा ॥१४५॥

शब्दार्थ—मनस्वी=तेजस्वी स्वाभिमानी, कामम्=भले ही तु=किन्तु, कार्पण्यम्=दीनता को, न गच्छति=नहीं प्राप्त होता है। निर्वाणम् अपि आयाति=बुझ भी जाती है। (किन्तु) शीतताम् न याति=शीतलता को प्राप्त नहीं होती।

अनुवाद—तेजस्वी स्वाभिमानी पुरुष भले ही मर जाता है, पर दीनता को कभी स्वीकार नहीं करता, जैसे अग्नि भले ही बुझ जाता है, पर शीतल कभी नहीं होता है।

स्वाभिमानी पुरुष स्वाभिमान त्याग की अपेक्षा मरण अच्छा समझता है, वह स्वाभिमान कभी नहीं छोड़ता। अग्नि मनस्विता का अच्छा दृष्टान्त है जो कि बुझ भले ही जाय पर शीतल कभी न होगा।

किञ्च—और भी—

कुसुमेति अन्वय—मनस्विनः कुसुमस्तवकस्य इव द्वे तु वृत्ती, सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेत् अथवा वने विशीर्येत।

शब्दार्थ—मनस्विनः=स्वाभिमानी पुरुष की, कुसुमस्तवकस्य इव=पुष्पगुच्छ की तरह, द्वे तु वृत्ती=दो ही कार्य व्यापार होते हैं। सर्वेषाम् मूर्ध्नि वा तिष्ठेत्=अथवा वह सबके सिर पर रहे, अथवा वने विशीर्येत=अथवा वन में बिखर जाये।

अनुवाद—स्वाभिमानी पुरुष के (इस संसार में) केवल दो ही कार्य व्यापार या व्यवहार होते हैं, जैसे कि फूलों के गुच्छों के दो हीं व्यापार होते हैं, या तो वह सबके सिर पर रहता है, अथवा वन में बिखर जाता है।

पुष्प गुच्छ या तो श्रेष्ठजनों या देवताओं के सिर पर चढ़ता है, अथवा वह अपने डंठल से टूटकर वन में बिखर जाता है, इन दो कार्यों के व्यापारों के अतिरिक्त उसका अन्य कुछ कार्य नहीं होता, इसी प्रकार स्वाभिमानी व्यक्ति या तो समाज में सर्वश्रेष्ठ बन कर रहता है, अथवा मर जाता है, हीनता और हीनता के साथ अपमानित होकर जीवन कभी नहीं बिताता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यच्चात्रैव याञ्चया जीवनं तदतीव गर्हितम् ।
यत:—

वरं विभवहीनेन प्राणैः सन्तर्पितोऽनलः ।
नोपचारपरिभ्रष्टः कृपणः प्रार्थितो जनः ॥१४६॥

दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्त्वात् परिभ्रश्यते ।
निःसत्त्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ॥
निर्विण्णः शुचमेति शोकनिहतो बुद्ध्या परित्यज्यते ।
निर्बुद्धिः क्षयमेत्य हो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥१४७॥

यच्चेति और जो कि यहीं रहकर याचना के द्वारा जीवित रहना है, वह भी तो अतीव निन्दनीय है ।

वरमिति अन्वय—विभवहीनेन प्राणैः सन्तर्पितः अनलः वरम्, उपचार परिभ्रष्टः कृपणः जनः प्रार्थितः न वरम् ।

शब्दार्थ—विभवहीनेन = निर्धन जन के द्वारा, प्राणैः सन्तर्पितः अनलः = अपने प्राणों द्वारा सन्तर्पित किया गया अग्नि—अर्थात् प्राणों की आहुति देकर (मरकर अग्नि में जल जाना) परितृप्त किया गया अग्नि, उपचार परिभ्रष्टः = याचक के प्रति शिष्टाचार प्रदर्शन से रहित कृपणः = कञ्जूस, प्रार्थितः = याचित होकर ।

अनुवाद—धनहीन व्यक्ति के द्वारा अपने प्राणों द्वारा सन्तृप्त किया गया अग्नि श्रेष्ठ है अर्थात् यदि किसी निर्धन ने दुखी होकर याचना करने की अपेक्षा अग्नि में अपने प्राणों की आहुति देकर अग्निदेव को सन्तुष्ट कर दिया है अर्थात् अग्नि में जलकर मर गया है तो उसका ऐसा करना प्रशंसनीय है, किन्तु याचक के प्रति सदव्यवहार न करने वाले कृपण व्यक्ति से धनार्थ याचना करना कदापि उचित नहीं है । अर्थात् याचना की अपेक्षा मरना श्रेष्ठ है ।

दारिद्र्यादिति अन्वय—दारिद्र्यात् (जनः) ह्रियम् एति, ह्रीपरिगतः (जनः) सत्वात् परिभ्रश्यते । निः सत्वः परिभूयते, परिभवात् निर्वेदम् आपद्यते निर्विण्णः शुचम् एति, शोकरहितः बुद्धया परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयम् एति, अहो निधनता सर्वापदाम् आस्पदम् (भवति) ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च—

वरं मौनं कार्यं न च वचन मुक्तं यदनृतमम्
वरं क्लैव्यं पुसां न च परवलत्राभि गमनम् ।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येस्वभिरुचि —
वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम् ॥१४८॥

शब्दार्थ—दारिद्र्यात्=धन रहित होने से, ह्रियम्=लज्जा को, एति=प्राप्त करता है। ह्रीपरिगतः=लज्जित हुआ व्यक्ति, सत्वात्=बल, आत्म-पुरुषार्थ से, परिभ्रश्यते=गिर जाता है. निः सत्त्वः=आत्मवल रहित, परि-भूयते=तिरस्कृत होता है, परिभवात्=तिरस्कार से, निर्वेदम् आपद्यते=खेद को प्राप्त होता है, निर्विण्णः=खिन्नता को प्राप्त, शुचमेति=शोक को प्राप्त होता है। शोकनिहतः=शोकग्रस्त, बुद्धया परित्यज्यते=बुद्धि द्वारा छोड़ दिया जाता है, अर्थात् बुद्धिहीन हो जाता है, क्षयम्=विनाश को, निर्धनता=दरिद्रता, सर्वापदाम्=सभी आपत्तियों का, आस्पदम्=स्थान।

अनुवाद—निर्धनता से मनुष्य लज्जित होता है. लज्जित हुआ मनुष्य आत्मवल या पराक्रम से हीन हो जाता है, पराक्रमहीन पराजय को प्राप्त करता है. पराजय से खेद को प्राप्त होता है, खिन्न जन शोक को प्राप्त होता है, शोकग्रस्त व्यक्ति बुद्धिहीन हो जाता है, बुद्धिहीन विनाश को प्राप्त होता है। आश्चर्य की वात है कि निर्धनता सभी प्रकार की आपत्तियों का स्थान होती है।

किञ्च—और भी—

वरमिति अन्वय—मौनंकार्यम्=मौन रहना, अनृतम् वचनम्=झूंठ बोलना, पुंसाम्=मनुष्यों का, क्लैव्यम्=नपुंसक होना, परकलत्राभिगमनम्=पर स्त्री का संसर्ग, पिशुनवाक्येषु=दुष्टजनों की बातों पर, अभिरुचिः=रुचि या विश्वास, भिक्षाशित्वम्=भिक्षा माँगकर, खाना, परधनास्वादन-सुखम्=दूसरे के धन के स्वाद का सुख।

अनुवाद—मौन रहना अच्छा है परन्तु असत्य भाषण अच्छा नहीं है, लोगों की नपुंसकता अच्छी हैं पर परस्त्री सम्भोग अच्छा नहीं, मरना अच्छा

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो,
वरं वेश्या पत्नी न च पुनरविनीता कुलवधूः ।
वरं वासोऽरण्ये न च पुनरविवेकाधिपपुरे,
वर प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः ॥१४६॥

अपि च —
सेवेव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम् ।
हरिहरकथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरति ॥१५०॥

है, पर दुष्टों की बातों पर विश्वास (रुचि) अच्छा नहीं, भिक्षा माँगकर खाना अच्छा है किन्तु दूसरे के धन पर आनन्द उड़ाना अच्छा नहीं ।

वरमिति अन्वय – शून्या शाला वरम् दुष्टवृषभः न च खलु वरम्, वेश्या पत्नी वरम्, पुनः अवनीता कुलवधूः न, अरण्ये वासः वरम्, पुनः अविवेकाधिपपुरे न, प्राणत्यागः वरम् पुनः अधमानामप्युपगमः न ।

शब्दार्थ—शाला-गौशाला, दुष्टवृषभः=दुष्ट बैल, वेश्या-पत्नी=पत्नी रूप में स्वीकृत वेश्या, अविनीता कुलवधूः=अविनयशील कुलाङ्गना, अरण्ये वासः=जंगल में रहना, अविवेकाधिपपुरे=विवेकहीन राजा के नगर में अधमानाम् उपगमः=दुष्ट जनों का समागम ।

अनुवाद - गोशाला सूनी अच्छी है पर वहाँ दुष्ट बैल का होना अच्छा नहीं, पत्नी रूप में स्वीकृत गणिका अच्छी है, पर अविनयशील कुलाङ्गना अच्छी नहीं, जंगल में निवास अच्छा है पर विवेकहीन राजा के नगर में रहना अच्छा नहीं, प्राणों का त्याग करना अच्छा है पर दुष्टजनों का समागम अच्छा नहीं होता हैं ।

अपि च—और भी—

सेवित-अन्वय—सेवा अखिलं मानम् इव, ज्योत्स्ना तमः इव, जरा लावण्यम् इव, हरिहरिकथा दुरितम् इव अर्थिता गुणशतम् अपि हरति ।

शब्दार्थ—मानम्=गौरव, ज्योत्स्ना=चन्द्रचन्द्रिका, जरा=बुढ़ापा, लावण्यम्=सुन्दरता, हरिहरकथा=विष्णु और शिव का गुणानुवाद, दुरितम् =पाप को, अर्थिता=याचकता, गुणशतम्=सैकड़ों गुणों को ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इति विमृश्य—'तत् किमहं परपिण्डेनात्मानं पोषयामि'? कष्टं भोः, तदपि द्वितीयं मृत्युद्वारम् । यतः—

पल्लवग्राहि पाण्डित्यं क्रयक्रीतं च मैथुनम् ।
भोजनञ्च पराधीनं तिस्रः पुसां विडम्वनाः ॥१५१॥

अनुवाद—जैसे दूसरे की सेवा समस्त गौरव को, चन्द्रप्रकाश जैसे अन्धकार को, विष्णु और शिव का गुणानुवाद जैसे पाप को नष्ट करता है वैसे ही याचकता सैकड़ों गुणों का भी विनाश करती हैं।

इतीति शब्दार्थ—विमृश्य=सोचकर, पर पिण्डेन=दूसरे के द्वारा दिये गये भोजन से, आत्मनम् पाषयामि=अपना पालन करूँ अथवा किसी धनी की सेवा कर अपना पेट पालन करूँ, तदपि द्वितीयं मृत्युद्वारम्=वह कार्य भी तो दूसरा मृत्यु का द्वार ही है।

अनुवाद—इस प्रकार विचार कर फिर मैंने यह सोचा कि तो क्या मैं दूसरे के द्वारा दिये गये भोजन से अपना पालन करूँ अर्थात् किसी धनवान् की सेवा कर उसके टुकड़ों पर अपना पेट पालूँ, किन्तु बड़े खेद की बात है कि यह भी तो दूसरा मृत्यु का द्वार ही है, अर्थात् सेवावृत्ति से जीना मृत्यु के समान ही है।

यतः=क्योंकि—

पल्लवेति-अन्वय—पल्लवग्राहि पाण्डित्यम् क्रयक्रीतम् मैथुनम् च पराधीनम् भोजनम् च पुसाम् तिस्रः विडम्वनाः सन्ति ।

शब्दार्थ—पल्लवग्राहि पाण्त्यिम=कुछ थोड़ा थोड़ा इधर उधर से प्रायः सभी विषयों का ज्ञान कर लेना परन्तु किसी भी एक विषय का पूर्ण ज्ञान न होना पल्लवग्राहि पाण्डित्य कहलाता है, क्रयक्रीतं मैथुनम्=वेश्या आदि को धन देकर खरीदा गया सम्भोग सुख, पराधीन भोजनम्=दूसरे के आधीन होकर पेट पालना, विडम्वनाः=ये तीनों बातें अतिकष्ट कर एवं उपहासास्पद ही होती है।

अनुवाद—पल्लवग्राही, विद्वत्ता, द्रव्य देकर खरीदा गया सम्भोग सुख, और पराधीन होकर पेट भरना, ये तीनों मनुष्यों के लिए अतिकष्ट कर एवं उपहास योग्य होती है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

रोगी चिरप्रवासी, परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥१५२॥

इत्यालोच्यापि लोभात् पुनरप्यर्थं ग्रहीतुं ग्रहमकरवम् । यतः धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टो नूनमात्मद्रोही भवति ।

तथा चोक्तम्—

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् ।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥१५३॥

रोगीति-अन्वय—रोगी, चिरप्रवासी, परान्नभोजी, परावसथशायी, यत् जीवति तत् मरणम् यत् मरणम् सः अस्य विश्रामः ।

शब्दार्थ—रोगी=व्याधिग्रस्त मनुष्य, चिरप्रवासी=सदा परदेश में रहने वाला, परान्नभोजी=दूसरे का अन्न खाने वाला, परावसथशायी=दूसरे के घर में शयन करने वाला, यत् जीवति=यदि जीता है तो, तन्मणम्=वह उसका मरना है, अर्थात् उसका जीना मरने के समान है, यत् मरणम्=जो उसका मरना है वही । अस्य विश्रामः=उसका विश्राम है ।

अनुवाद—रोगग्रस्त सदा परदेश में रहने वाला, परान्न खाने वाला एवं पर गृहवासी मनुष्य यदि जीता है तो उसका यह जीना मरने के समान है, और जो उसका मरण है, वही उसके लिए परम शान्ति दायक है ।

इतीति-शब्दार्थ— इत्यालोच्यापि=यह सब समझ बूझ करके भी, अर्थं गृहीतुम्=धन पाने के लिए, ग्रहमकरवम्=आग्रह किया, धनलुब्धः=धन का लालची, असन्तुष्टः=असन्तोषी, आत्मद्रोही=अपने से भी द्रोह करने वाला ।

अनुवाद—यह सब समझ बूझ करके भी मैंने लोभवश (उस सन्यासी के भिक्षान्न आदि) धन को लेने के लिए आग्रह किया, क्योंकि धनलालची और असन्तोषी निश्चय से ही अपने से ही द्रोह करने वाला होता है ।

तथा चोक्तम्—जैसा कि कहा भी गया है—

लोभेनेति-अन्वय—लोभेन बुद्धिः चलति, लोभः तृषाम् जनयते, तृषार्तः मानवः परत्र इह च दुःखम् आप्नोति ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ततोमन्दं मन्दमुपसर्पंस्तेन वीणाकर्णेन जर्जरवंशखण्डेन ताडित-श्चाचिन्तयम्—

धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रियः।
सर्वा एवापदएतस्य यस्य तुष्टं न मानसम् ॥१५४॥

तथा च—

सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः ॥१५५॥

शब्दार्थ—चलति=चञ्चल हो जाती है, तृषां जनयते=तृष्णा उत्पन्न करता है, तृषार्तः=तृष्णा के वश में रहने वाला, लालच से अभिभूत, परत्र =परलोक में, इह च=और इस लोक में, आप्नोति=पाता है।

अनुवाद—लोभ से बुद्धि चञ्चल हो जाती है, लोभ तृष्णा उत्पन्न करता है, तृष्णा वशीकृत मनुष्य इस लोक और परलोक में दुःख प्राप्त करता है।

तत इति-अनुवाद—तब धीरे-धीरे चलता हुआ मैं उस वीणाकर्ण के द्वारा पुराने फटे वांस के टुकड़े से मारा गया और सोचने लगा—

धनेति-अन्वय—धनलुब्धः असन्तुष्टः अनियतात्मा अजितेन्द्रियः, यस्य च मनः न तुष्टम् तस्य सर्वाः एव आपदः (भवन्ति)

शब्दार्थ—धनलुब्धः=धन का लालची, असन्तुष्टः=असन्तोषी, अनि-यतात्मा=अस्थिर चित्तवाला अजितेन्द्रियः=इन्द्रियों को वश में न करने वाला, यस्य च मनः न सन्तुष्टम्=और जिसका मन सन्तुष्ट नहीं हुआ है, तस्य सर्वा एव आपदः=उसको सब ही आपत्तियाँ होती हैं।

अनुवाद—धन का लोभी, असन्तोषी, अस्थिर बुद्धि, ईन्द्रियों को वश में न रखने वाला तथा जिसका मन सन्तुष्ट नहीं है, उसको सदा सब विपत्तियाँ घेरे रहती हैं।

तथा-च=और भी—

सर्वाः इति-अन्वय—यस्य मानसम् सन्तुष्टम् तस्य सर्वाः सम्पन्तयः (भवन्ति) ननु उपानद्गूढपादस्य (जनस्य) भूः=चर्मावृत्ता इव (भवति)।

शब्दार्थ—उपानद्गूढपादस्य=जूतों से सुरक्षित पैरो वाले, भूः=पृथिवी, चर्मावृत्ता=चर्म से विछी हुई।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च—

सन्तोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धाना मितश्चेतश्च धावताम् ।।१५६।।

किञ्च—

तेनाधीतं श्रुतं, तेन, तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
ये नाशा: पृष्ठत: कृत्वा नैराश्य मवलम्बितम् ।।१५७।।

अनुवाद—जिसका मन सन्तुष्ट होता है उसके लिये ही सब सम्पत्तियाँ होती हैं, जैसे कि जूतों से सुरक्षित पैरों वाले मनुष्य के लिये पृथिवी मानो चमड़े से ढकी हुई ही होती है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति के लिये कण्टकाकीर्ण भी भूमि निष्कण्टक ही होती है।

अन्यञ्च—और भी—

सन्तोषेति-अन्वय— सन्तोषामृततृप्तानाम् शान्तचेतसाम् यत् सुखम् (भवति) धनलुब्धानाम् इतश्चेतश्च धावताम् (जनानाम्) तत् सुखम् कुतः ।

शब्दार्थ—सन्तोषामृततृप्तानाम्=सन्तोषरूपी अमृत से सन्तुष्ट, शान्तचेतसाम्=शान्त चित्त वाले, लोगों के लिये, यत् सुखम्=जो सुख होता है। इतश्चेतश्च=इधर उधर, धावताम्=भागने वाले लोगों के लिये, तत् कुतः=वह सुख कहाँ से।

अनुवाद—सन्तोषरूपी अमृत से सन्तुष्ट अतएव शान्तचित्त लोगों को जो सुख मिलता है, धन के लालची अतएव धन के लिये इधर उधर भागने वाले लोगों के लिये वह सुख कहाँ से मिल सकता है, अर्थात् ऐसे अशान्त चित्त और लालची लोगों को कहीं से भी सुख नहीं मिल पाता है।

किञ्च=और भी—

तेनेति-अन्वय—तेन अधीतम् तेन श्रुतम्, तेन सर्वम् अनुष्ठितम्, येन आशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यम् अवलम्बितम्।

शब्दार्थ – अधीतम्=शास्त्रों को पढ़ा, श्रुतम्=शास्त्रों को सुना, सर्वम् अनुष्ठितम्=यज्ञादिक शुभकर्म किये, आशाः पृष्ठतः कृत्वा=आशाओं को पीछे करके, नैराश्यम् अवलम्बितम्=निराशा को धारण किया।

अनुवाद—उसी मनुष्य ने सभी शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया और

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपि च—

असेवितेश्वरद्वार मदृष्ट विरहव्यथम् ।
अनुक्त क्लीववचनं धन्यं कस्यापि जीवनम् ॥१५८॥

यतः—

न योजनशतं दूरं वाह्यमानस्य तृष्णया ।
सन्तुष्टस्य करप्राप्तेऽप्यर्थे भवति नादरः ॥१५९॥

उसी ने सभी शास्त्रों को सुना भी तथा उसी ने मानो सभी यज्ञानुष्ठानों का सम्यक् सम्पादन किया, जिसने समस्त आशाओं को पीछे करके अर्थात् छोड़ कर निराशा को धारण किया है।

वस्तुतः 'नैराश्यं परमं सुखम्' निराशा ही परम सुख है जो लोग आशा के दास होते हैं वही सब के दास होते है।

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य ।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः ॥

अपि च—और भी—

असेवितेति-अन्वय—असेवितेश्वरद्वारम्, अदृष्टविरहव्यथम्, अनुक्तक्लीव-वचनम् कस्यापि जीवनम् धन्यम् (भवति)।

शब्दार्थ—असेवितेश्वरद्वारम् = जिसने धनवानों के द्वार की कभी सेवा नही की' अदृष्टविरहव्यथम् = जिसने कभी वियोग की व्यथा का अनुभव नहीं किया है। अनुक्तक्लीववचनम् = जिसने कभी दीनवचन नहीं कहे हैं।

अनुवाद —जिसने कभी धनवानों के द्वार की सेवा नहीं की है, जिसने कभी वियोग-व्यथा का अनुभव नहीं किया है। तथा जिसने कभी दीनवचन नहीं कहे हैं ऐसा किसी ही पुरुष का जीवन धन्य होता है।

अर्थात् ऐसा ही जीवन धन्य होता है जिसमें कभी दीनवचन न बोलना पडें, विरह व्यथा न सहनी पड़े और किसी की सेवा न करनी पड़े पर ऐसा जीवन सब को नहीं मिलता, यह तो किसी भाग्यवान् का ही होता है।

यतः—क्योंकि—

नेति-अन्वय—तृष्णया वाह्यमानस्य योजनशतम् दूरम् न (भवति) सन्तुष्टस्य करप्राप्ते अपि अर्थे आदरः न भवति।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तदत्रावस्थोचित कार्यपरिच्छेदः श्रेयान् ।
को धर्मो, भूतदया, किं सौख्यं नित्यमरोगिता जगति ।
कः स्नेहः सद्भावः किं पाण्डित्यं परिच्छेदः ।।१६०।।
तथा च—

शब्दार्थ—तृष्णया वाह्यमानस्य=तृष्णा के द्वारा प्रेरित किये जाते हुये मनुष्य के लिये, योजनशतम्=सौ योजन (भी), करप्राप्ते अपि अर्थे=हाथ में आये हुए धन पर भी ।

अनुवाद—तृष्णा के द्वारा प्रेरित किये जाते हुए मनुष्य के लिये १०० योजन भी (चार सौ कोस) दूर नहीं होता अर्थात् तृष्णा से प्रेरित होकर मनुष्य सौ योजन तक चला जाता है और दूरी का अनुभव नहीं करता, किन्तु सन्तुष्ट मनुष्य का हाथ में आये हुये धन पर भी आदर नहीं होता ।

शब्दार्थ तदिति—तत्=इस कारण से, अत्र=यहाँ, अवस्थोचितकार्य-परिच्छेदः=अपनी अवस्था अर्थात् निर्धनता के योग्य काम का निर्णय अथवा निश्चय, श्रेयान्=कल्याणकर ।

अनुवाद—तो यहाँ रहकर ही अपनी निर्धनता के योग्य कार्य का निर्णय कर लेना ही श्रेयस्कर है ।

क इति अन्वय—कः धर्मः, भूतदया, किम् सौख्यम्, जगति अरोगिता, कः स्नेहः, सद्भावः, किं पांडित्यम्, परिच्छेदः ।

शब्दार्थ—कः धर्म=धर्म क्या है ? भूतदया=सभी प्राणियों पर दया करना, किम सौख्यम्=सुख क्या है, संसार में नीरोग रहना, कः स्नेहः=स्नेह क्या है, सद्भावः=प्राणियों पर अनुराग रखना, किं पाण्डित्यम्=विद्वत्ता क्या है, परिच्छेदः=सत् असत् का विवेक अर्थात् उचित अनुचित का ठीक ठीक समझना ।

अनुवाद—धर्म क्या है, प्राणियों पर दया करना, सुख क्या है, संसार में नीरोग रहना, स्नेह क्या है, सद्भाव का होना-विद्वत्ता क्या है, अच्छे बुरे को सम्यक् समझना ।

तथा च=और भी—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः ।
अपरिच्छेद कर्तॄणां विपदः स्युः पदे पदे ॥१६१॥
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे स्वात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥१६२॥

अपरञ्च—

पानीयं वा निरायासं, स्वाद्वन्नं वा भयोत्तरम् ।
विचार्य खलु पश्यामि तत् सुखं यत्र निर्वृतिः ॥१६३॥

परिच्छेद इति—यदा विपत्तयः आपन्नाः (स्युः) (तदा) परिच्छेदः हि पाण्डित्यम् (भवति) अपरिच्छेदकर्तॄणाम् पदे पदे विपदः स्युः ।

शब्दार्थ—आपन्नाः (स्युः) प्राप्त हो, परिच्छेदः=विवेक बुद्धि से, कर्तव्या कर्तव्य का निर्णय कर लेना ही, पाण्डित्यम्=विद्वत्ता (होती है) अपरिच्छेदकर्तॄणाम्=विना विवेक के निश्चय कर लेने वालो के लिये ।

अनुवाद—जब विपत्तियाँ प्राप्त हों (तब) विवेक से कर्तव्या कर्तव्य का निर्णय कर लेना ही बुद्धिमत्ता होती है । विवेक पूर्वक कर्तव्य का निर्णय न करने वालो के लिये पद पद पर विपत्तियाँ होती हैं ।

त्यजेदि-अन्वय—कुलस्य अर्थे एकम् त्यजेत् ग्रामस्य अर्थे कुलम् त्यजेत् । जनपदस्य अर्थे ग्रामम् त्यजेत्, स्वात्मार्थे पृथिवीम् त्यजेत् ।

शब्दार्थ—अर्थे=लिये, स्वात्मार्थे=आत्म लाभार्थे ।

अनुवाद—कुल के लिये एक को छोड़ देना चाहिये, ग्राम के लिये कुल को, और जनपद के लिये ग्राम को तथा आत्मलाभ के लिये पृथिवी को भी छोड़ देना चाहिये ।

अपरञ्च=और भी—

पानीयमिति-अन्वय—निरायासम् पानीयम् वा, भयोत्तरं स्वादु अन्नम् वा, विचार्य खलु, यत्र निवृतिः तत् सुखम् इति पश्यामि ।

शब्दार्थ—निरायासम्=विना किसी प्रयत्न के प्राप्त, पानीयम्=जल, भयोत्तरम्=बाद में रोग विकार आदि के भय से व्याप्त, स्वादु=स्वादिष्ट, विचार्य=सोच समझ कर, तत् सुखम् यत्र निर्वृतिः=सुख वही है, जहाँ शान्ति (मिलती) है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इत्यालोच्याहं निर्जनवनमागतः । यतः—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं,
द्रुमालयं पक्वफलाम्बु भोजनम् ।
तृणानि शय्या, परिधान वल्कलं,
न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥१६४॥

ततोऽस्मत् पुण्योदयादनेन मित्रेणाहं स्नेहानुवृत्यानुगृहीतः ।

अनुवाद—विना प्रयास के प्राप्त जल, एवं जिसमें पीछे से रोग विकार आदि का भय न हो ऐसा स्वादिष्ट अन्न, इन दोनों में विचार कर देखने पर, मैं यह देखता हूँ कि सुख वहीं है जहाँ शान्ति मिले ।

तात्पर्य यह है कि उस स्वादिष्ट अन्न की अपेक्षा जिसमें कि खाने के बाद रोग आदि होने का भय हो, बिना प्रयास मिला जल भी अच्छा होता, है क्योंकि सुख वही होता है जहाँ मनुष्य को शान्ति मिलती है किसी प्रकार का भय रोग शोक आदि नहीं होते ।

इतीति—यह सोचकर में निर्जन वन में आ गया । क्योंकि—

वरमिति-अन्वय—व्याघ्रगजेन्द्रसेवितम् द्रुमालयम् पक्वफलाम्वुभोजनम् वनम् (अपि) वरम् (यत्र) तृणानि शय्या, परिधानवल्कलम्, वन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् न वरम् ।

शब्दार्थ—व्याघ्रगजेन्द्र सेवितम्=व्याघ्र गजराज आदि वन्य पशुओं से व्याप्त, द्रुमालयम्=वृक्ष ही जहाँ निवास स्थान है, पक्कफलाम्वुभोजनम् पके फल और जल ही जहाँ भोजन है, तृणानि शय्या=जहाँ तिनके घास ही शयन स्थल हैं, परिधान वल्कलम् वल्कल (वृक्षों की छाल) ही जहाँ वस्त्र हैं ।

अनुवाद—वह वन भी श्रेष्ठ है, जो कि व्याघ्र गजराज आदि वन्य पशुओं से व्याप्त है, जहाँ वृक्ष ही निवास स्थान है, पके फल और जल ही जहाँ भोजन है, जहाँ तिनके घास ही शयन स्थल है, और वल्कल (वृक्षों की छाल) ही जहाँ वस्त्र हैं, किन्तु वन्धुजनों के बीच धन से रहित जीवन श्रेष्ठ नहीं है ।

ततइति शब्दार्थ—अस्मत् पुण्योदयात्=हम लोगों के पुण्य के उदय होने

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अधुना च पुण्यपरम्परया भवदाश्रयः स्वर्ग एव मया प्राप्तः । यतः ।

संसारविष वृक्षस्य द्वे एव रसवत् फले ।
काव्यामृतरसास्वादः सङ्गमः सज्जनैः सह ॥१६५॥

अपरञ्च—

सत्सङ्गः केशवे भक्ति गंङ्गाम्भसि निमज्जनम् ।
असारे खलु संसारे त्रीणि साराणि भावयेत् ॥१६६॥

अहम् स्नेहानुवृत्यानुगृहीतः=मैं उत्तरोत्तर प्रेमाधिक्य से कृतार्थ किया गया, भवदाश्रयः=आपका आश्रय ।

अनुवाद—तब हमारे पुण्यों के उदय से मित्र लघुपतनक के द्वारा उत्तरोत्तर प्रेमाधिक्य से मैं कृतार्थ किया गया हूँ और अब तो स्वर्ग के समान सुखद आपका आश्रय मुझे मिल गया है ।

यतः=क्योंकि—

संसारेति-अन्वय—संसारविषवृक्षस्य, काव्यामृतरसास्वादः, सज्जनैः सह सङ्गमः इति द्वे एव रसवत् फले(स्तः) ।

शब्दार्थ—संसारविषवृक्ष्स्य=संसार रूपी विष के वृक्ष के, काव्यामृतरसास्वादः=काव्यरूपी अमृत के रस का आस्वादन, इति द्वे एव=यही दो, रसवत् फले=सरस फल ।

अनुवाद— संसार रूपी विष के वृक्ष के, काव्यामृत के रस का आस्वादन सज्जनों के साथ समागम, यही दो सरस फल हैं ।

दुःखद होने के कारण संसार विषवृक्ष के समान कटु फल देने वाला है, किन्तु फिर भी इस विषवृक्ष के दो फल—काव्यामृत के रस का आस्वादन और सत्संगति—ये सरस फल है अर्थात् दुःखद भी संसार में काव्य और सत्संग ये दो आनन्दप्रद हैं ।

अपरञ्च-और भी—

सत्सङ्ग इति अन्वयः—असारे खलु संसारे, सत्सङ्गः, केशवे भक्तिः, गङ्गाम्भसि निमज्जनम्, इति त्रीणि साराणि भावयेत् ।

शब्दार्थ—असारे=तत्व रहित, सत्सङ्गः=सज्जनों का संग, गङ्गाम्भसि=गंगा के अम्मस् (जल) में, निमज्जनम्=स्नान करना, साराणि=

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मन्थर उवाच—

अर्था पादरजोपमा, गिरिनदी वेगोपमं यौवनम्,
आयुष्यं जल लोलबिन्दु चपलं फेनोपमं जीवितम् ।
धर्मं यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनम्,
पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते ॥१६७॥

तात्विक वस्तुयें, भावयेत् समझनी चाहिये ।

अनुवाद—(इस) असार (सार रहित) संसार में, सत्सङ्ग, केशव-भगवान में भक्ति और गंगा के जल में स्नान करना, इन तीन ही वस्तुओं को सार समझना चाहिये ।

मन्थर उवाच—मन्थर नामक कच्छप ने कहा—

अर्था इति अन्वय—अर्थाः पादरजोपमाः, यौवनम् गिरिनदी वेगोपमम् आयुष्यम् जललोलविन्दुचपलम्, जीवितम् फेनोपमम् यः निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनम् धर्मम् न करोति (सः) जरापरिगतः पश्चात्तापयुतः (सन्) शोकाग्निना दह्यते ।

शब्दार्थ—अर्थाः=धन, पादरजोपमाः=पैरों की धूलि के तुल्य, यौवनम्=युवावस्था, गिरिनदीवेगोपमम्=पर्वतीय नदियों के वेग के तुल्य अर्थात् शीघ्रगामी, आयुष्यम्=आयु, जललोलबिन्दुचपलम्=जल के अस्थिर विन्दुओं के समान चञ्चल, जीवितम्=जीवन, फेनोपमम्=जल के झाग के तुल्य, निन्दितमतिः=निन्दित बुद्धिवाला, स्वर्गार्गलोद्घाटनम्=स्वर्ग के द्वार (अर्गला चटकनी) को खोलने वाला, जरापरिगतः=जराजीर्ण=वृद्धावस्था से शिथिल, पश्चात्तापयुतः=मरणसमय में सन्ताप से युक्त होकर, शोकाग्निना=शोक की अग्नि से, दह्यते=जलता है ।

अनुवाद—सम्पत्तिश्राँ चरणधूलि के तुल्य (त्याज्य) होती हैं, यौवन पर्वतीय नदियों के वेग के तुल्य (शीघ्र वीत जाने वाला) होता है, आयु जल के अस्थिर विन्दुओं के समान चञ्चल (अस्थायी) होता है, जीवन झाग के के समान (क्षणभङ्गुर) होता है, जो निन्दित वुद्धि वाला मनुष्य, स्वर्ग के द्वार को खोलने वाले धर्म को नहीं करता है, वह बुढ़ापे से व्याप्त होकर मरणसमय में सन्तापयुक्त होकर शोक रूपी अग्नि से जलता है । (रजस् शब्द सकारान्त और अकारान्त भी होता है) ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

युष्माभिरतिसञ्चयः कृतस्तस्यायं दोषः। शृणु—

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदर संस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥१६८॥

अन्यच्च—

यदधोऽधः क्षितौ वित्तं निचखान मितम्पचः।
तदधो निलयं गन्तुं चक्रे पन्थान मग्रतः॥१६९॥

युष्माभिरिति—आप लोगों के द्वारा बहुत अधिक (धन का) सञ्चय किया गया था, उसका ही यह दोष है। सुनिये—

उपार्जितानामिति-अन्वय—उपार्जितानाम् वित्तानाम् त्यागः एव हि, रक्षणम् तडागोदरसंस्थानाम् अम्भसाम् परीवाहः इव।

शब्दार्थ—उपार्जितानाम् वित्तानाम्=अर्जित कर सञ्चित किये गये धनों का, त्यागः=दान करना, तडागोदरसंस्थानाम्=तालाव के मध्य भरे हुये, अम्भसाम्=जलों का, परीवाहः इव=निष्कासन के समान।

अनुवाद—अर्जित कर सञ्चित किये गये धनों का दान कर देना ही (उनकी) उसी प्रकार रक्षा करना है, जैसे तालाव के मध्य भरे हुये जलों का निष्कासन ही उनकी रक्षा करना है।

यदि जल तालाब से वाहर न निकाला जाय तो कुछ दिन में वह गन्दा होकर अपेय हो जाता है, अतः उसका निष्कासन ही उसकी रक्षा करना है, इसी प्रकार सञ्चित धन का दान करना ही उसका रक्षित करना है।

अन्य-च्च—और भी—

यदिति-अन्वय—यत् मितम्पचः क्षितौ अधोऽधः वित्तम् निचखान, तत् सः अग्रतः (एव) अधोनिलयम् गन्तुम् पन्थानम् चक्रे।

शब्दार्थ—मितम्पचः=स्वोदरपूर्तिमात्र अल्प पकाने वाला, अर्थात् कृपण, अधोऽधः=नीचे नीचे, निचखान=गाड़ दिया है, तत्=वह मानो, उसने, अग्रतः एव=मरने से पहले ही, अधोनिलयम् गन्तुम्=नरक में जाने के लिये, पन्थानम्-चक्रे=मार्ग वना लिया है।

अनुवाद—जिस कृपण ने पृथिवी में अपने धन को नीचे से नीचे गाड़

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपरञ्च—

निजसौख्यं निरुन्धानो यो धनार्जनमिच्छति ।
परार्थं भारवाहीव क्लेशस्यैव हि भाजनम् ॥१७०॥

अन्यच्च—

दानोपभोगहीनेन धनेन धनिनो यदि ।
भवामः किं न तेनैव धनेन धनिनो वयम् ॥१७१॥

दिया है उसने मानो पहले से ही नीचे अर्थात् नरक में जाने के लिये मार्ग बना लिया है ।

अर्थात् जिसने दान और भोग से रहित धन को पृथ्वी में गाड़ कर रख दिया है, उसने मानो अपने लिये नरक का मार्ग बना लिया है ।

अन्यच्च-और भी—

निजेति-अन्वय—यः निजसौख्यम् निरुन्धानः धनार्जनम् इच्छति । सः परार्थवाही इव क्लेशस्यैव हि भाजनम् ।

शब्दार्थ—निजसौख्यम्=अपने सुख को, निरुन्धानः=रोकता हुआ अर्थात् स्वयं कष्ट भोगता हुआ, धनार्जनम् इच्छति-धन कमाना चाहता है । परार्थ भारवाही इव=दूसरे के लिये बोझ ढोने वाले की तरह, क्लेशस्यैव भाजनम्=दुःख का ही पात्र ।

अनुवाद—जो मनुष्य अपने सुख की उपेक्षा करता हुआ अर्थात् स्वयं कष्ट उठाता हुआ केवल धन कमाना चाहता है वह दूसरे के लिये बोझ ढोने वाले मनुष्य के समान कष्ट का ही भागी होता है ।

अर्थात् ऐसा व्यक्ति दूसरों के लिये ही धन कमाता और सञ्चित करता है, उससे स्वयं कुछ सुख नहीं उठा पाता ।

अन्यच्च—और भी—

दानेति-अन्वय—यदि दानोपभोगहीनेन धनेन (जनाः) धनिनः (भवन्ति) तदा तेनैव धनेन वयम् अपि धनिनः किम् न भवामः ।

शब्दार्थ—दानोपभोगहीनेन=दान और उपभोग से रहित, धनेन=धन से अर्थात् केवल अर्जित और सञ्चित किये गये धन से ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

किञ्च—

दानोपभोगहीनाश्च दिवसा यान्ति यस्य वै।
सकर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥१७२॥
धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते,
बलेन किं यश्च रिपून् न वाधते।

अनुवाद—दान और उपभोग से रहित धन से यदि लोग धनी बनते हैं तव तो उसी धन से हम लोग भी क्यों न धनी हों।

तात्पर्य यह है कि यदि किसी कृपण ने परिश्रम पूर्वक धन कमा कर सञ्चित कर रखा है पर उसका न तो उसने स्वयं उपभोग ही किया और न किसी को उसे दिया ही है, और अपने को धनी मानता है तव तो उसी धन से हम लोग भी अपने को धनी मान सकते हैं, क्योंकि न तो ऐसे धन का उसके लिए ही कोई उपयोग है और न हमारे लिए ही।

किञ्च—और भी—

दानेति-अन्वय—यस्य वै दानोपभोगहीनाः दिवसाः यान्ति स कर्मकार भस्त्रा इव श्वसन् अपि न जीवति।

शब्दार्थ—दानोपभोगहीनाः=दान और उपभोग से रहित, यान्ति= व्यतीत होते हैं, कर्मकारभस्त्रा इव=लोहार (लोहे का काम करने वाला) की भस्त्रा=धोंकनी या भाथी की तरह, श्वसन्=सांस लेता हुआ भी, न जीवति=जीता नहीं है।

(लौहकार चमड़े की वनी हुई धौंकनी से अग्नि प्रदीप्त कर लोहा गरम करता है, धौंकनी का काम मनुष्य के द्वारा श्वास लेने और उसके पुनः बाहर निकालने के समान होता है, मनुष्य इसी श्वास प्रश्वास के सहारे जीता है'

अनुवाद—जिस मनुष्य के दिन, दान और उपभोग से रहित होकर व्यतीत होते हैं, अर्थात् जो कमी अर्जित धन का दानोपभोग नहीं करता है, वह मनुष्य लोहकार की भस्त्रा के समान श्वास लेता हुआ भी जीता नहीं है, अर्थात् उसे मृतक ही समझना चाहिए।

धनेनेति-अन्वय—यः न ददाति, न अश्नुते (तस्य) धनेन किम्, यः च

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

श्रुतेन किं यो न च धर्मं माचरेत्,
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥१७३॥

असम्भोगेन सामान्यं कृपणस्य धनं परैः।
अस्येद मिति सम्बन्धो हानौ दुःखेन गम्यते ॥१७४॥

रिपून् न वाधते (तस्य) वलेन किम्, यः धर्मम् न आचरेत् (तस्य) श्रुतेन किम्, यः जितेन्द्रियः न भवेत् (तस्य) आत्मना किम् ।

शब्दार्थ—अश्नुते=खाता है, धनेन किम्=धन से क्या लाभ, अर्थात् उसका वह धन व्यर्थ है । रिपून्=शत्रुओं को, वाधते=दवाता है, श्रुतेन=शास्त्रों के सुनने से; आत्मना=शरीर या जीवन से ।

अनुवाद—जो (अपने धन का) न तो दान करता है और न स्वयं खाता है उसके उस धन से क्या लाभ ? अर्थात् वह व्यर्थं है, जो (अपने वल से) शत्रुओं को दवा नहीं पाता, उसके उस बल से क्या ? अर्थात् वह बल व्यर्थ है, जो (अपने शास्त्राध्ययन और श्रवण के अनुसार) धर्म का आचरण नहीं करता उसके उस शास्त्र श्रवण से क्या लाभ ? अर्थात् वह व्यर्थ है । जो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं करता, उसके शरीर या जीवन से क्या लाभ ? अर्थात् अजितेन्द्रिय का जीवन व्यर्थ है ।

असम्भोगेनेति-अन्वय—कृपणस्य धनम् असम्भोगेन परैः सामान्यम्, हानौ 'दुःखेन अस्य इदम्' इति सम्बन्धो गम्यते ।

शब्दार्थ—असम्भोगेन=भोग न करने से, धन का उपयोग या उपभोग न करने के कारण, परैः=दूसरे अर्थात् धनहीन जनों के, सामान्यम्=समान या तुल्य होता है । हानौ—चोर आदि के द्वारा धन की हानि होने पर, दुःखेन=उस धन के नाश से उत्पन्न दुःख या अपमान के कारण, अस्य इदम्='इस कृपण का यह धन हे' ऐसा सम्बन्ध, गम्यते=माना जाता है ।

अनुवाद—कृपण जन का धन, उपयोग रहित होने के कारण, 'यह धन उसका है अर्थात् उस धन का कृपण, स्वामी है अथवा कोई दूसरा, वह बात एक समान रहती है, यदि चोर आदि के द्वारा वह धन चुरा लिया जाता है, तव वह जिसको दुःख होता है तव ही यह जाना जाता है कि यह धन इस कृपण का था, अन्यथा वह सर्व सामान्य ही रहता है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने।
कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः ॥१७५॥
दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गति र्भवति ॥१७६॥
दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
वित्तं त्यागनियुक्तं लोके, एतच् चतुष्टयं दुर्लभम् ॥१७७॥

नेति-अन्वय—कृपणस्य धनम्, देवाय न, विप्राय न, बन्धुभ्यः न, आत्मने च न याति, (अपितु वह्नितस्करपार्थिवैः ह्रियते।

शब्दार्थ—न च आत्मने याति=और न अपने ही उपयोग में लगता है, वह्नितस्करपार्थिवैः ह्रियते=बल्कि वह अग्नि, चोर और राजा के द्वारा हरण कर लिया जाता है।

अनुवाद—कृपण का धन न तो देवता के लिए, न ब्राह्मण के लिए, न बन्धुजनों के लिए और न अपने ही उपभोग के लिए काम आता है, अपितु वह, अग्नि, चोर और राजाओं के द्वारा हरण कर लिया जाता है।

दानमिति-अन्वय—दानम् भोगः नाशः इति वित्तस्य तिस्रः गतयः भवन्ति, यः न ददाति, न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिः भवति।

शब्द र्थ—भोगः=उपभोग करना, तिस्रः गतयः=तीन गति।

अनुवाद—धन की तीन गति होती हैं, दान, उपभोग और नाश, जो व्यक्ति न तो दान करता है और न स्वयं धन का उपयोग करता है, उस धन की तीसरी गति होती है अर्थात् वह नष्ट हो जाता है।

दानमिति-अन्वय—प्रियवाक्सहितम् दानम्, अगर्वम् ज्ञानम्, क्षमान्वितम् शौर्यम्, त्यागनियुक्तम्, वित्तम् एतत् चतुष्टयं दुर्लभम्।

शब्दार्थ—प्रियवाक्सहितम् दानं=प्रियवचन सहित दान, अगर्वम्=गर्व रहित, क्षमान्वितम् शौर्यम्=क्षमायुक्त वीरता, त्यागनियक्तम्=दान से युक्त।

अनुवाद—प्रिय वचनों के साथ दान देना, घमण्ड से हीन ज्ञान, क्षमा से युक्त वीरता दान युक्त धन, ये चार बातें दुर्लभ होतीं हैं।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

उक्तञ्च—

कर्तव्यः सञ्चयो नित्यं कर्तव्यो नाति सञ्चयः।
पश्य सञ्चयशीलोऽसौ धनुषा जम्बुको हतः ॥१७८॥

तावाहतुः—कथमेतत्—मन्थरः कथयति—

सञ्चय शील जम्बुक कथा

आसीत् कल्याण कटकवास्तव्यो भैरवोनाम व्याधः। स चैकदा मांसलुब्धः धनुरादाय मृगमन्विष्यमाणो विंध्याटवीं गतवान्। ततस्तेन व्यापादितं मृगमादाय गच्छता घोराकृतिः शूकरो दृष्टः।

तेन व्याधेन मृगं भूमौ निधाय शूकरः शरेणाहतः। शूकरेणापि धनघोरगर्जनं कृत्वा स व्याधो मुष्कदेशे हतः सन् छिन्नद्रुम इव भूमौ निपपात। यतः—

उक्तञ्च—कहा भी है—

कर्तव्य इति—सञ्चयः नित्यम् कर्तव्यः, अतिसञ्चयः न कर्तव्यः, पश्य, सञ्चयशीलः असौ जम्बुकः धनुषा हतः।

अनुवाद—नित्य मनुष्य को धनसञ्चय करना चाहिए, परन्तु अधिक सञ्चय न करना चाहिए, देखो अधिक सञ्चय शील गीदड़ धनुष के द्वारा मारा गया था।

तौ आहतुः—उन दोनों ने कहा,

एतत् कथम्—यह कैसे ?

मन्थरः कथयति—मन्थर कच्छप कहता है—

(सञ्चय शील जम्बुक की कथा)

असीदिति-शब्दार्थ—कल्याणकटक वास्तव्यः=कल्याणकटक नामक प्रदेश में रहने वाला, व्याधः=बहेलिया, मांसलुब्धः=मांस के लिये लालायित, अन्विष्यमाणः=खोजता हुआ, विन्ध्याटवीम्=विंध्य प्रदेश के जंगल में, व्यापादितम्=मारे गये, घोराकृतिः=भयानक आकृति वाला, निधाय=रखकर, आहतः=ताडित, घनघोरगर्जनम्=मेघवत् भयानक गर्जना को, मुष्कदेशे, अण्डकोश स्थल पर, छिन्नद्रुम इव=कटे हुये वृक्ष के समान।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

जल मग्नि बिषं शस्त्रं क्षुद् व्याधिः पतनं गिरेः ।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणै विमुच्यते ॥१७६॥

अथ तयोः पादास्फालनेन सर्पोऽपि मृतः । अथानन्तरम् दीर्घरावो नाम जम्बुकः परिभ्रमन्नाहारार्थी तान् मृतान् मृग व्याध सर्पशूकरानपश्यत् । अचिन्तयच्च—अहो, अद्य महद् भोज्यं मे समुपस्थितम्—अथवा—

अनुवाद—कल्याणकटक प्रदेश का रहने वाला भैरव नामक एक बहेलिया था। मांस के लिये इच्छुक वह एक बार धनुष लेकर मृग को खोजता हुआ विन्ध्य प्रदेश के जंगल में गया। तब अपने द्वारा मारे गये मृग को लेकर जाते हुये उसने एक भयानक आकृति वाला शूकर देखा।

उस बहेलिये ने मृग को भूमि पर रखकर शूकर को वाण से मारा, शूकर के द्वारा भी घनघोर गर्जना करके वह बहेलिया उसके अण्डकोश प्रदेश में मारा गया होकर कटे वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पड़ा (और मर गया)।

यतः—क्योंकि—

जलमिति-अन्वय—जलम् अग्निः, विषम्, शस्त्रम् क्षुद, व्याधिः, गिरेः पतनम् किञ्चिद् निमित्तम् आसाद्य, देही प्राणैः विमुच्यते।

जलमिति शब्दार्थ—क्षुद्=भूख, व्याधिः=रोग, गिरेः पतनम्=पर्वत से गिरना, किञ्चित् निमित्तम् आसाद्य=किसी भी निमित्त (बहाना या कारण) को लेकर, देही प्राणैः विमुच्यते=प्राणी प्राणों से रहित हो जाता है।

अनुवाद—जल अग्नि विष शस्त्र क्षुधा, व्याधि और पर्वत से गिरना, आदि इनमें से कोई भी निमित्त लेकर प्राणी प्राणों से रहित हो जाता है अर्थात् मर जाता है।

अथेति—शब्दार्थ—पादास्फालनेन=पैरों के इधर-उधर पटकने से, आहारार्थी परिभ्रमन्=भोजन की चाह में घूमता हुआ, महद्भोजनम्=बहुत बड़ा भोजन।

अनुवाद—इसके बाद उन दोनों के इधर-उधर पैर पटकने से सर्प भी मर गया। इसके बाद दीर्घराव नाम के गीदड़ ने, भोजन को चाहते हुए,

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अचिन्तितानि दुःखानि यथैवा यान्ति देहिनाम् ।
सुखान्यापि तथा मन्ये दैवमत्रातिरिच्यते ॥१८०॥

तद् भवतु एषां मांसे मांसत्रयं मे सुखेन गमिष्यति—

मास मेकं नरो याति द्वौ मासौ मृग शूकरौ ।
अहि रेकं दिनं याति, अद्य भक्ष्यो धनुर्गुणः ॥१८१॥

ततः प्रथम बुभुक्षायामिदं निःस्वादु कोदण्डाटनीलग्नं स्नायुबन्धनं खादामि—इत्युक्त्वा तथा कृते सति छिन्ने स्नायुबन्धने द्रुतमुत्पतितेन धनुषा हृदि निर्भिन्नः स दीर्घरावः पञ्चत्वं गतः ।

घूमते हुए, उन मरे हुए मृग व्याध सर्प और शूकर को देखा और सोचा, भाग्यतः आज मेरे लिए वहुत वड़ा भोजन प्राप्त हुआ है—अथवा

अचिन्तितानीति-अन्वय—यथा एव अचिन्तितानि दुःखानि देहिनाम् आयान्ति, तथैव सुखानि अपि आयान्ति, इति मन्ये, अत्र दैवम् अतिरिच्यते ।

शब्दार्थ—अचिन्तितानि=आकस्मिक, देहिनाम्=शरीरधारियों को, आयान्ति=प्राप्त होते हैं, मन्ये=मैं ऐसा समझता हूँ, दैवम्=भाग्य, अत्र=इस विषय में, अतिरिच्यते=सबसे प्रबल होता है ।

अनुवाद—जिस प्रकार आकस्मिक दुःख शरीरधारियों को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार सुख भी होते हैं, इस विषय में भाग्य ही सबसे प्रबल होता है ।

तदिति—अनुवाद—तो अच्छा है, इनके मांस से मेरे तीन महीने सुख से बीत जायेंगे ।

मासमिति—अन्वय—एक मासम् नरः याति, मृग शूकरौ द्वौ मासौ, अहिः एकं दिनम् याति, अद्य (मया) धनुर्गुणः भक्ष्यः ।

शब्दार्थ—अहिः=सर्प, धनुर्गुणः=धनुष् की प्रत्यञ्चा ।

अनुवाद—एक माह तक तो मनुष्य (का माँस) चलेगा, दो माह तक, मृग और शूकर (के मांस) चलेंगे, एक दिन सर्प चलेगा, तो आज मुझे धनुष की प्रत्यञ्चा (जो कि तांत की बनी होती है) खानी चाहिये ।

तत इति—शब्दार्थ—प्रथमबुभुक्षायाम्=पहली खाने की इच्छा में अर्थात् पहली भूख में, निःस्वादु=स्वाद रहित, कोदण्डाटनीलग्नम्=धनुष,

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

"अतोऽहं ब्रवीमि—कर्तव्यः सञ्चयो नित्यम्" इति—
तथा च—

यद्ददाति यदश्नाति तदैव धनिनां धनम् ।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥१८२॥

किञ्च—

यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने ।
तत्ते वित्त महं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि ॥१८३॥

के अग्रभाग में (निकारों पर) बँधी हुई, स्नायुबन्धनम्=तांत की रस्सी को, तथा कृते=वैसा ही करने पर, छिन्ने स्नायुबन्धने=ताँत के बन्धन के टूट जाने पर, द्रुतम् उत्पतितेन धनुषा=शीघ्र खुलकर उछले हुये धनुष् से, हृदि निर्भिन्नः=हृदय पर घायल हुआ, पञ्चत्वं गतः=मर गया।

अनुवाद—तब पहली भूख में मैं इस स्वादरहित धनुष के अग्रभाग में बंधे हुए तांत के बन्धन (रस्सी) को खाता हूँ, ऐसा कहकर वैसा ही करने पर, तांत के बन्धन के टूट जाने पर शीघ्र ही उछले हुये धनुष से हृदय में घायल हुआ वह जम्बुक मर गया।

इसलिये मैं कहता हूँ—नित्य संचय करना चाहिए—इत्यादि।

और वैसा ही—

यदिति—**अन्वय**—यद् धनम् ददाति, यद् धनम् अश्नाति च, धनिनाम् तत् एव धनम्। अन्ये मृतस्य दारैः अपि धनैः अपि क्रीडन्ति।

शब्दार्थ—अश्नाति=खाता है, दारैः अपि=पत्नियों के साथ।

अनुवाद—जो धन दान में दे दिया जाता है और जो अपने खाने में व्यय होता है, वही धनी जनों का वास्तविक धन है अर्थात् दान और भोग से रहित धन किसी का भी धन नहीं होता, क्योंकि धन सञ्चय करने वाले मृतक के धन से और पत्नी से दूसरे लोग ही क्रीडा करते हैं। कृपण के मर जाने पर उसके धन तथा उसकी पत्नी से दूसरे लोग ही क्रीडा करते हैं।

किञ्च—और भी—

यदिति—**अन्वय**—दिने दिने यत् विशिष्टेभ्यः ददासि, यत् च अश्नासि, तत् ते वित्तम् इति अहम् मन्ये, शेषम् कस्यापि रक्षसि।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यातु, किमिदानीमतिक्रान्तोपवर्णेन । यतः—

ना प्राप्यमभिवाञ्छन्ति, नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्स्वपि न मुह्यन्ति, नराः पण्डितबुद्धयः ।।१८४।।

तत्सखे ! सर्वदा त्वया सोत्साहेन भवितव्यम् । यतः—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।

शब्दार्थ—विशिष्टेभ्यः=श्रेष्ठ सत्पात्रों को, तत् ने वित्तम्=वही तुम्हारा धन है, इति अहं मन्ये=ऐसा मैं मानता हूँ, शेषम् कस्यापि रक्षसि=शेष धन तो तुम किसी दूसरे का धन रक्षित करते हो, अर्थात् शेष तुम्हारा नहीं, किसी दूसरे का है, जिसकी तुम स्वयं रखवाली करते हो ।

अनुवाद—जो धन तुम संतपात्रों को दे देते हो और स्वयं जो कुछ उपभोग कर लेते हो, वही वास्तव में तुम्हारा धन है, ऐसा मैं समझता हूँ, इससे वचा हुआ धन तो वस्तुनः किसी दूसरे का है जिसकी तुम रक्षा करते हो ।

यातु इति-अनुवाद—अच्छा जाने दो, इस समय बीती हुई वातों के वर्णन से क्या लाभ । क्योंकि—

नेति—अन्वय—(ये) अप्राप्यम् न अभिवाच्छन्ति, नष्टम् शोचितुम् न इच्छन्ति, आपत्सु अपि न मुह्यन्ति, (ते) नराः पण्डितबुद्धयः (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—अप्राप्यम्=अलभ्य धनादि पदार्थों को, अभिवाञ्छन्ति=चाहते हैं, नष्टम्=गत वातों को, अथवा नष्ट हुए धनादि को, शोचितुम् न इच्छन्ति=शोक करने की इच्छा नहीं करते, आपत्सु अपि=विपत्तियों में भी, न मुह्यन्ति=घवड़ाते नहीं हैं, पण्डितवुद्धयः=पण्डित्यपूर्ण बुद्धि वाले ।

अनुवाद—वे मनुष्य पाण्डित्यपूर्ण बुद्धि वाले होते हैं जो अलभ्य धनादि पदार्थों को नहीं चाहते, गत बातों या पदार्थों के लिए शोक नहीं करते और आपत्तियों में भी घवराते नहीं हैं ।

तदिति-अनुवाद—तो हे मित्र ! तुम्हें सदा उत्साह-सम्पन्न होना चाहिए । क्योंकि—

शास्त्राणीति-अन्वय—शास्त्राणि अधीत्य अपि (जनाः) मूर्खाः भवन्ति, यः तु क्रियावान्, स पुरुषः विद्वान् (भवति) सुचिन्तितम् अपि औषधम् नाम

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सुचिन्तितं चौषध मातुराणां,
न नाम मात्रेण करोत्य रोगम् ॥१८५॥

अन्यच्च –

न स्वल्पमप्यध्यवसायभीरोः,
करोति विज्ञानविधि र्गुणं हि ।
अन्धस्य किं हस्ततलस्थितोऽपि,
प्रकाश यत्यर्थ मिह प्रदीपः ॥१८६॥

मात्रेण आतुराणाम् अरोगम् न करोति ।

शब्दार्थ—अधीत्य=पढकर, क्रियावान्=कार्यकुशल, सुचिन्तिम् अपि औषधम्=अच्छी तरह विचार कर निश्चित की गई भी औषधि, नाममात्रेण =केवल उसका नाम लेने मात्र से ही, आतुराणाम्=रोगियों के, आरोगम् =रोगनाश ।

अनुवाद—शास्त्रों को पढ़कर भी (कुछ लोग) मूर्ख ही रहते हैं, किन्तु जो कार्य करने में कुशल होता है, वही वस्तुतः विद्वान् होता है, अर्थात् पढ़कर भी जो उस ज्ञान का या ज्ञात वस्तु का सम्यक् प्रयोग भी करना जानता है, वही विद्वान् होता है । भली-भाँति पढ़कर सुनिश्चित की गई भी औषधि केवल उसका नाम लेने मात्र से ही, रोगियों के रोग का नाश नहीं करती । विविध औषधियों का ज्ञाता भी जब तक उनका सुप्रयोग नहीं करता तब तक रोगियों को कोई लाभ नहीं होता ।

अन्यच्च-और भी—

नेति-अन्वय—विज्ञानविधिः अध्यवसायभीरोः स्वल्पम् अपि गुणम् न करोति । हि इह हस्ततलस्थितः अपि प्रदीपः अन्धस्य अर्थम् प्रकाशयति किम् ? ।

शब्दार्थ—विज्ञानविधिः=शास्त्र कला कौशल आदि की विधि । अध्यवसायभीरोः=उद्योग से डरने वाले मनुष्य के लिये । स्वल्पम् अपि गुणम्=थोड़ा सा भी गुण या लाभ । हि इह=क्योंकि यहाँ, हस्ततलस्थितः अपि प्रदीपः=हाथ में रखा हुआ भी दीपक, अर्थम्=वस्तु ।

अनुवाद—शास्त्र कला आदि का ज्ञान, उद्योग से डरने वाले व्यक्ति के

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तदत्र सखे ! दशाविशेषे शान्तिः करणीया । एतदप्यतिकष्टं त्वया न मन्तव्यम् । यतः—

राजा, कुलवधूर्विप्रा, मन्त्रिणश्च पयोधराः ।
स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ॥१८७॥

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत् ॥१८८॥

—किन्तु कापुरुष वचनमेतत्—यतः—

लिये थोड़ा सा भी लाभ नहीं पहुँचा पाता । जैसे कि हाथ पर रखा हुआ भी दीपक क्या अन्धे मनुष्य के लिए वस्तु प्रकाश कर सकता है अर्थात् नहीं ।

तदिति-अनुवाद—इसलिए हे मित्र ! इस विशेष प्रकार की स्थिति में तुम्हें शान्ति रखना चाहिये, अर्थात् इस दुखद स्थिति को समय विशेष का परिणाम मानकर तुम्हें अपने मन को शान्त रखना चाहिये । और इस अति-दुख को भी तुम्हें न मानना चाहिये अर्थात् इस विपत्ति को भी, तुम्हें अधिक दुःखद न समझना चाहिये क्योंकि—

राजेति-अन्वय—राजा, कुलवधूः, विप्राः मन्त्रिणः पयोधराः च दन्ताः केशाः नखाः नराः च, स्थानभ्रष्टाः (भूत्वा) न शोभन्ते ।

शब्दार्थ—कुलवधः=कुलीन स्त्री, विप्राः=ब्राह्मण, पयोधराः=स्तन, स्थानभ्रष्टाः=अपने स्थान से गिर कर, न शोभन्ते=शोभा नहीं पाते ।

अनुवाद—राजा, कुलीन स्त्री, ब्राह्मण, मन्त्री, स्तन, दाँत, नख, केश एवं मनुष्य अपने उचित स्थान से गिर कर शोभा नहीं पाते ।

स्थानेति-अन्वय—दन्ताः केशाः नराः नखाः स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते, इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानम् न परित्यजेत् ।

अनुवाद—दांत, नख, केश और मनुष्य अपने स्थान से गिरकर शोभा नहीं पाते, यह जाकर बुद्धिमान् मनुष्य को अपना स्थान न छोड़ना चाहिये ।

किन्तु-इति-अनुवाद—किन्तु ये दोनों ही वचन कायरों के हैं ।

यतः=क्योंकि—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

स्थान मुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः ।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः ॥१८९॥
को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा,
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते वाहुप्रतापार्जितम् ।
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरै स्तृणां छिनत्त्यात्मनः ॥१९०॥

स्थानमिति-अन्वय—सिंहाः सत्पुरुषाः गजाः स्थानम् उत्सृज्य गच्छन्ति (किन्तु) काकाः कापुरुषाः मृगाः तत्रैव निधनम् यान्ति ।

शब्दार्थ—उत्सृज्य=छोड़कर, कापुरुषाः=कायर जन, तत्रैव=जहाँ पर ये उत्पन्न हुये हैं वहीं, निधनम् यान्ति=मर जाते हैं ।

अनुवाद—सिंह. सत्पुरुष और गज, अपने जन्म स्थान को छोड़कर चले जाते हैं किन्तु कौवे कायर पुरुष और मृग जहाँ जन्म लेते हैं वहीं मर जाते हैं, स्थान छोड़कर नहीं जाते ।

क इति-अन्वय—वीरस्य मनस्विनः कः स्वविषयः कः वा विदेशः तथा । (सः) यम् देशम् श्रयते तम् एव वाहुप्रतापार्जितम् कुरुते । दंष्ट्रानखलाङ्गुल प्रहरणः सिंहः यद् वनम् गाहते । तस्मिन् एव (सः) हतद्विपेन्द्ररुधिरैः आत्मनः तृष्णाम् छिनत्ति ।

शब्दार्थ—मनस्विनः=स्वाभिमानी, स्वविषयः=अपना देश, श्रयते= पहुँचता है, वाहुप्रतापर्जितम्=अपनी भुजाओं के पराक्रम से अधिकृत, दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः=दाढ़ नख और पूंछ जिसके अस्त्र हैं, गाहते= पहुँचता है, हतद्विपेन्द्ररुधिरैः=मारे गये गजराजों के खून से, आत्मनः तृष्णाम् छिनत्ति=अपनी प्यास बुझा लेता है ।

अनुवाद—स्वाभिमानी वीर पुरुष के लिये कौन-सा अपना देश है और कौन-सा विदेश अर्थात् ऐसे व्यक्ति के लिये न तो कोई अपना देश ही होता है और न विदेश, वह जिस देश में पहुँचता है उसी को अपनी भुजाओं के प्रताप से जीतकर अपना बना लेता है । दाढ़ नख पूंछ रुप शस्त्र धारण करने वाला सिंह जिस किसी वन में पहुचता है उसी में (अपने द्वारा) मारे गये गजराजों के रुधिर से अपनी प्यास बुझाता है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपरञ्च—

निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः ।
सोद्योगं नर मायान्ति विवशाः सर्वसम्पदः ॥१९१॥

अन्यच्च—

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥१९२॥

अपरञ्च—और भी—

निपानमिति-अन्वय—मण्डूकाः निपानम् इव, अण्डजाः पूर्णसरः इव, सर्वसम्पदः विवशाः (भूत्वा) सोद्योगम् नरम् आयान्ति ।

शब्दार्थ—मण्डूकाः=मेढक, निपानम्=जलाशय, अण्डजाः=पक्षी, पूर्णसरः=भरे हुए सरोवर के प्रति, सोद्योगम्=उद्योगशील ।

अनुवाद—मेढक जैसे जलाशय के प्रति, पक्षी जैसे पूर्ण सरोवर के प्रति आते हैं वैसे ही सर्व सम्पत्तियाँ विवश होकर उद्योगी पुरुष के पास आती हैं ।

अन्यच्च—और भी—

सुखमिति-अन्वय—आपतितम् सुखम्, आपतितम् दुःखमपि सेव्यम् । सुखानि च दुःखानि च चक्रवत परिवर्तन्ते ।

शब्दार्थ—आपतितम्=उपस्थित हुये, सेव्यम्=अपनाना चाहिये । चक्रवत्=पहिये के समान, परिवर्तन्ते=बदलते रहते हैं ।

अनुवाद—आये हुए सुख को तथा उपस्थित हुये दुख को भी सहन करना चाहिये क्योंकि सुख और दुख दोनों (मानव जीवन में) पहिये के समक्ष परिवर्तित होते रहते हैं ।

सुख और दुःख कभी स्थायी नहीं रहते, अपितु चक्रवत् ये सदा आते जाते रहते हैं, अतः मनुष्य को सुख प्राप्त कर न तो बहुत हर्षित होना चाहिये और न दुःख प्राप्त कर घबड़ाना चाहिये क्योंकि न तो सदा सुख ही बना रहेगा और न दुःख ही, अतः जिस समय जो प्राप्त हो उसे ही अपनाना श्रेयस्कर होता है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च—

उत्साह सम्पन्न मदीर्घसूत्रम् क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं, कृतज्ञं, दृढसौहृदं च, लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥१६३॥

विशेषतश्च—

विनाप्यर्थै र्वीरः, स्पृशति बहुमानोन्नतिपदम्,
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः ।
स्वभावादुद्भूतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां,
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते ॥१६४॥

अन्यच्च—और भी—

उत्साहेति-अन्वय—लक्ष्मीः निवासहेतोः स्वयम्, उत्साहसम्पन्नम् अदीर्घसूत्रम्, क्रियाविधिज्ञम्, व्यसनेषु असक्तम्, शूरम्, कृतज्ञम्, दृढसोहृदं च नरम् याति ।

शब्दार्थ—निवासहेतोः=अपना निवास स्थान बनाने के लिए उत्साहसम्पन्नम्=उत्साह से परिपूर्ण, अदीर्घसूत्रम्=शीघ्रता पूर्वक कार्य करने वाले, क्रियाविधिज्ञम्=कार्य करने के उपाय को जानने वाले, व्यसनेषु असक्तम्=दुर्व्यसनो अर्थात् मद्ययानाखेटादि दुर्व्यसनों में आसक्त न रहने वाले, कृतज्ञम्=कृतोपकार को मानने वाले, दृढ़ सौहृदं=अटल मित्रता वाले ।

अनुवाद—लक्ष्मी अपना निवास स्थान बनाने के लिये स्वयम् उत्साह पूर्ण, अविलम्ब कार्य करने वाले, कार्य करने के उपाय को जानने वाले, दुर्व्यसनों में लग्न न रहने वाले, शूरवीर, कृतज्ञ. एवं सन्मित्रों वाले मनुष्य के पास जाती है ।

अर्थात् लक्ष्मी उसी को प्राप्त होती है जो उक्त गुणों से परिपूर्ण होता है ।

विशेषतश्च—और विशेष रूप से—

विनेति-अन्वय—वीरः विनापि अर्थैः बहुमानोन्नतिपदम् स्पृशति, अर्थैः समायुक्तः अपि कृपणः परिभवपदम् याति, श्वा धृतकनकमालः अपि स्वभावात् उद्भूताम् गुणसमुदयावाप्ति विषयाम्: सैंहीम् द्युतिम् किं लभते ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

धनवानिति हि मदस्ते किं गतविभवो विषाद मुपयासि ।
करनिहत कन्दुक समाः पातोत्पाता मनुष्याणाम् ॥१९५॥

शब्दार्थ—विना अपि अर्थैः=धन के विना भी, बहुमानोन्नतिपदम्=बहुत बड़ी प्रतिष्ठा और उन्नति के पद को, स्पृशति पाता है। समायुक्तः अपि अर्थैः=धन से परिपूर्ण होकर भी, परभवपदम् याति=तिरस्कार को प्राप्त करता है। स्वभावात् उद्भूताम्=निसर्गतः प्राप्त-जन्मजात, गुणसमुदयावाप्तिविषयाम्=अनेक वीरता आदि समूह से मिलने वाली, सैंहीं द्युतिम्=सिंह की शोभा को, श्वा=कुत्ता, धृतकनकमालः अपि=सोने की माला को धारण करके भी।

अनुवाद—धन के विना भी वीर पुरुष बड़ी प्रतिष्ठा और उन्नति के पद को प्राप्त करता है, किन्तु धन से सम्पन्न होकर भी कृपण परिभव पद को पाता है। जन्मजात एवं अनेक गुणों से प्राप्त होने वाली सिंह की शोभा को, स्वर्णमाल धारण करके भी क्या कुत्ता पाता है अर्थात् नहीं।

धनसम्पन्न पर कृपण व्यक्ति को वह प्रतिष्ठा और उन्नति नहीं मिलती जो कि एक निर्धन पर वीर पुरुष प्राप्त करता है। सोने की माला धारण करके भी कुत्ते को वह शोभा नहीं मिलती जो कि पराक्रमी सिंह को जन्म से ही प्राप्त होती है।

धनवानिति-अन्वय—'धनवान् (अस्मि) इति (यदि) ते मदः (अस्ति) (तर्हि) गतविभवः (सन्) किम् विषादम् उपयासि, हि मनुष्याणाम् पातोत्पाताः करनिहतकन्दुक समाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ—मदः=घमण्ड, गतविभवः=धन रहित होकर, विषादम् उपयासि=खेद को प्राप्त होते हो। पातोत्पाताः=उन्नति अवनति, करनिहतकन्दुकसमाः=हाथ से ताड़ित हुये गेंद के समान।

अनुवाद—"मैं धनवान् हूँ" यदि ऐसा घमण्ड तुझे है तो धनहीन होकर "मैं दरिद्री हूँ" ऐसा खेद क्यों होता है क्योंकि मनुष्यों की उन्नति और अवनति तो हाथ से ताड़ित हुये कन्दुक के समान होती है।

हाथ से मारा गया कन्दुक जिस प्रकार ऊपर और फिर नीचे जाता रहता है उसी प्रकार मनुष्य की कभी उन्नति और कभी अवनति भी होती

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अपरञ्च—

अभ्रच्छाया खलप्रीति र्नवसस्यानि योषितः ।
किञ्चित् कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च ॥१९६॥
वृत्त्यर्थं नातिचेष्टेत् सा हि धात्रैव निर्मिता ।
गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्रवतः स्तनौ ॥१९७॥

अपि च—सखे—

है अतः सम्पत्ति में न तो घमण्ड होना चाहिये और न विपत्ति में दुःख ।

अपरञ्च—और भी—

अभ्रेति-अन्वय—अभ्रच्छाया, खलप्रीतिः नवसस्यानि योषितः यौवनानि धनानि च किञ्चित् कालोप भोग्यानि (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—अभ्रच्छाया=मेघों की छाया, खलप्रीतिः=दुष्टजनों की मित्रता, नवसस्यानि=नवीन धान्य, योषितः युवती कामिनी, किञ्चित् कालोपभोग्यानि=थोड़े काल तक भोगने के योग्य होते हैं ।

वृत्त्यर्थमिति—वृत्त्यर्थम् न अति चेष्टेत्, सा, हि धात्रा एव निर्मिता, जन्तौ गर्भात् उत्पतिते (सति) मातुः स्तनौ प्रस्रवतः ।

शब्दार्थ—वृत्यर्थम्=जीविका के लिए, न अति चेष्टेत्=अधिक चेष्टा, न करनी चाहिए हि=क्योंकि, सा=वह, वृत्तिः धात्रा=ब्रह्मा के द्वारा, निर्मिता =बनाई गई है । जन्तौ गर्भात् उत्पतिते=प्राणी के गर्भ से निकलते ही, मातुः स्तनौ प्रस्रवतः=माता के स्तनों से स्वयमेव दूध निकलते लगता है ।

अनुवाद—जीविका के लिए बहुत अधिक चेष्टा न करनी चाहिए, क्योंकि जीविका तो ब्रह्मा के द्वारा निर्मित हुई है । इसीलिए प्राणी के गर्भ से निकलते ही माता के स्तनों से स्वयमेव दूध निकलने लगता है ।

जिस प्रकार मातुः स्तनों से स्वयमेव दूध निकलने में विधि विधान कारण होता है, उसी प्रकार मनुष्य की जीविका में भी विधि नियम ही कारण है, अतः मनुष्य को उसके लिए अतिचेष्टा न करनी चाहिए ।

अपि च सखे—और भी मित्र ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः ।
मयूराश्च चित्रिता येन स ते वृत्ति विधास्यति ।।१९८।।

अपरञ्च सतां रहस्यं शृणु मित्र—

जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु ।
मोहयन्ति च सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः ।।१९९।।

अपरञ्च—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा तस्यापि न सुखावहा ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।।२००।।

येनेति—येन हंसाः शुक्लीकृताः शुकाश्च हरिती कृताः, येन मयूराः च चित्रिताः, स ते वृत्तिम् विधास्यति ।

शब्दार्थ—शुक्लीकृताः = सफेद बनाये, हरितीकृताः = हरित किये, वृत्तिम् जीविका को, विधास्यति = करेगा ।

अनुवाद—जिसने हंसों को सफेद बनाया, शुकों को हरा बनाया और मयूरों को चित्रित किया है वही तुम्हारो जीविका चलायेगा ।

जीविका का विधान भाग्यतः होता है अतः मनुष्य को चिन्तित न होना चाहिए ।

अपरञ्च च सतां रहस्यम् शृणु मित्र !—हे मित्र ! अन्य भी सज्जनों का रहस्य सुनिये ।

जनयन्तीति-अन्वय—अर्जने दुःखम् जनयन्ति, विपत्तिषु तापयन्ति, सम्पत्तौ च मोहयन्ति, अर्थाः कथम् सुखावहाः (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—अर्जने = पैदा करने में, जनयन्ति = उत्पन्न करते हैं । तापयन्ति = दुःख करते हैं, अर्थाः = धन, सुखावहाः = सुखदायक ।

अनुवाद—धन, पैदा करने में दुःख देते हैं, विपत्तियों में सन्ताप उत्पन्न करते हैं, सम्पत्तियों में भी वे मोह उत्पन्न करते हैं, इस तरह धन किस प्रकार सुखकारो होते हैं, अर्थात् किसी भी प्रकार और कभी भी सुखदायक नहीं होते हैं ।

अपरञ्च—और भी—

धर्मार्थमिति-अन्वय—यस्य धर्मार्थम् वित्तेहा तस्य अपि न सुखावहा, हि पङ्कस्य प्रक्षालनात् दूरात् अस्पर्शनम् एव वरम् ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यतः—

यथा ह्यामिष माकाशे पक्षिभिः श्वापदै र्भुवि ।
भक्ष्यते सलिले नक्रैः, तथा सर्वत्र वित्तवान् ।।२०१।।

शब्दार्थ—धर्मार्थम् = धर्म करने के लिए, वित्तेहा = धन की इच्छा, सुखावहा = सुख देने वाली, प्रक्षालनात् = धोने से, पङ्कस्य = कीचड़ को, अस्पर्शनम् = न छूना।

अनुवाद—जिसकी धर्मार्थ भी धन की इच्छा है, उसकी भी वह इच्छा सुखदायक नहीं होती क्योंकि कीचड़ को धोकर साफ कर लेने की अपेक्षा उसका न छूना ही श्रेयस्कर होता है।

अर्थात् शरीर पर पहले कीचड़ पोतना और फिर जल से धोकर उसे साफ कर लेना, इस कार्य की अपेक्षा जैसे कीचड़ का स्पर्श न करना ही अच्छा होता है उसी प्रकार धर्म करने के लिए अर्थात् धर्म कार्यों में धन व्यय करने के लिए धन प्राप्त करने की इच्छा की अपेक्षा, धन न चाहना ही सुखदायक होता है।

यतः—क्योंकि—

यथेति-अन्वय—यथा हि, आकाशे पक्षिभि, भुवि च श्वापदैः, सलिले च नक्रैः आमिषम् भक्ष्यते, तथा वित्तवान् सर्वत्र भक्ष्यते।

शब्दार्थ—यथा हि = जैसे कि, श्वापदैः = जंगली जानवरों द्वारा, नक्रैः = मगरों, आमिषम् = मांस, वित्तवान् = धनवान्।

अनुवाद—जैसे कि, आकाश में पक्षियों के द्वारा, पृथ्वी पर जंगली सिंह व्याघ्रादि के द्वारा, और जल में मगर आदि जीवों के द्वारा, मांस खा लिया जाता है, वैसे ही धनवान् व्यक्ति सर्वत्र खा लिया जाता है।

अर्थात् धनवान् मनुष्य उसी प्रकार जहाँ कहीं भी रहता, आता, जाता है, वहीं वह विविध प्रकार के प्राणियों द्वारा खा लिया जाता है, अर्थात् धनी के धन को जो जहाँ पाता है वह उसे वहाँ चट कर जाता है, जैसे मांस चाहे आकाश में हो, चाहे पृथ्वी पर और चाहे जल में, वह पक्षियों, वन्य जीवों और जल जीवों द्वारा खा लिया जाता है, कहीं भी वह बच नहीं पाता, यही दशा धनी के धन की होती है अतः धन एकत्र करना व्यर्थ होता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

राजतः, सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि ।
भय मर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृता मिव ।।२०२।।

तथा हि—

जन्मनि क्लेशबहुले किं नु दुःख मतः परम् ।
इच्छासम्पद्यतो नास्ति, यच्चेच्छा न निवर्तते ।।२०३।।

अन्यच्च, भ्रातः । शृणु—

राजत इति अन्वय—राजतः सलिलात्, अग्नेः चोरतः, स्वजनात् अपि, अर्थवताम् नित्यम् भयम् (तथैव भवति) इव (यथा) प्राणभृताम् मृत्योः (भयम् भवति) ।

शब्दार्थ—अर्थवताम्=धनवालों को, प्राणभृताम्=प्राणियों को ।

अनुवाद—धनवानों को राजा से, जल से, अग्नि से, चोर से और अपने कुटुम्बियों से नित्य ही (धन हरण का) भय उसी प्रकार बना रहता है, जैसे प्राणधारियों को सदा मृत्यु से भय बना रहता है ।

तथा हि—जैसे—

जन्मनीति-अन्वय—क्लेशबहुले जन्मनि अतः परम् किं नु दुःखम् । यतः इच्छासम्पद् नास्ति, यच् च इच्छा न निवर्तते ।

शब्दार्थ—क्लेश बहुले=अनेक दुखों से भरे हुए, जन्मनि=मानव जीवन में, अतः परम्=इससे और अधिक, किन्नु दुःखम्=क्या दुःख हो सकता है, इच्छा सम्पद्=मन चाही सम्पत्ति, इच्छा न निवर्तते=और इच्छा भी दूर नहीं होती ।

अनुवाद—अनेक दुःखों से भरे हुए इस मानव जीवन में इससे बढ़कर और क्या दुःख हो सकता है कि मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुकूल सम्पत्ति तो मिलती नहीं, तथापि उसकी धनप्राप्ति की इच्छा की निवृत्त भी नहीं होती ।

अर्थात् इच्छानुकूल धन न मिलने पर भी मनुष्य धन प्राप्ति के लिए ही दौड़ता रहता है और अनेक दुःख उठाता रहता है, यह बड़े कष्ट की बात है ।

अन्यच्च—और भी, भाई ! सुनो—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

धनं तावद सुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते ।
लब्धनाशो यथा मृत्यु स्तस्मादेतन्न चिन्तयेत् ॥२०४॥
तृष्णां चेह परित्यज्य को दरिद्रः क ईश्वरः ।
तस्याश्चेत् प्रसरो दत्तो दास्यं च शिरसि स्थितम् ॥२०५॥

धनमिति-अन्वय—धनम् तावत् असुलभम् लब्धम् (अपि धनम्) कृच्छ्रेण रक्ष्यते, लब्धनाशः यथा मृत्युः (तथैव दुःखकरः) तस्मात् एतत् न चिन्तयेत् ।

शब्दार्थ—असुलभम्=सरलता से प्राप्त होने वाला नहीं, कृच्छ्रेण= कठिनाई से, लब्धनाशः=प्राप्त धन का नाश ।

अनुवाद—धन पहले तो सरलता से प्राप्त ही नहीं होता, (यदि प्राप्त भी हो जाय तो) कठिनाई से ही उसकी रक्षा हो पाती है किन्तु प्राप्त हुए धन का विनाश तो (उतना ही दुःखद होता है) जितना की मृत्यु से, इसलिये धन की चिन्ता न करनी चाहिए ।

अर्थात् पहले तो धन की प्राप्ति ही कठिन होती है, यदि वह प्राप्त भी हो जाय तो उसकी रक्षा करना कठिन होता है, और यदि वह प्राप्त धन किसी प्रकार चोर आदि के द्वारा नष्ट कर दिया जाय तब तो मनुष्य को उसके नाश से ही उतना दुःख होता है जितना कि अपनी मृत्यु से । अतः धन की चिन्ता करना व्यर्थ है ।

तृष्णामिति-अन्वय—इह तृष्णाम् च परित्यज्य, कः दरिद्रः कः ईश्वरः (अस्ति) चेत् तस्याः प्रसरः दत्तः शिरसि दास्यम् स्थितम् ।

शब्दार्थ—इह=इस लोक में, कः दरिद्र कः ईश्वरः=कौन निर्धन और कौन धनी । तस्याः=उस तृष्णा को, चेत्=यदि, प्रसरः दत्तः=आश्रय दिया गया, दास्यम्=दासता ।

अनुवाद—इस लोक में तृष्णा का परित्याग करके कौन दरिद्र और कौन धनी रह जाता है अर्थात् यदि मनुष्य तृष्णा का त्याग कर देता है तो उसके लिए न कोई धनी रहेगा और न दरिद्र, सभी समान होंगे और यदि उस तृष्णा को आश्रय दिया गया तो फिर दूसरों की दासता सिर पर पड़ेगी ।

अर्थात् केवल तृष्णा ही दरिद्रता का कारण है और तृष्णा के कारण ही संसार में धनी और दरिद्र दिखलाई पड़ते हैं, यदि तृष्णा को छोड़ दिया जाय

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अन्यच्च—

यद्यदेव हि वाञ्छेत् ततो वाञ्छा प्रवर्तते ।
प्राप्त एवार्थतः सोऽर्थो यतो वाञ्छा निवर्तते ॥२०६॥

किं बहुना, मम पक्षपातेन मयैव सहात्र कालो नीयताम् ।

यतः—

आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्तु क्षणभङ्गुराः ।
परित्यागाश्च निःसङ्गा भवन्तीह महात्मनाम् ॥२०७॥

तो कोई धनी और दरिद्र न रहेगा, यदि तृष्णा को अवसर दिया जाता है तो दूसरों की दासता ही करनी पड़ेगी ।

अपरञ्च—और भी—

यदिति-अन्वय—यत् यत् एव हि वाञ्छेत्, ततः वाञ्छा प्रवर्तते । यतः वाञ्छा निवर्तते, सः अर्थः अर्थतः एव प्राप्तः ।

शब्दार्थ—यत् यदेव हि वाञ्छेत्=मनुष्य धनादि की ज्यों - ज्यों जितनी इच्छा करता है, ततो वाञ्छा प्रवर्तते=त्यों त्यों उतनी ही उतनी तृष्णा बढ़ती जाती है । यतो वाञ्छा निवर्तते=जहाँ या जिस वस्तु से इच्छा निवृत्त हो जाती है, सः अर्थः अर्थतः एव प्राप्तः । उसे ही वस्तुतः प्राप्त धन समझना चाहिए ।

अनुवाद—मनुष्य धनादि की जितनी इच्छा करता जाता है, तृष्णा उतनी ही बढ़ती जाती है, जिस पदार्थ से इच्छा निवृत्त हो जाये, उसी को वस्तुतः प्राप्त धन समझना चाहिए ।

अर्थात् जिसकी प्राप्ति पर और अधिक तृष्णा न बढ़े, अर्थात् इच्छा शान्त हो जाये, उसी को वस्तुतः अर्थ समझना चाहिए, अर्थ को अर्थ नहीं, क्योंकि इससे तो तृष्णा या इच्छा शान्त नहीं होती है, अतः सन्तोष ही वस्तुतः धन है ।

किमिति—और अधिक क्या, मुझ पर कृपा कर, आप यहाँ मेरे ही साथ समय व्यतीत करें ।

आमरणान्ताः इति-अन्वय—महात्मनाम् प्रणयाः आमरणान्ताः (तेषाम्) कोपास्तु क्षणभङ्गुरः, परित्यागाः च निःसङ्गा (भवन्ति) ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इति श्रुत्वा लघुपतनको ब्रूते—धन्योऽसि मन्थर ! सर्वथा श्लाध्यगुणोऽसि ।

यतः—

सन्त एव सतां नित्य मापदुद्धरणक्षमाः ।
गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरन्धराः ॥२०८॥

गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः ।
अलिरेति वनात् कमलं नहि भेकस्त्वेकवासोऽपि ॥२०९॥

शब्दार्थ—प्रणयाः=प्रेम, आमरणान्ताः=मरण पर्यन्त, क्षणभङ्गुणः =थोड़ी देर तक रहने वाले, परित्यागः=दान, निःसङ्गः=स्वार्थ से रहित ।

अनुवाद—क्योंकि महात्मा पुरुषों का प्रेम मरणपर्यन्त रहता है, किन्तु उनका क्रोध क्षण मात्र में ही नष्ट हो जाता है, उनका दान स्वार्थ रहित होता हैं ।

इतीति—यह सुन कर लधुपतनक कहता है, मित्र मन्थर, तुम धन्य हो, सब प्रकार से प्रशंनीय गुणशाली हो ।

यतः—क्योंकि—

सन्त इति अन्वय— सन्तः एव सताम् आपदुद्धरणक्षमाः । पङ्कमग्नानाम् गजानाम् गजा एव धुरन्धराः (भवन्ति) ।

शब्दार्थ—आपदुद्धरणक्षमाः=आपत्तियों को दूर करने में समर्थ होते हैं । पङ्कमग्नानाम्=कीचड़ में फँसे हुये, धुरन्धराः=उद्धरण के कार्य भार को धारण करने में समर्थ ।

अनुवाद—सज्जन ही सज्जनों की आपत्तियों को दूर करने में समर्थ होते हैं, कीचड़ में फँसे हुए गजों का उद्धार करने में गज ही समर्थ होते हैं ।

गुणिनीति—गुणिनि (एव) गुणज्ञः रमते, अगुणशीलस्य गुणिनि परितोषः न (भवति) अलिः वनात् कमलम् एति (किन्तु एकवासः अपि भेकः न (एति) ।

शब्दार्थ—गुणनि=गुणवान् के संसर्ग में, रमते=आनन्दित होता है, अगुणशीलस्य=निगुणी को, न परितोपः=सन्तोष नहीं होता । अलिः=

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां,
स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः ।
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा,
नाशाभिभङ्गाद् विमुखाः प्रयान्ति ॥२१०॥

तदेवं ते स्वेच्छाहारविहारं कुर्वाणाः सन्तुष्टाः सुखं निवसन्ति ।

अथ कदाचिच्चित्राङ्गनामा मृगः केनापि त्रासित स्तत्रागत्य मिलितः । ततः पश्चादायान्तं मृगमवलोक्य भयं सञ्चिन्त्य मन्थरो

भ्रमर, भेकः=मेंढक, एकवासः अपि=एक मात्र उसके पास रहकर भी ।

अनुवाद—गुणज्ञ पुरुष गुणवान् के संग आनन्द प्राप्त करता है, किन्तु निगुणी पुरुष को गुणवान् पर सन्तोष नहीं होता, जैसे—भ्रमर तो वन से भी (चल कर) कमल पर आ जाता है किन्तु मेंढक उसी सरोवर में कमल के साथ रहता हुआ भी उसके पास नहीं जाता, क्योंकि वह कमल के गुणों को नहीं जानता है ।

श्लाघ्य इति अन्वय—भुवि यस्य (पार्श्वात्) अर्थिनः वा शरणागता वा आशाभिभङ्गात् विमुखाः न प्रयान्ति, सः एकः मानवानाम् श्लाघ्यः, सः उत्तमः सत्पुरुषः सः धन्यः (अस्ति) ।

शब्दार्थ—अर्थिनः=याचक, आशाभिभङ्गात्=आशा के टूट जाने से, श्लाघ्यः=प्रशंसनीय ।

अनुवाद—पृथिवी मण्डल पर, जिस (धनी) के पास से याचक अथवा शरणागत जन आशा के भंग हो जाने से विमुख (निराश) होकर नहीं लौट जाते हैं, मानवों के बीच वही एक मनुष्य, प्रशंसनीय है, वही एक उत्तम सत्पुरुष है और वही एक धन्य है ।

तदिति-शब्दार्थ—स्वेच्छाहारविहारं कुर्वाणाः=अपनी इच्छानुसार आहार विहार करते हुये ।

अनुवाद—तब इस प्रकार वे अपनी इच्छानुकूल आहार विहार करते हुये सन्तुष्ट होकर सुख पूर्वक रहने लगे ।

अथेति-शब्दार्थ—त्रासितः=भयभीत किया गया । विवरम्=बिल, उड्डीय=उड़ कर, निरूप्य=देखकर, भयहेतुः न कः अपि आयाति इति

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

जलं प्रविष्टः, मूषकश्च विवरं गतः काकोऽप्युड्डीय वृक्ष मारुढः। ततो लघुपतनकेन सुदूरं निरुप्य भयहेतु र्न कोऽप्यायाती-त्यालोचितम्। पश्चात्तद्वचनादागत्य पुनः सर्वे मिलित्वा तत्रं वो-पविष्टाः। मन्थरेणोक्तम्—भद्र ! मृग ! स्वागतं ते स्वेच्छयोदकाद्याहारोऽनुभूययाम्। अत्रावस्थानेन वन मिदं सनाथी-क्रियताम्।

चित्राङ्गो ब्रूते—लुब्धकत्रासितोऽहं भवतां शरणमागतो भवद्भिः सह सख्य मिच्छामि। भवन्त श्च मामनुकम्पयन्तु मैत्रेण।

हिरण्यकोऽवदत्—मित्रत्वं तावदस्माभिः सह भवतोऽयत्नेन निष्पन्नम्।

आलोचितम्=भय का कारण कुछ भी नहीं आ रहा है, यह निश्चय किया। स्वेच्छया उदकादि आहारः अनुभूयताम्=अपनी इच्छानुसार जलपान भोजन आदि कीजिये। अत्रावस्थानेन=और यहाँ रह करके।

अनुवाद—इसके बाद किसी समय चित्राङ्ग नाम का मृग किसी के द्वारा त्रस्त होकर वहाँ आकर (उनसे) मिला। इसके बाद मृग को आता हुआ देख करके, भय की आशंका करके, मन्थर जल में घुस गया, मूषक विल में चला गया और कौवा उड़कर वृक्ष पर चढ़ गया। तव लघुपतनक ने दूर तक देखकर भय का कारण कोई भी नहीं आ रहा है, ऐसा निश्चय किया इसके वाद उसके कहने से आकर फिर सभी मिल कर वहीं पर बैठ गये। मन्थर ने कहा, भद्र मृग ! तुम्हारा स्वागत है, इच्छा पूर्वक जल पान आहार आदि कीजिये और यहाँ रहकर इस वन को सनाथ कीजिए।

चित्रेति शब्दार्थ—लुब्धकत्रासितः=बहेलियों से भयभीत किया गया, सख्यम्=मित्रता, माम् अनुकम्पयन्तु मैत्रेण=मित्रता के द्वारा आप लोग मुझ पर कृपा करें।

अनुवाद—चित्राङ्ग ने कहा—बहेलियों से भयभीत किया गया मैं आंप लोगों की शरण में आया हूँ और आप लोगों के साथ मित्रता चाहता हूँ। और आप लोग मित्रता के द्वारा मुझ पर कृपा करें।

हिरण्यक ने कहा—हम लोगों के साथ मित्रता तो आपकी, विना प्रयत्न के ही सिद्ध हो गई।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यत :—

लोभाद् वाऽथ भयाद् वापि यस्त्यजेच्छरणागतम् ।
ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहु र्मनीषिणः ॥२११॥
औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशक्रमागतम् ।
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम् ॥२१२॥

तदत्र भवता स्वगृहनिर्विशेषं स्थोयताम् । तच्छ्रुत्वा मृगः सानन्दो भूत्वा, स्वेच्छाहारं कृत्वा, पानीयं पीत्वा जलासन्नवटतरुच्छाया याम् पविष्टः ।

यतः— क्योंकि—

लोभादिति-अन्वय—लोभात् वा अथ भयाद् वा अपि यः शरणागतम् त्यजेत्, मनीषिणः तस्य ब्रह्महत्यासमम् पापम् आहुः ।

शब्दार्थ—मनीषिणः=विद्वज्जन, ।

अनुवाद—लोभ से अथवा भय से भी जो मनुष्य शरणागत का त्याग करता है, विद्वज्जनों ने उसके लिए ब्रह्म हत्या के समान पाप कहा है ।

औरसमिति-अन्वय—औरसम् कृतसम्बन्धम् तथा वंशक्रमागतम्, व्यसनेभ्यः च रक्षितम् (इति) चतुर्विधं मित्रम् ज्ञेयम् ।

शब्दार्थ—औरसम्=शरीर सम्बन्ध से उत्पन्न-पुत्र पौत्रादि, कृतसम्बन्धम् =जिससे विवाहादि द्वारा सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया है, वंशक्रमागतम् =वंश परम्परा से प्राप्त, व्यसनेभ्यश्च रक्षितम्=विपत्तियों से रक्षित किया गया है । चतुर्विधम्=चार प्रकार के, ज्ञेयम्=जानना चाहिए ।

अनुवाद—मित्र चार प्रकार के जानने चाहिए—जो शरीर सम्बन्ध से अपने मित्र बने हों, तथा जिनके साथ विवाह आदि के द्वारा सम्बन्ध हो हो गया हो, जो कुलपरम्परागत हों तथा जो आपत्तियों से रक्षित किये गये हों ।

तदिति-शब्दार्थ—स्वगृहनिर्विशेषम्=अपने घर के ही समान, स्थीयताम् =रहिये । जलासन्नवटतरुच्छायायाम्=जल के समीप वट वृक्ष की छाया में ।

अनुवाद—तो यहाँ इस वन में आप अपने घर के समान ही रहिए ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यतः—

कूपोदकं वटच्छाया श्यामा स्त्री चेष्टकागृहम् ।
शीतकाले भवे दुष्ण मुष्णकाले च शीतलम् ॥२१३॥

अथ मन्थरेणोक्तम्—सखे मृग ! एतस्मिन् निर्जने वने केन त्रासितोऽसि । कदाचित् किं व्याधाः सञ्चरन्ति ।

यह सुन कर मृग आनन्दित होकर इच्छा पूर्वक आहार करके, जल पीकर, जल के समीप वट वृक्ष की छाया में बैठ गया है ।

यतः—क्योंकि—

कूपोदकमिति-अन्वय—कूपोदकम्, वटच्छाया, श्यामा स्त्री, इष्टकागृहम् च शीतकाले उष्णम् भवेत्, उष्णकाले च शीतलम् भवेत् !

शब्दार्थ—कूपोदकम्=कुये का जल, वटच्छाया=वट वृक्ष की छाया, श्यामा स्त्री=षोडशवर्षीया सुन्दरी युवती, इष्टकागृहम्=ईंटों का बना घर ।

अनुवाद—कुये का जल, वट वृक्ष की छाया, शलामा स्त्री, और इष्टकागृह, ये चारों शीतकाल में गर्म और ग्रीष्मकाल में शीतल रहते हैं ।

अथेति शब्दार्थ—दिग्विजयव्यापारक्रमेण=दिग्विजय की यात्रा के अनुसार अर्थात् दिग्विजय करता हुआ, समावासितकटकः=सेना का पड़ाव डाल कर, प्रातः…… भवितव्यम्=प्रातः काल वह यहाँ आकर कर्पूर सरोवर के समीप होगा । इति व्याधानाम् …… श्रुयते । ऐसी वात वहेलियों के मुख से सुनी जाती है। अवस्थानम् भयहेतुकम्=रहना भय का कारण। इत्यालोच्य=ऐसा समझ कर, यथावसरं कार्यम् आरभ्यताम्=जैसा अवसरानुकूल वैसा करना चाहिए ।

सभयम्=भयपूर्वक, आह=कहा, जलाशयान्तरं=अन्य जलाशय में, उक्तवन्तौ=कहा, एवमस्तु=ऐसा ही हो, विहस्य=हँसकर, जलाशयान्तरं प्राप्ते=अन्य जलाशय में पहुँचकर, स्थले गच्छतः अस्य कः प्रतीकारः=इसके स्थल भूमि पर चलते समय (इसकी रक्षा का क्या उपाय होगा) ।

अनुवाद—इसके वाद मन्थर ने कहा, मित्र मृग ! इस निर्जन वन में (तुम) किस से भयभीत हो, क्या इस वन में कहीं बहेलिये घूमते हैं ?

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

मृगेणोक्तम्—अस्ति कलिङ्गविषये रुक्माङ्गदो नाम नरपतिः। स च दिग्विजयव्यापारक्रमेणागत्य चन्द्रभागानदीतीरे समावासितकटको वर्तते। प्रातश्च तेनात्रागत्य कर्पूरसरः समीपे भवितव्यमिति व्याधानां मुखात् किम्वदन्तीश्रूयते। तदत्राऽपि प्रातरवस्थानं भयहेतुकमित्यालोच्य यथावसरं कार्यमारभ्यताम्।

तच्छ्रुत्वा कूर्मः, सभयमाह—जलाशयान्तरं गच्छामि। काकमृगावप्युक्तवन्तौ—एवमस्तु। ततो हिरण्यको विहस्याह—जलाशयान्तरं प्राप्ते मन्थरस्य कुशलम्, स्थले गच्छतोऽस्य कः प्रतीकारः ? यतः—

अम्भांसि जलजन्तूनां दुर्गं दुर्गनिवासिनाम्।
स्वभूमिः श्वापदादीनां राज्ञां मन्त्री परं बलम् ॥२१४॥

मृग ने कहा—

कलिङ्गदेश में रुक्माङ्गद नाम का राजा है। और वह दिग्विजय यात्रा के क्रम से अर्थात् दिग्विजय करता हुआ, आकर, चन्द्र भागा नदी के किनारे अपनी सेना का पड़ाव डाले हुए है। और प्रातःकाल वह यहाँ आकर कर्पूर सरोवर के समीप होगा। यह बात बहेलियों के मुख से सुनी जाती है, तो इसलिए यहाँ भी प्रातःकाल ठहरना भय का कारण है, यह समझकर अवसरानुकूल कार्य आरम्भ कीजिए।

यह सुन कर कच्छप ने भयपूर्वक कहा—मैं तो दूसरे जलाशय में जाता हूँ, कौवे और मृग ने भी कहा—ऐसा ही हो ! हिरण्यक ने हँस कर कहा—दूसरे जलाशय में पहुँच जाने पर तो मन्थर की कुशल है, किन्तु चलते समय स्थल (भूमि) पर इसकी रक्षा का क्या उपाय है।

यतः—क्योंकि—

अम्भांसीति-अन्वय—जलजन्तूनाम् अम्भांसि, दुर्गनिवासिनाम् दुर्गम्, श्वापदादीनाम् स्वभूमिः राज्ञाम् मन्त्री च परं बलम् (भवति)।

शब्दार्थ—जलजन्तूनाम्=जल में रहने वाले मछली मगर आदि, अम्भांसि=जल, दुर्गनिवासिनाम्=किले में रहने वालों का, श्वापदादीनाम्=जंगली जानवर सिंह व्याघ्रादि का।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

सखे ! लघुपतनक ! अनेनोपदेशेन तथा भवितव्यम् ।

स्वयं वीक्ष्य यथा वध्वाः पीडितं कुच कुड्मलम् ।
वणिक् पुत्रोऽभवद् दुःखी त्वं तथैव भविष्यसि ॥२१५॥

ते ऊचुः—कथमेतत्, हिरण्यकः कथयति ।

अस्ति कान्यकुब्जविषये वीरसेनो नाम राजा । तेन वीरपुर-नाम्नि नगरे तुङ्गबलो नाम राजपुत्रो भोगपतिः कृतः । स च महाधनस्तरुण एकदा स्वनगरे भ्राम्यन्नतिप्रौढ़यौवनां लावण्यवती नाम वणिक्पुत्रवधूमालोकयामास । ततः स्वहर्म्यं गत्वा स्मरा कुलमतिस्तस्याः कृते दूतीं प्रेषितवान् ।

अनुवाद—जल जीवों का सर्वोत्तम बल जल होता है । दुर्गनिवासियों का दुर्ग, सिंह व्याघ्रादि वन निवासी जीवों का वन तथा राजाओं का परम बल मन्त्री होता है ।

सखे !—अतः हे मित्र लघुपतनक ! इस उपदेश तो वैसा ही होगा, जैसे—

स्वयमिति-अन्वय—यथा वणिक् पुत्रः वध्याः कुचकुङ्मलम् स्वयं वीक्ष्य दुःखी अभवत्, तथैव त्वम् भविष्यसि ।

शब्दार्थ—वध्वाः=अपनी पत्नी के, कुचकुड्मलम्=स्तनों के अग्रभाग को, पीडितम्=दूसरे के द्वारा मर्दित हुए, स्वयं वीक्ष्य=अपने आप साक्षात् देखकर ।

अनुवाद—जैसे एक वणिकपुत्र अपनी पत्नी के स्तनों के अग्रभाग को स्वयं साक्षात् मर्दित किये जाते देख कर दुःखी हुआ था, वैसे ही तुम भी होंगे ।

त इति—उन्होंने कहा यह कैसे ? हिरण्यक कहता है—

राजपुत्रवणिग्वधूकथा

अस्तीति-शब्दार्थ—कान्यकुब्जविषये=कान्यकुब्ज प्रदेश में, भोगपतिः कृतः =नगर रक्षक, कर ग्रहण का अधिकारी कृतः=बनाया । महाधनः=बड़ा धनी, भ्राम्यन्=घमता हुआ, अतिप्रौढ़यौवनाम्=परिपूर्ण यौवनवती, स्वहर्म्यम

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यत:—

सन्मार्गे तावदास्ते, प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणाम्,
लज्जां तावद् विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
भ्रू चापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते,
यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिवाणाः पतन्ति ।।२१६।।

अपने निवास स्थान में, स्मराकुलमतिः=कामदेव से व्याकुलचित्त होकर, तस्याः कृते=उसके लिए, प्रेषितवान्=भेजी ।

अनुवाद—कान्यकुब्ज प्रदेश में वीरसेन नाम का राजा था। उसने वीरपुर नाम नगर में तुङ्गवल नाम के राज-पुत्र को नगर रक्षक बनाया। बड़े धनवान् और युवक राजपुत्र ने अपने नगर में घूमते हुए परिपूर्ण यौवनवती लावण्यवती नाम की एक वणिकपुत्र की वधू को देखा। और तब अपने घर में आकर कामदेव के कारण व्याकुलित चित्त होकर उसके लिए एक दूती को भेजा ।

यत:—क्योंकि=

सन्निति-अन्वय—पुरुषः तावत् एव सन्मार्गे आस्ते, तावत् एव इन्द्रियाणाम् प्रभवति, तावत् लज्जाम् विधत्ते, तावत् एव विनियम् अपि समालम्बते, यावत् लीलावतीनाम् भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः (अतएव) श्रवणपथगताः धृतिमुषः एते नीलपक्ष्माणः दृष्टिवाणाः (तस्य) हृदि न पतन्ति ।

शब्दार्थ—सन्मार्गे आस्ते=अच्छे मार्ग पर चलता है। इन्द्रियाणाम् प्रभवति=अपनी इन्द्रियों को वश में रख सकता है। लज्जां विधत्ते=लज्जा रख सकता है। विनयमपि समालम्बते=विनयशीलता भी धारण कर सकता है। यावत् लीलावतीनाम्=जब तक कि, सुन्दरी स्त्रियों के। भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः=भौंह रूपी धनुष् से खींचकर छोड़े गये। श्रवणपथगताः =(अतएव) कानों तक पहुँचे हुये। धृतिमुष =धैर्य को चुराने वाले अर्थात् अधीर बना देने वाले। एते नीलपक्ष्माणः=ये काले-काले पलकों वाले। दृष्टिवाणाः=नेत्ररूपी वाण अर्थात् कटाक्ष, (उसके) हृदि न पतन्ति=हृदय में नहीं चुभते ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

साऽपि लावण्यवतो तदवलोकनक्षणात् प्रभृति स्मरशरप्रहार जर्जरितहृदया तदेकचित्ता भवत् ।

तथा ह्युक्तम्—

असत्यं साहसं माया मात्सर्यं चातिलुब्धता ।
निर्गुणत्व मशौचत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥२१७॥

अनुवाद—मनुष्य तभी तक सन्मार्ग पर चलता रहता है, तभी तक इन्द्रियों को वश में रख सकता है, तभी तक लज्जा धारण करता है और तभी तक विनयशीलता रख सकता है, जब तक कि सुन्दरी स्त्रियों के, भौंह रूपी धनुष् से खींचकर छोड़े गये अतएव कानों तक पहुँचे हुये, धैर्य को चुराने वाले अर्थात् अधीर बना देने वाले ये काले-काले पलकों वाले नेत्र रूपी बाण अर्थात् कटाक्ष उसके हृदय में नहीं चुभते ।

अर्थात् सुन्दरी स्त्रियों के कटाक्ष बाणों से आहत हुआ मनुष्य अधीर हो उठता है, और फिर वह लज्जा, विनयशीलता, इन्द्रियवशवर्तिता, सदाचरण आदि सभी सद्गुणों को छोड़ देता है ।

साऽपीति—शब्दार्थ—तदवलोकनक्षणात् प्रभृति=उसके देखने के क्षण से लेकर । स्मरशरप्रहारजर्जरितहृदया=काम वाणों से व्याकुलितचित्त होकर तदेकचित्ता भवत्=उसी पर तन्मयचित्त हो गई ।

अनुवाद—वह लावण्यवती भी उसके देखने के क्षण से लेकर, काम वाणों से व्याकुलिसचित्त होकर, उसी पर तन्मय चित्तवाली हो गई ।

तथाह्युक्तम्=वैसा ही कहा भी गया है—

असत्यमिति-अन्वय—असत्यम्, साहसम्, माया, मात्सर्यम्, अतिलुब्धता निर्गुणत्वम् अशौचत्वम् च स्त्रीणाम् स्वभावजाः दोषा भवन्ति ।

शब्दार्थ—मात्सर्यम्=ईर्ष्या मक्कारी । अतिलुब्धता=अति लोभ । माया=कपट । अशौचत्वम्=अपवित्रता ।

अनुवाद—असत्य, साहस, कपट, ईर्ष्या, अतिलोभ, निर्गुणता और अपवित्रता, ये स्त्रियों के स्वभाविक दोष होते हैं । अर्थात् स्त्रियों में जन्म जात ये दुर्गुण पाये जाते हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथ दूतीवचनं श्रुत्वा लावण्यवत्युवाच—अहं पतिव्रता कथमेत-स्मिन्नधर्मे पतिलङ्घने प्रवर्ते । यतः—

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥२१८॥

कोकिलानां स्वरो रूपम्, नारी रूपं पतिव्रतम् ।
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम् ॥२१९॥

अथेति—शब्दार्थ—एतस्मिन् अधर्मे पतिलघने प्रवर्ते=इस अधर्म रुप पति के उल्लंघन कार्य में प्रवृत्त होऊँ ।

अनुवाद—इसके वाद दूती का वचन सुनकर लावण्यवती ने कहा कि पतिव्रता होकर मैं किस प्रकार इस अधर्म रूप पति के उल्लंघन कार्य में तत्पर होऊँ ।

यतः—क्योंकि—

यति-अन्वय—सा भार्या या गृहे दक्षा, सा भार्या या पतिव्रता, सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या या प्रजावती ।

शब्दार्थ—पतिप्राणा=पति ही जिसका जीवन है । दक्षा=कुशल । प्रजावती=सन्तान वाली ।

अनुवाद—वही पत्नी है जो गृह कार्य में कुशल हो वही पत्नी है जो पति जीवना हो और वही पत्नी है जो पतिव्रता हो और सन्तान वाली हो ।

कोकिला नाभिति-अन्वय—कोकिलानां रूपम् स्वरः, नारीरूपम् पतिव्रतम्, कुरूपाणाम् विद्यारूपम्, तपस्विनाम् रूपम् क्षमा (भवति) ।

शब्दार्थ—रूपम्=स्वरूप अर्थात् वास्तविक रूप ।

अनुवाद—कोकिलों का वास्तविक स्वरूप उनका स्वर ही होता है अर्थात् कोकिलों का स्वरमाधुर्य ही उनकी प्रतिष्ठा और आदर का कारण है, स्वरूपतः तो वे कौवे जैसे कृष्णवर्ण ही होते हैं । इसी प्रकार स्त्रियों का वास्तविक स्वरूप पतिव्रता होना है, कुरूप जनों का स्वरूप वस्तुतः विद्या ही है, कुरूप भी विद्वान् प्रतिष्ठा पाते हैं । तपस्वियों का वास्तविक स्वरूप उनका क्षमाशील होना है, यदि कोई तपस्वी क्रोधी है तो उसे सच्चा तपस्वी नहीं कहना चाहिए । इसी प्रकार स्त्री जाति की मर्यादा और प्रतिष्ठा उसका

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

न सा भार्येति वक्तव्या, यस्या भर्ता न तुष्यति।
तुष्टे भर्तरि नारीणां, सन्तुष्टाः सर्वदेवताः ॥२२०॥

ततो यद्यदादिशति मे प्राणेश्वरस्तदेवाह मविचारितं करोमि। दूत्योक्तम्—किं सत्यमेतत्।

लावण्यवत्युवाच—ध्रुवं सत्यमेतत्।

ततो दूतिकया गत्वा तत्तत्सर्वं तुङ्गबलस्याग्रे निवेदितम्। तच्छ्रुत्वा तुङ्गबलोऽब्रवीत्—विषमेषुणा व्रणितहृदयस्तां विना कथमहं जीविष्यामि।

पतिव्रता होना ही है।

नेति-अन्वय—सा 'भार्या' इति न वक्तव्या, यस्याः भर्ता न तुष्यति। भर्तरि तुष्टे सति नारीणाम् सर्वदेवताः सन्तुष्टाः भवन्ति।

शब्दार्थ—सा 'भार्या' इति न वक्तव्या=उसे वस्तुतः 'भार्या' न कहना चाहिए। यस्याः भर्ता न तुष्यति=जिससे उसका पति सन्तुष्ट नहीं होता। भर्तरि तुष्टे सति=पति के सन्तुष्ट होने पर।

अनुवाद—उसे 'भार्या' न कहना चाहिए जिससे उसका पति सन्तुष्ट न हो, पति के सन्तुष्ट होने पर स्त्रियों के सभी देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं।

वस्तुतः स्त्रियों का एक मात्र देवता उनका पति ही होता है, यदि उनका वह पति उनसे सन्तुष्ट होता है, तो मानो उनके सभी देवता उससे सन्तुष्ट रहते हैं।

तत इति शब्दार्थ—यत् यत् आदिशति=जो जो आज्ञा देता है। मे प्राणेश्वरः=मेरा पति, तत् तत् एव अहम् अविचारितम् करोमि=वही वहीं में सोचे विचारे विना करती हूँ।

अनुवाद—तब मेरा पति जो जो आज्ञा देता है वही वही मैं बिना सोचे विचारे करती हूँ, दूती ने कहा—क्या यह सत्य है।

लावण्यवती ने कहा—यह ध्रुव (अटल) सत्य है।

तत इति शब्दार्थ—तत्तत्सर्वम्=वह वह सब कुछ, विषमेषुणा=कामदेव द्वारा, व्रणित हृदयः=घायल हृदय वाला मैं।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

कुट्टन्याह—'स्वामिनाऽऽनीय समर्पयितव्येति। स आह—कथमेतच्छक्यम् ? कुट्टन्याह-उपायः क्रियताम्। तथा चोक्तम्।

उपायेन हि यच्छक्यं, न तच्छक्यं पराक्रमैः।
शृगालेन हतो, हस्ती, गच्छता पङ्कवर्त्मना ॥२२१॥

(८) हस्तिधूर्तशृगाल कथा—

अस्ति ब्रह्मारण्ये कर्पूरतिलको नाम हस्ती। तमवलोक्य सर्वे

अनुवाद—तब दूती ने जाकर वह सब कुछ तुङ्गवल के आगे वतलाया, यह सुन कर तुङ्वल ने कहा—कामदेव के द्वारा व्रणित हृदय मैं उनके बिना कैसे जीवित रहूँगा।

कुट्टनीति-अनुवाद—कुट्टनी ने कहा 'स्वामी के द्वारा ले आकर समर्पित करनी चाहिए, अर्थात् उसके पति को उसे स्वयं लाकर आपको समर्पित कर देनी चाहिए, उसने कहा—(कथम् एतत् शक्यम्) यह कैसे हो सकता है। कुट्टनी ने कहा—उपाय कीजिए, जैसा कि कहा गया है—

उपायेनेति-अन्वय—हि उपायेन यत् शक्यम् पराक्रमैः तत् न शक्यम् पङ्कवर्त्मना गच्छता शृगालेन हस्ती हतः।

शब्दार्थ—हि यतः=क्योंकि, उपायेन यत् शक्यम्=उपाय के द्वारा जो कार्य किया जा सकता है, पराक्रमैः न तत् शक्यम्=पराक्रमों द्वारा वह कार्य नहीं किया जा सकता है। पङ्कवर्त्मना=कीचड़ के मार्ग से।

अनुवाद—क्योंकि उपाय के द्वारा जो कार्य किया जा सकता है। वह पराक्रम के द्वारा नहीं किया जा सकता है। जैसे कि कीचड़ के मार्ग से जाते हुये गीदड़ के द्वारा हाथी मारा गया था।

राजपत्र पूँछता है: यह कैसे ? वह कहती है।

हाथी और चालक गीदड़ की कथा।

अस्तीति-शब्दार्थ—यद्ययम्=यदि यह, म्रियते=मर जाता है, एतद् देहेन=इसके शरीर से, मासचतुष्टस्य=चार महीने का, प्रतिज्ञातम्=प्रतिज्ञा की, बुद्धिप्रभावात्=अपनी बुद्धि के बल से, साधयितव्यम्=पूरा करूँगा। अनन्तरम्=इसके बाद, वंञ्चकः=धूर्त, साष्टाङ्गपातम् प्रणम्य

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

शृगालाश्चिन्तयन्तिस्म—यद्ययं केनाप्युपायेन म्रियते, तदास्माक मेतद्देहेन मासचतुष्टयस्य भोजन भविष्यति इति ।

तत्रैकेन वृद्ध शृगालेन प्रतिज्ञातम् । मया बुद्धिप्रभावादस्य मरणं साधयितव्यम् । अनन्तरं स वञ्चकः कर्पूरं तिलकसमीपं गत्वा, साष्टाङ्गपातं प्रणम्योवाच—देव ! दृष्टिप्रसादं कुरु ।

हस्ती ब्रूते—कस्त्वम् ? कुतः समायातः ? सोऽवदत्—जम्बुकोऽहम् । सर्वैर्वनवासिभिः पशुभि र्मिलित्वा भवत्सकाशं प्रस्थापितः । यत् विना राज्ञा वस्थातुं न युक्तम् । तदत्राटवीराज्येऽभिषेक्तुं भवान् सर्वस्वामिगुणोपेतो निरुपितः ।

भूमि पर दण्डवत् शरीर के अष्ट अंगों के साथ गिरकर प्रणाम करके, दृष्टिप्रसादं कुरु=कृपा दृष्टि कीजिए अर्थात् कृपा कर इस ओर देख कर मेरी बात सुनिए ।

कुतः समायातः—कहाँ से आये हो । प्रस्थापितः=भेजा गया हूँ । अवस्थातुं न युक्तम्=रहना उचित नहीं है । अटवीराज्ये अभिषेक्तुम्=वन के राज्य पर अभिषेक करने के लिए, सर्वस्वामिगुणोपेतः=राजा के सभी गुणों से युक्त, निरूपितः=वतलाये गये हो ।

अनुवाद—ब्रह्मारण्य में कर्पूरतिलक नाम का हाथी था । उसे देखकर सभी गीदड़ों ने सोचा कि अगर किसी भी उपाय से यह मर जाये तो इसके शरीर से हम लोगों का चार महीने तक का भोजन होगा ।

वहाँ एक बूढ़े गीदड़ ने प्रतिज्ञा की, कि मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से इसका मरण पूरा करूँगा । इसके वाद वह धूर्त गीदड़ कर्पूर तिलक के पास जाकर, साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करके वोला—महाराज कृपा दृष्टि करो, अर्थात् कृपा पूर्वक इस ओर देखकर मेरी बात सुनिये ।

हाथी ने कहा-तुम कौन हो, कहाँ से आये हो ?

उसने कहा मैं गीदड़ हूँ । सभी वन के रहने वाले जानवरों ने मिलकर मुझे आपके पास भेजा है, कि, राजा के बिना रहना उचित नहीं है, तो इस जंगल के राज्य पर अभिषेक करने के लिए आप ही राजा के सभी गुणों से युक्त वतलाये गये हैं ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यत:—

य: कुलाभिजनाचारै रतिशुद्धः प्रतापवान् ।
धार्मिको नीतिकुशल: स स्वामी युज्यते भुवि ॥२२२॥

अपरञ्च पश्य—

राजानं प्रथमं विन्दे त्ततो भार्यां ततो धनम् ।
राजन्यसति लोकेऽस्मिन् कुतो भार्या कुतो धनम् ॥२२३॥

अपरञ्च—

पर्यन्य इव भूताना माधार: पृथिवीपति: ।
विकलेऽपि हि पर्जन्ये, ज़ीव्येत्, न तु भूपतौ ॥२२४॥

यत:—क्योंकि—

य इति-अन्वय—य: कुलाभिजनाचारै: अतिशुद्धः प्रतापवान् धार्मिक: नीतिकुशल: (अस्ति) स भुवि स्वामी युज्यते ।

शब्दार्थ—य: कुलाभिजनाचारै: अतिशुद्धः=जो वंश, कुल परम्परागत आचरण से एवं आचार विचारों से पूर्णत: शुद्ध हो, स भुवि स्वामी युज्यते = वह पृथ्वी पर राजा होने योग्य होता है ।

अनुवाद—जो वंश कुलागत परम्परा एवं आचार विचारों से पूर्णत: शुद्ध, पराक्रमी धर्मात्मा एव नीति में कुशल हो, वही पृथिवी पर राजा होने योग्य होता है ।

अपरञ्च पश्य—और भी देखिए—

राजानमिति-अन्वय—प्रथमम् राजानम् विन्देत्, तत: भार्याम्, तत: धनम् (विन्देत्) अस्मिन् लोके राजनि असति, कृत: भार्या कृत: धनम् ।

शब्दार्थ—विन्देत्=प्रांप्त करे, तत:=तव, राजनि असति=राजा न होने पर ।

अनुवाद—सर्वप्रथम राजा को प्राप्त करना चाहिए, इसके बाद पत्नी को और तव धन को, राजा के न होने पर, कहाँ से तो पत्नी और कहाँ से धन प्राप्त किया जा सकता है ? अर्थात् कहीं से भी नहीं ।

अपरञ्च—और भी—

पर्जन्य इति-अन्वय—भूतानाम् आधार: पर्जन्य: इव पृथिवीपति: (भवति)

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यतः

नियत विषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगा—
ज्जगति परवशेऽस्मिन् दुर्लभः साधुवृत्तः।
कृशमपि विकलं वा व्याधितं वाऽधनं वा,
पतिमपि कुलनारी दण्डभीत्याऽभ्युपैति ॥२२५॥

हि पर्जन्ये विफले अपि (जनः) जीव्येत्, परम् भूपतौ (विकले सति) न तु जीव्येत्।

शब्दार्थ—पर्जन्यः इव=मेघ के समान, भूतानाम् आधारः=प्राणियों का आधार अर्थात् जीवन का आश्रय, पृथिवीपतिः राजा। पर्जन्ये विकले अपि मेघ के विकल अर्थात् अभाव में भी अर्थात् वर्षा न होने पर भी, जीव्येत्= जीवित रह सकता है।

अनुवाद—मेघ के समान ही राजा प्राणियों का आधार अर्थात् जीवन का आलम्बन होता है, अर्थात् वर्षा पर ही सब जीवों का जीवित रहना सम्भव होता है, किन्तु वर्षा के अभाव में भी प्राणी कथमपि जीवित रह सकता है, पर राजा के अभाव में तो वह कभी भी जीवित नहीं रह सकता।

अर्थात् राजा प्राणियों के लिये, मेघों की अपेक्षा, अधिक आवश्यक है।

यतः—क्योंकि—

नियतेति-अन्वय—अस्मिन् परवशे जगति प्रायशः साधुवृत्तः तु दुर्लभः एव (भवति)। कुलनारी दण्डभीत्या कृशम् अपि विकलम् वा व्याधितम् वा अधनम् वा पतिम् अभ्युपैति।

शब्दार्थ—परवशे जगति=राग द्वेष काम लोभ मोह आदि के अधीन संसार में, प्रायशः=अधिकतर, दण्डयोगात्=शासन के दण्ड के भय के कारण, नियतविषयवर्ती=अपने नैतिक व्यवहार के अनुसार काम करने वाला। साधुवृत्तः=स्वभावतः सन्मार्ग पर चलने वाला। कुलनारी= कुलीन भी स्त्री, दण्डभीत्या=राजदण्ड के भय से ही, कृशम्=दुर्बल, विकलम्=अंगहीन, व्याधितम्, व्याधिग्रस्त, अधनम्=निर्धन, अभ्युपैति= सेवा करती है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तद् यथा लग्नवेला न विचलति तथा कृत्वा सत्वरमागम्यताम्, देवेन, इत्युक्त्वोत्थाय चलितः।

ततोऽसौ राज्यलोभाकृष्टः कर्पूरतिलकः शृगालवर्त्मना धावन् महापङ्के निमग्नः। ततस्तेन हस्तिनोक्तम्—सखे शृगाल किमधुना विधेयम्! पङ्के निपतितोऽहं म्रिये परावृत्य पश्य।

शृगालेन विहस्योक्तम्, देव! मम पुच्छकावलम्वनं कृत्वोत्तिष्ठ।

अनुवाद—राग द्वेष काम मोह आदि के अधीन इस संसार में राजदण्ड के भय के कारण ही प्रायः (मनुष्य) अपने नैतिक मार्ग पर चलने वाला होता है। स्वभावतः सन्मार्ग पर चलने वाला तो दुर्लभ ही होता है, कुल वधू भी राजदण्ड के ही भय से ही अपने दुर्बले, अंग विकल, धनहीन अथवा निर्धन पति की सेवा करती है।

अर्थात् यदि कुल वधू को राजा या समाज के दण्ड का भय न हो तो वह भी अपने विकलाङ्ग रोगी, निर्धन अथवा कृश पति की भी सेवा न करे, क्योंकि इस संसार में स्वभावतः सदाचारी व्यक्ति का मिलना तो कठिन ही है। सभी लोग दण्ड भय से ही यथा कथञ्चित् सदाचरण करते हैं।

तदिति-शब्दार्थ—लग्नवेला=राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त, न विचलति =निकल न जाय।

अनुवाद—तो जिससे कि अभिषेक का शुभ समय निकल न जाय वैसा करके आप शीघ्र ही आइये। ऐसा कह कर शीघ्र उठ कर चल दिया।

तत इति शब्दार्थ—राज्य लोभा कृष्टः=राज्य के लोभ से आकृष्ट होकर, शृगालवर्त्मना=गीदड़ के मार्ग से अर्थात् उसके ही पदचिह्नों पर, महा-पङ्के=बड़ी कीचड़ में, म्रिये=मर रहा हुँ, परावृत्य=लौटकर।

अनुवाद—तब यह कर्पूरतिलक नामक हाथी राज्य के लोभ से आकृष्ट होकर गीदड़ के पद मार्ग पर दौड़ता हुआ बहुत बड़े कीचड़ मे फँसे गया। तब उस हाथी ने कहा, मित्र गीदड़! अब क्या करना चाहिए। कीचड़ में गिरा हुआ मैं मर रहा हूँ, घूम कर देखो।

शृगालनेति-शब्दार्थ—विहस्य=हँस कर, मम पुच्छकावलम्वनं कृत्वा= मेरी पूँछ का सहारा लेकर, मद्विधस्य=मेरे जैसे का, प्रत्ययः=विश्वास,

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यन्मद्विधस्य त्वया प्रत्ययः कृतः। तदनुभूयतामशरणं दुःखम्।

तथा चोक्तम्—

यदाऽसत्सङ्गरहितो भविष्यसि, भविष्यसि।

यदाऽसज्जनगोष्ठीसु पतिष्यसि पतिष्यसि ॥२२६॥

ततो महापङ्के निमग्नो हस्ती शृगालै भँक्षितः। अतोऽहं ब्रवीमि उपायेन हि यच्छक्यम्—इत्यादि—

अशरणं दुःखम् अनुभूयताम्=तो ऐसे दुःख का अनुभव करो जिसमें की कोई शरण देने वाला या रक्षक न हो।

अनुवाद—गीदड़ ने हँस कर कहा—महाराज! मेरी पूँछ का सहारा लेकर उठो, जो कि तुमने मुझ जैसे व्यक्ति का विश्वास किया है तो अब अशरण दुःख का अनुभव करो।

जैसा कि कहा गया है—

यदेति—अन्वय—यदा असत् संगरहितः भविष्यसि (तदा) भविष्यसि। यदा (च) असज्जन गोष्ठीषु पतिष्यसि तदा पतिष्यसि।

शब्दार्थ—असत् सङ्गरहितः=दुर्जनों के संग अर्थात् कुसंगति से रहित होंगे, तदा=तभी, भविष्यसि=जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करोगे, असज्जन-गोष्ठीषु=दुर्जनों की बातों में पड़ोगे, (तदा) पतिष्यसि=बड़े दुःख में गिरोगे।

अनुवाद—जब कुसग से रहित होगे तभी जीवन धारण करोगे अर्थात् सुखपूर्वक जीवित रहोगे और जब तक दुष्टों की गोष्ठी में नहीं पड़ोगे तब तक दुःख में नहीं पड़ोगे।

अर्थात् कुसंगति मृत्यु का द्वार है और दुर्जन गोष्ठी विपत्तियों का गर्त है।

तत इति—अनुवाद—तब बहुत बड़े कीचड़ में गिरा हुआ हाथी गीदड़ों द्वारा खा लिया गया।

इसलिए मैं कहता हूँ—उपाय से जो कार्य सिद्ध हो सकता है—इत्यादि।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ततः कुट्टिन्युपदेशेन तं चारुदत्तनामानं वणिक् पुत्रं स राजपुत्रः सेवकं चकार। ततोऽसौ तेन सर्वविश्वासकार्येषु नियोजितः।

एकदा कुट्टिन्युपदेशेन तेन राजपुत्रेण स्नातानुलिप्तेन कनकरत्नालंकारधारिणा प्रोक्तम्—चारुदत्त ! अद्यारभ्य मया मासमेकं यावद् गौरीव्रतं कर्तव्यम्, तदद्यारभ्य प्रतिरात्रमेकां कुलीनां युवती मानीय समर्पय, सा मया यथोचितेन विधिना पूजयितव्या।

ततः स चारुदत्तस्तथविधां नवयुवती मानीय समर्पयति। पश्चात् प्रच्छन्नः सन् 'किमयं करोतीति निरुपयति। स च तुङ्गवलस्तां युवती मस्पृशन्नेव दूराद् वस्त्रालंकारगन्धचन्दनैः सम्पूज्य रक्षकं दत्वा प्रस्थापयति।

तत इति—शब्दार्थ—सेवकम् चकार=अपना सेवक बना लिया। सर्व विश्वासकार्येषु नियोजितः=सभी प्रकार के अपने विश्वसनीय कार्यो में नियुक्त किया।

अनुवाद—तब कुट्टिनी के उपदेश से उस चारुदत्त नामक वणिक् पुत्र को उस राजपुत्र ने अपना सेवक बना लिया और तब उसने उसे अपने सर्भ विश्वसनीय कार्यों में नियुक्त किया।

एकदेति-शब्दार्थ—एकदा=एक समय, स्नातानुलिप्तेन=स्नान करके चन्द्रनादिसुगन्धित पदार्थं लगाकर, कनकरत्नालंकारधारिणा=सुवर्ण के रत्न जटित आभूषण पहिनकर, प्रोक्तम्=कहा, आद्यारभ्य=आज से लेकर, मासमेकं यावत्=एक महीने तक, प्रतिरात्रम्=प्रत्येक रात्रि का।

अनुवाद—एक समय, कुट्टिनी के उपदेश से उस राजपुत्र ने स्नान करके सुगन्धित चन्दनादि लगाकर सुवर्ण के रत्न जटित आभूषण पहिनकर, उस चारुदत्त से कहा—आज से लेकर तक माह तक मुझे गौरीव्रत करना है, तो आज से लेकर प्रति रात्रि एक कुलीन युवती को लाकर मुझे समर्पित करो। वह मेरे द्वारा यथोचित विधि से पूजित होगी।

तत इति—शब्दार्थ—तथा विधाम्=उस प्रकार की, प्रच्छन्नः=छिपकर, निरुपयति=देखता है। अस्पृन्नेव=न छूते हुये ही, वस्त्रालंकारगन्ध चन्दनैः=आभूषण सुगन्धित पदार्थ चन्दन आदि से, रक्षकम् दत्त्वा=अंग रक्षक देकर।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

अथ वणिक् पुत्रेण तद् दृष्ट्वोपजातविश्वासेन लोभाकृष्ट-मानसा स्ववधू र्लावण्यवती समानोय समर्पिता । स च तुङ्गवलस्तां हृदयप्रियां लावण्यवतीं विज्ञाय ससंभ्रम मुत्थाय निर्भरमालिङ्ग्य निभीलिताक्षः पर्यङ्के तया सह विललास ।

तदालोक्य वणिक्पुत्रश्चित्रलिखित इव किंकर्तव्यताविमूढः परं बिषादमुपगतः ।

अतोऽहं ब्रवीमि—स्वयं वीक्ष्य—इत्यादि ।

तथा त्वयापि भवितव्यम्' इति ।

अनुवाद—तव वह चारुदत्त उस प्रकार की नवयुवती को लाकर समर्पित करता था । उसके वाद चारुदत्त छिपकर यह देखता था कि वह क्या करता है । किन्तु वह तुङ्गवल उस युवती को न छूते हुए ही दूर से ही वस्त्र आभूषग सुगन्धित पदार्थ और चन्दन आदि से पूजकर रक्षक के साथ (वापस उसके घर) भेज देता था ।

अर्थात—शब्दार्थ—उपजातविश्वासेन=विश्वस्त होकर, समानीय समर्पिता=लाकर समर्पित कर दी । ससंभ्रमम्=शीघ्रता से, निर्भरम=पूर्णरूप से, निमीलिताक्षः=आँखें बन्द करके, पर्यङ्के=पलंग पर, विललास= विलास क्रीडा की ।

अनुवाद—इसके बाद यह देखकर विश्वस्त हुये और लोभ से आकृष्ट मन वाले उस वणिक् पुत्र ने अपनी वधू लावण्यवती को लाकर समर्पित कर दिया । और उस तुङ्गवल ने उस हृदय प्रिया लावण्यवती को पहचान कर शीघ्रता से उठकर पूर्णतया आलिङ्गन कर (आनन्द से) नेत्र बन्द किये हुये, उसके साथ पर्यङ्क पर विलास क्रीडा की ।

यह देखकर वणिक् पुत्र चित्र लिखित सा होकर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बड़े दुःख को प्राप्त हुआ ।

इसलिये मैं कहता हूँ—अपने आप स्वयं देखकर—इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक के अनुसार—

तुम्हें भी वैसा ही होना पड़ेगा—

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

तद्धितवचनमवधीर्य महता भयेन विमुग्धः इव तं जलाशय मुत्सृज्य मन्थरश्चलितः। तेऽपि हिरण्यकादयः स्नेहादनिष्टं शङ्-कमाना मन्थरमनुगच्छन्ति। ततः स्थले गच्छन् केनापि व्याधेन काननं पर्यटता मन्थरः प्राप्तः। प्राप्य तं गृहीत्वोत्थाप्य धनुषि बद्ध्वा, भ्रमन क्लेशात् क्षुत्पिपासाकुलः स्वगृहाभिमुखं चलितः।

अथ मृगवायस मूषकाः परं विषादं गच्छन्तः तमनुजग्मुः। ततो हिरण्यको विलपति।

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥२२७॥

तद्धितेति—शब्दार्थ—तद्धितवचनम् अवधार्य=उसके हितकारी वचन को न मानकर, महता भयेन विमुग्धः इव=बड़े भय से विमूढ़ सा होकर।

अनुवाद—उसके हितकारी वचन का भी तिरस्कार करके, बड़े भय से विमूढ सा होकर मन्थर उस जलाशय को छोड़कर चल दिया। वे हिरण्यक आदि भी उसके स्नेह से अनिष्ट की आशंका करते हुए, मन्थर के पीछे चल दिये। तब स्थल पर जाता हुआ वह मन्थर जंगल में घूमते हुए किस बहेलिये के द्वारा प्राप्त किया गया। पाकर उसको पकड़कर, उठाकर, धनुष में बाँधकर घूमता हुआ, भूख प्यास से व्याकल होकर वह बहेलिया अपने घर को चल दिया।

इसके बाद मृग कौवा और चूहा बड़े दुःख को प्राप्त होते हुए उसके पीछे चले गये। तब हिरण्यक इस प्रकार विलाप करने लगा—

एकस्येति-अन्वय—अहम् अर्णवस्य पारम् इव यावत् एकस्य दुःखस्य अन्तम् न गच्छामि तावत् में द्वितीयम् समुपस्थितम्। छिद्रेषु अनर्थाः बहुलीभवन्ति।

शब्दार्थ—यावत्=जब तक कि, अर्णवस्य पारम्=समुद्र के पार करने के समान, छिद्रेषु अनर्थाः बहुली भवन्ति=विपत्तियों में अन्य भी बहुत से अनर्थ आ जाते हैं।

अनुवाद—जब तक कि मैं अभी, समुद्र पार करने के समान, एक ही दुःख के अन्त तक नहीं पहुँच पाया था अर्थात् जब तक कि मेरे एक बड़े दुःख

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

स्वाभाविकं तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते ।
तदकृत्रिमसौहार्द मापत्स्वपि न मुञ्चति ।।२२८।।
न मातरि न दारेषु न च सोदर्ये न चात्मजे ।
विश्वास स्तादृशः पुंसां यादृङ् मित्रे स्वभावजे ।।२२९।।

का अभी अन्त नहीं हो पाया था तब तक एक दूसरा भी महान् दुःख उपस्थित हो गया। सच है कि विपत्तियों में अन्य भी अनर्थ बढ़ जाते हैं।

तात्पर्य यह कि एक विपत्ति आने पर जब तक मनुष्य उससे छूटने का प्रयास करे, दुर्भाग्यतः तब तक अन्य विपत्तियाँ आ जाती हैं, विपत्तियों की ऐसी ही परम्परा चलती रहती है, कभी एक दुःख अकेला नहीं आता। एक कमजोरी में अनेक कमजोरियाँ आ घेरती हैं।

स्वाभाविक मिति-अन्वय—यत् स्वाभाविकम् मित्रम् तत् भाग्येन एव अभिजायते। तत् तु अकृत्रिमसौहर्दम् आपत्सु अपि न मुञ्चति।

शब्दार्थ—अभिजायते=होता है। अकृत्रिमसौहार्दम्=स्वाभाविक मित्रता को।

अनुवाद—जो स्वाभाविक मित्र होता है वह तो वड़े भाग्य से ही मिलता है और ऐसा मित्र विपत्तियों के समय भी अपने स्वाभाविक मैत्रीभाव को नहीं छोड़ता है।

सहज मित्र ही आपत्तियों में भी अपने सहज स्नेह को नहीं छोड़ता है, बनावटी मित्र काम निकल जाने पर साथ छोड़ देते हैं।

नेति-अन्वय—पुंषाम् स्वभावजे मित्रे यादृक् विश्वासः (भवति) तादृशः न मातरि न दारेषु, न सोदर्ये न च आत्मजे (भवति)।

शब्दार्थ—स्वभावजे=स्वाभाविक, यादृक्=जैसा, सोदर्ये=सहोदर भाई पर, आत्मजे=पुत्र पर।

अनुवाद—मनुष्यों का स्वाभाविक मित्र पर जैसा विश्वास होता है, वैसा विश्वास न तो माता पर, न पत्नी, न सहोदर भाई और न पुत्र पर ही होता है।

मनुष्य का सबसे बड़ा विश्वास पात्र उसका मित्र ही होता है।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

इति मुहु विचिन्त्य, अहो दुर्दैवम् । यतः—

स्वकर्मसन्तान विचेष्टितानि कालान्तरावर्ति शुभाशुभानि ।
इहैव दृष्टानि मयैव तानि जन्मान्तराणीव दशान्तराणि ॥२३०॥

अथवेत्थमेवैतत्—

कायः सन्निहितापायः सम्पदः पदमापदाम् ।
समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भङ्गुरम् ॥२३१॥

इतीति-अनुवाद—इस प्रकार वार-बार विचार करके हिरण्यक ने कहा-अहो मेरा बडा दुर्भाग्य है—

स्वेति-अन्वय—जन्मान्तराणि दशान्तराणि इव यानि स्वकर्मसन्तान-विचेष्टितानि कालान्तरावर्ति शुभाशुभानि तानि मया इहैव दृष्टानि ।

शब्दार्थ—स्वकर्मसन्तानविचेष्टितानि=अपने (पाप-पुण्य मय) कर्म समूहों से उत्पन्न होने वाले, कालारावर्तिशुभाशुभानि=कालान्तर में भोग्य शुभ और अशुभ फलों को, जन्मान्तराणि दशान्तराणि इव=जन्मान्तर में होने वाली शरीर की वाल्ययौवनादि विविध दशाओं की तरह । इहैव=इस जन्म में ही ।

अनुवाद—जैसे, जन्मान्तर में होने वाली शारीरिक वाल्य यौवनादि दशायें जन्मान्तर में ही भोग्य होती हैं उसी प्रकार अपने द्वारा किये गये पाप पुण्य मय कर्म समूहों से उत्पन्न शुभ अशुभ फल भी जन्मान्तर (दूसरे जन्म में) भोग्य होते हैं किन्तु मुझे तो दुर्भाग्यतः इसी जन्म में उन्हें भोगना पड़ा है ।

वस्तुतः इस जन्म में किये गये कर्मों का फल दूसरे जन्म में ही भोगता पडता है, पर आश्चर्य की बात है कि मुझे अपने कर्मो का फल इसी जन्म में भोगना पड रहा है, यह मेरा दुर्भाग्य ही है ।

अथवा ऐसा ही यह है, अर्थात् यह संसार ही निःसार है ।

काय इति-अन्वय—कायः सन्निहितापायः सम्पदः आपदाम् पदम्, समागमाः सापगमाः सर्वम् उत्पादि भङ्गुरम् ।

शब्दार्थ—कायः=शरीर, सन्निहितापायः=विनाश जिसके समीप ही रहता है । सम्पदः आपदाम् पदम्=सम्पत्तियाँ आपत्तियों का स्थान होती है ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

पुनर्विमृश्याह

शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।।२३२।।

किञ्च—

मित्रं प्रीति रसायनं नयनयो रानन्दनं चेतसः,
पात्रं यत् सुख दुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद् दुर्लभम् ।

समागमाः सापगमाः=संयोग वियोग से मिश्रित होते हैं अर्थात् सभी प्रकार के प्रियजन संयोगों का अन्त वियोग में होता है । जहाँ संयोग है वहाँ वियोग अवश्यम्भावी है । उत्पादि=उत्पन्न होने वाले पदार्थ, भङ्गुरम्=विनाश-शाली है ।

अनुवाद—यह शरीर सन्निहितापाय होता है अर्थात् विनाश इसके समीप ही बना रहता है, कोई नहीं जानता कि कब यह नष्ट हो जाय । सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ, विपत्तियों का स्थान होती है अर्थात् सम्पत्ति से जहाँ अनेक प्रकार के सुख मिलते हैं वहाँ इनके चौरादि द्वारा अपहृत होने पर अनेक दुःख भी होते हैं । इसी प्रकार सभी प्रकार के प्रिय जन संयोग, वियोग से मिश्रित रहते हैं और फिर संसार में उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ नाशवान् हैं, जो कुछ उत्पन्न हुआ है उसका विनाश अवश्य होगा ।

फिर उसने सोच कर कहा—

शोकेति-अन्वय—शोकारातिभयत्राणम् प्रीतिविश्रम्भभाजनम्, मित्रम् इति अक्षरद्वयम् इदम रत्नम् केन सृष्टम् ।

शब्दार्थ—शोकारातिभयत्राणम्=शोक रूपी शत्रु अथवा शोक, शत्रु और भय से रक्षा करने वाला, प्रीतिविश्रम्भभाजनम्=प्रेम और विश्वास का पात्र, अक्षरद्वयं रत्नम्=दो अक्षर वाला रत्न ।

अनुवाद—शोक शत्रु और भय से रक्षा करने वाले, प्रेम और विश्वास के पात्र, मित्र, इस दो अक्षर वाले रत्न को किसने बनाया है ।

किञ्च और भी—

मित्रमिति-अन्वय—यत् मित्रम् नयनयोः प्रीतिरसायनम् चेतसः आनन्दनम्, यत् च मित्रम्, मित्रेण सह एव सुःख दुःखयोः पात्रम् भवेत तत् मित्रम् दुर्लभम्

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

ये चान्ये सुहृदः समृद्धि समये द्रव्याभिलाषाकुलाः,
ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ।।२३३।।

इति मुहुर्विलप्य हिरण्यकश्चित्राङ्गलघुपतनकावाह—यावदयं व्याधो वनान् न निःसरति, तावन् मन्थरं मोचयितुं यत्नः क्रियताम् ।

तावूचतुः—सत्वरं कार्यं मूच्यताम् । हिरण्यको ब्रूते चित्राङ्गो जल समीपं गत्वा मृतमिवात्मानं दर्शयतु । काकश्च तस्योपरि

भवति । ये च समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुलाः अन्ये सुहृदः (भवन्ति) ते तु सर्वत्र भिलन्ति, तेषाम् तु विपत् तत्त्वनिकषग्रावा (भवति) ।

शब्दार्थ—प्रीतिरसायनम्=प्रेम की महौषधि, आनन्दनम्=आनन्ददायक समृद्धिसमये=सम्पत्ति के समये, द्रव्याभिलाषाकुलाः=धन की अभिलाषा की पूर्ति के लिये व्याकुल, तत्त्वनिकषग्रावा=मित्रत्व की कसौटी । निकष ग्रावा=कसौटी ।

अनुवाद—जो मित्र नेत्रों की प्रीति के लिए औषधिरूप होता है तथा चित्त को आनन्द देने वाला होता है और जो मित्र, मित्र के साथ ही सुख और दुःख का पात्र होता है अर्थात् अपने मित्र के समान हो सुख और दुःख का अनुभव करता है, ऐसा मित्र दुर्लभ होता है । किन्तु जो सम्पत्ति के समये द्रव्य की अभिलाषा से व्यग्र होकर मित्र बनते हैं, ऐसे मित्र तो सर्वत्र मिल जाते हैं । किन्तु ऐसे मित्रों की कसौटी विपत्ति ही होती है ।

सच्चे मित्र की परीक्षा वस्तुतः विपत्ति समय में होती है, यदि मित्र विपत्ति में साथ देता है तो वही सच्चा मित्र होता है, शेष स्वार्थी मित्र होते हैं । अतः विपत्ति ही मित्र की कसौटी मानी जाती है ।

इतीति शब्दार्थ—मुहुः=बार बार, मोचयितुम्=छुड़ाने के लिये ।

अनुवाद—इस प्रकार बार-बार विलाप करके हिरण्यक ने चित्राङ्ग और लघुपतनक से कहा कि जब तक यह बहेलिया वन से नहीं निकलता है तब तक मन्थर को छुड़ाने का यत्न कीजिये ।

ताविति शब्दार्थ—ऊचतुः=कहा, सत्वरं कार्यम् उच्चताम्=जो करना है उसे शीघ्र बतलाइये । मृतमिवात्मानं दर्शयतु=अपने को मरे जैसा दिख-

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

स्थित्वा चञ्च्वा किमपि लिखतु। नूनमनेन लुब्धकेन तत्र कच्छपं परित्यज्य मृगमांसार्थिना सत्वरं गन्तव्यम् । ततोऽहं मन्थरस्य वन्धनं छेत्स्यामि। सन्निहते लुब्धके भवद्भ्यां पलायितव्यम् ।

चित्राङ्गलघुपतनकाभ्यां शीघ्रं गत्वा तथानुष्ठिते सति, स व्याधः श्रान्तः पानीयं पीत्वा तरोरधस्तादुपविष्टस्तथाविधं मृगमपश्यत् । ततः कर्त्तरिकामादाय प्रहृष्टमना मृगान्तिकं चलितः। तत्रान्तरे हिरण्यकेनागत्य मन्थरस्य वन्धनं छिन्नम् । स कूर्मः सत्वरं जलाशयं प्रविवेश । स मृग आसन्नं तं व्याध्रं विलोक्योत्थाय पलायितः। प्रत्यावृत्य लुब्धको यावत्तरुतलमायाति तावत्कूर्ममपश्यन्नाचिन्तयत् उचित मेवैतन्ममासमीक्ष्यकारिणः।

लाये, चञ्च्वा किमपि लिखतु=चोंच से कुछ कुरेदने लगे। मृगमांसार्थिना =मृग के मांस का इच्छुक, सन्निहिते लुब्धके=वहेलिये के समीप आने पर।

अनुवाद – उन दोनों ने कहा जो करना है उसे शीघ्र बतलाइये। हिरण्यक कहता है—

चित्राङ्ग जल के पास जाकर अपने को मृतक सा दिखलाये, और कौवा उसके ऊपर बैठकर चोंच से कुछ कुरेदने लगे। निश्चय ही, मृग के मांस का इच्छुक यह बहेलिया, कच्छप को छोड़ कर वहाँ जायेगा। तब मैं मन्थर का वन्धन काट दूंगा। वहेलिये के पास आने पर आप दोनों भाग जाना।

चित्राङ्गेति शब्दार्थ—तथानुष्ठिते सति=वैसा ही करने पर, श्रान्तः= थका हुआ, अधस्तात्=नीचे, कर्तरिकाम्=छुरी को, मृगान्तिकम्=मृग के पास, छिन्नम्=काट दिया। आसन्नम्=समीपवर्ती। प्रत्यावृत्य=लौट कर, उचितमेव् एतत् मम असमीक्ष्यकारिणः=बिना सोचे समझे काम करने वाले मेरे लिये यह उचित ही है।

अनुवाद—चित्राङ्ग और लघुपतनक के द्वारा शीघ्र जाकर वैसा ही करने पर थके हुये और) पानी पीकर वृक्ष के नीचे बैठा हुआ वह बहेलिया उस प्रकार के (अर्थात् मृतक के समान पड़े हुये) मृग के पास चल दिया। उसी बीच हिरण्यक ने मन्थर का वन्धन काट दिया। वह कच्छप शीघ्र ही जलाशय में घुस गया, वह मृग बहेलिये को समीपवर्ती देख कर उठ कर भाग

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

यतः—

योध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्ट मेव हि ।।२३४।।

ततोऽसौ स्वकर्मवशान्निराशः कटकं प्रविष्टः । मन्थरादयः सव त्यक्तापदः स्वस्थानं गत्वा यथा सुखम् स्थिताः ।

अथ राजपुत्रैः सानन्द मुक्तम् सर्वे मित्रलाभम् श्रुतवन्तः सुखिनो वयम् । सिद्धं नः समीहितम् ।

गया । लौट कर ज्योंही बहेलिया वृक्ष के नीचे आता है तब तक कच्छप को न देखता हुआ सोचने लगा । बिना समझे बूझे काम करने वाले मेरे लिये यह उचित ही है ।

यतः—क्योंकि—

य इति-अन्वय—यः ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते, तस्य ध्रुवाणि नश्यन्ति, अध्रुवम् तु नष्टम् एव ।

शब्दार्थ—ध्रुवाणि=निश्चित एवं स्थिर पदार्थों को, अध्रुवाणि=अनस्थिर अनिश्चित पदार्थों को, निषेवते=पाना चाहता है ।

अनुवाद—जो मनुष्य स्थिर एव सुनिश्चित पदार्थों की छोड़ कर अनिश्चित एव अनिस्थिर वस्तुओं को पाना चाहता हैं—उनके पीछे भागता है, उसके निश्चित पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, और अनिश्चित पदार्थ तो अनिश्चित या नष्ट हैं ही ,

तत इति शब्दार्थ—स्वकर्मवशात्=अपने कर्मों के फलस्वरूप, कटकम्=निवास स्थान, त्याक्तापदः=विपत्ति रहित, यथासुख मास्थिताः= सुख पूर्वक रहने लगे । सिद्धम् नः समीहितम्=हम लोगों का मनोरथ (नीति ज्ञान) पूर्ण हो गया । एतावता=इतने से, अभिलषितम्=मनोरथ, सम्पन्नम्=पूरा हो गया, । अपरम् अपि इदम् अस्तु=किन्तु यह दूसरी बात पूर्ण हो ।

अनुवाद—तब यह बहेलिया अपने कर्मों के कारण, निराश होकर अपने निवास स्थान में चला गया । मन्थर आदि भी सब, विपत्तिरहित होकर, अपने स्थान पर जाकर सुख पूर्वक रहने लगे ।

इसके वाद राजपुत्रों ने आनन्द पूर्वक कहा, हम सब लोगों ने मित्र लाभ

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

विष्णुशर्मोवाच—एतावता भवताम् अभिलषितम् सम्पन्नम् । अपर मपीद मस्तु—

मित्रं प्राप्नुत सज्जनाः ! जनपदै र्लक्ष्मीः समालम्ब्यताम्,
भूपालाः परिपालयन्तु वसुधां शश्वत्‌ स्वधर्मे स्थिताः ।
आस्तां मानसतुष्टये सुकृतिनां नीति र्नवोढेव वः,
कल्याणं कुरुतां जनस्यं भगवांश्चन्द्रार्ध चूडामणिः ॥२३५॥

इति श्रीविष्णुशर्म संकलिते हितोपदेशे मित्र लाभो नाम प्रथमः कथासंग्रहः

सुन लिया और प्रसन्न हुए। हम लोगों का मनोरथ (नीति ज्ञान) भी पूर्ण हो गया।

विष्णुशर्मा ने कहा—इतने से आप लोगों का मनोरथ तो सिद्ध हो ही गया किन्तु यह दूसरी बात भी पूर्ण हो—

मित्रमिति-अन्वय—सज्जनाः ! मित्रम् प्राप्नुत, जनपदैः लक्ष्मीः समालम्ब्यताम् । स्वधर्मे रताः भूपालाः शश्वत् वसुधाम् पालयन्तु वः नीतिः नवोढा इव सुकृतिनाम् मानसतुष्टये आस्ताम् । भगवान् चन्द्रार्धचूड़ामणिः जनस्य कल्याणम् कुरुताम् ।

शब्दार्थ—प्राप्नुत=प्राप्त करें, समालम्ब्यताम्=प्राप्त हो । शश्वत्=निरन्तर, आस्ताम्=हो, मानसतुष्टये=मन को प्रसन्न करने के लिए । सुकृतिनाम्=पुण्यात्मा सज्जनों के, नवोढा=नव विवाहिता, वः=आप लोगों की । चन्द्रार्धचूड़ामणिः=अर्ध चन्द्र को ललाट पर धारण करने वाले ।

अनुवाद—सत्पुरुष आप लोग (सच्चे) मित्र प्राप्त करें, अर्थात् आप लोगों का अच्छे मित्रों से समागम हो, जनपद वासी लोग लक्ष्मी (धन सम्पत्ति प्राप्त करें । अपने धर्म में स्थित होकर राजा निरन्तर पृथिवी का पालन करें, आप लोगों का यह नीति विज्ञान नव विवाहित बधू के समान पुण्यात्मा सज्जनों की मन की सन्तुष्टि के लिए हो । अर्धचन्द्र को धारण करने वाले भगवान् शंकर लोगों का कल्याण करें ।

श्री विष्णुशर्मा द्वारा संकलित हितोपदेश नामक ग्रन्थ का यह 'मित्रलाभ' नामक प्रथम कथासंग्रह समाप्त हुआ ।

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

Devavani Parishad New Delhi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust

हितोपदेश

क्ष्मी प्रकाशन, आगरा-२

Devavani Parishad New Delhi